इकाई–I

सामाजिक समस्याएँ
(Social Problems)

इकाई की रूपरेखा

1.0 **उद्देश्य**

1.1 **प्रस्तावना**

1.2 **सामाजिक समस्या का अर्थ एवं परिभाषाएँ**

1.3 **सामाजिक समस्या की विशेषताएँ**

1.4 **सामाजिक समस्या की उत्पत्ति**

1.5 **सामाजिक समस्याओं के प्रकार**

1.6 **सामाजिक समस्याओं के कारण**

1.7 **सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की पद्धतियाँ**

1.8 **सामाजिक समस्याओं का समाधान**

1.9 **शब्दावली**

1.10 **अभ्यास प्रश्न**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.0 उद्देश्य

मानव समाज के इतिहास को यदि गहराई से देखा जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह विविध प्रकार की समस्याओं एवं चुनौतियों का ही इतिहास रहा है। प्रत्येक सभ्य-असभ्य, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित-विकासशील समाज में कुछ न कुछ सामाजिक समस्याएँ सदैव विद्यमान रही हैं और आज भी हैं तथा इन्हीं समस्याओं को सामाजिक विघटन का प्रमुख कारण माना जाता है। किसी भी समाज में स्थायित्व एवं निरन्तरता हेतु इन समस्याओं का समाधान किया जाना आवश्यक माना जाता है। इसीलिए समाजशास्त्र में सामाजिक समस्या का अर्थ, प्रकृति,

प्रकार, कारण तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान के उपायों के साथ-साथ इनके अध्ययन की विधियों एवं परिप्रेक्ष्यों को भी समझने का प्रयास किया जाता है। प्रस्तुत अध्याय इसी दिशा में एक प्रयास है।

1.1 प्रस्तावना

समाजशास्त्र एक विशुद्ध विज्ञान है अथवा व्यावहारिक विज्ञान? यह प्रश्न समाजशास्त्र में अत्यधिक चर्चित रहा है। कुछ विद्वानों का मत है कि समाजशास्त्र का उद्देश्य केवल सामाजिक घटनाओं के बारे में नवीन ज्ञान प्राप्त करना है तथा किसी प्रकार का निर्णय देना या समस्याओं का समाधान करना कदापि नहीं है। ऐसे विद्वान् समाजशास्त्र को विशुद्ध विज्ञान मानते हैं। दूसरी ओर, आज अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि समाजशास्त्र सहित सभी सामाजिक विज्ञानों का उद्देश्य सामाजिक जीवन को प्रगतिशील बनाना है। यह तभी सम्भव है जब समाज में विद्यमान समस्याओं का का अध्ययन किया जाए। इस दृष्टि से समाजशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं, सामाजिक विघटन, सामाजिक व्याधिकी जैसे विषयों का अध्ययन इस बात का द्योतक है कि समाजशास्त्र एक व्यावहारिक विज्ञान है तथा नीति-निर्धारक समाजशास्त्रियों से सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझने तथा उनके समाधान हेतु उपाय सुझाने की आशा रखते हैं। सामाजिक नियोजन की दृष्टि से भी आज समाजशास्त्र एक महत्त्वपूर्ण विषय हो गया है। प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों ने भी तत्कालीन समाजों में विद्यमान समस्याओं का अध्ययन कर यह दर्शाने का प्रयास किया कि समाजशास्त्री इन समस्याओं को समझने से विमुख नहीं हो सकते। इसीलिए आज भारत के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में भारत में विद्यमान प्रमुख समस्याओं से सम्बन्धित किसी-न-किसी नाम से एक प्रश्न-पत्र पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है। चूँकि समाजशास्त्र में क्षेत्रीय दृष्टिकोण अपनाया जाता है इसलिए यह विषय सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझने में सहायक है। सामाजिक समस्याओं के कारणों को समझना उनके समाधान हेतु आवश्यक माना जाता है।

1.2 सामाजिक समस्या का अर्थ एवं परिभाषाएँ

'सामाजिक समस्या' का अर्थ समझने के लिए हमें 'सामाजिक' तथा 'समस्या' शब्द का अर्थ समझ लेना उचित होगा। जब भी हम 'सामाजिक' शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे हमारा

अभिप्राय मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक संरचना (ढाँचे), संगठन आदि से होता है। समस्या का अभिप्राय ऐसे अवांछनीय एवं अनुचित व्यवहारों अथवा प्रचलनों से है, जो सामाजिक व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर देते हैं। अत: सामाजिक संगठन, सामाजिक संरचना या मानवीय सम्बन्धों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उन्हें हम सामाजिक समस्याएँ कहते हैं। सामाजिक समस्या सदैव विघटनमूलक होती है। इससे सामाजिक संगठन में उथल-पुथल हो सकती है तथा नियमित एवं सामान्य जीवन बुरी तरह से प्रभावित हो सकता है। सामाजिक समस्या केवल किसी विशेष स्थिति की ही सूचक नहीं होती अपितु उस स्थिति की गम्भीरता के बारे में सामाजिक चेतना या सामाजिक चिन्ता की अभिवृत्ति को भी व्यक्त करती है।

सामाजिक समस्या के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु इसकी प्रमुख परिभाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। राब एवं सेल्जनिक **(Raab and Selznick)** के अनुसार, ''यह मानवीय सम्बन्धों की वह समस्या है जो स्वयं समाज को गम्भीर चुनौती देती है अथवा अनेक लोगों की महत्त्वपूर्ण आकांक्षाओं में बाधा पैदा करती है।'' ग्रीन **(Green)** के अनुसार, ''सामाजिक समस्या ऐसी परिस्थितियों का पुंज है जिसे समाज में बहुसंख्यक अथवा पर्याप्त अल्पसंख्यक द्वारा नैतिकतया गलत समझा जा सकता है।'' इसी भाँति, होर्टन एवं लेस्ले **(Horton and Leslie)** के अनुसार, ''सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो बहुत से लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल सामूहिक सामाजिक क्रिया द्वारा ही हो सकता है।'' फुल्लर एवं मेयर्स **(Fuller and Myers)** ने सामाजिक समस्या को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, ''जब समाज के अधिकांश सदस्य किसी विशिष्ट दशा एवं व्यवहार प्रतिमानों को अवांछित और आपत्तिजनक मान लेते हैं तब उसे सामाजिक समस्या कहा जाता है।''

मर्टन एवं निस्बेत **(Merton and Nisbet)** के अनुसार, ''(सामाजिक समस्या) व्यवहार का वह ढंग है जोकि सामाजिक व्यवस्था के अधिकांश भाग द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत या अनुमोदित आदर्शों के उल्लंघन के रूप में माना जाता है।'' इनके अनुसार सामाजिक समस्या का सीधा सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों और समाज की स्वीकृत व्यवस्था से होता है। ऐसे व्यवहार को हम समस्या इसलिए कहते हैं क्योंकि यह अपेक्षित योजनाओं में बाधा उत्पन्न करता है तथा समाज के नियमित जीवन में उथल-पुथल की ओर संकेत करता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक समस्या सामान्य स्थापित एवं प्रचलित मूल्यों के अस्तित्व में संकट एवं उथल-पुथल उत्पन्न करने वाली दशा है। अत: सामाजिक समस्याएँ सामाजिक जीवन में पैदा होने वाली अवांछनीय स्थितियाँ हैं जो सार्वजनिक चिन्ता का विषय होती हैं। इसकी परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि सामाजिक समस्या में अग्रलिखित तीन प्रमुख तत्त्व पाए जाते हैं—

1. समाज के अधिकांश सदस्यों से इसका सम्बन्ध होना,

2. दबावकारी या तनावपूर्ण सामाजिक स्थिति—बर्नार्ड के अनुसार स्थिति को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

(i) तनाव कारक, जो समाज के किसी मूल्य के लिए चुनौती का कारण होते हैं,

(ii) सामाजिक मूल्य, जिसको चुनौती दी जा रही है, तथा

(iii) चुनौती के प्रति व्यक्तियों या समूहों की तीव्र प्रतिक्रियाएँ अर्थात् समाज के संगठन एवं कल्याण के लिए भय, आशंका की स्थिति तथा

3. समुचित सामूहिक क्रियाएँ जो समस्या को हल कर सकती हैं अर्थात् सामूहिक प्रयत्न द्वारा इसके समाधान की आशा।

अत: सामाजिक समस्या वास्तव में वे दशाएँ हैं जो सामाजिक मूल्यों को चुनौती देती हैं, समाज का महत्त्वपूर्ण भाग उनसे दबाव या तनाव महसूस करता है, वे उस दबाव के कारण को जानते हैं और यह विश्वास करते हैं कि सामूहिक प्रयासों से इस दबाव को दूर किया जा सकता है। सामाजिक समस्या सामाजिक आदर्श और यथार्थ में भारी अन्तर की सूचक है जिसे मिटाने के लिए सामाजिक कार्यवाही जरूरी हो जाती है। अपराध, बाल अपराध, मद्यपान, मादक द्रव्य व्यसन, वेश्यावृत्ति, टूटते परिवार, बेरोजगारी, गरीबी, मानसिक रोग इत्यादि सामाजिक समस्याओं के ही उदाहरण हैं।

1.3 सामाजिक समस्या की विशेषताएँ

सामाजिक समस्या की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं—

1. सामाजिक समस्या वह दशा या स्थिति है जिसे समाज हानिकारक मानता है तथा उसके समाधान की आवश्यकता महसूस करता है।

2. सामाजिक समस्या का सम्बन्ध सामाजिक संरचना से होता है। इसीलिए वही समस्याएँ सामाजिक समस्याएँ कही जाती हैं जो या तो सामाजिक संरचना पर कुप्रभाव डालती हैं अथवा जिनका कारण समाज की विद्यमान सामाजिक संरचना में होता है।

3. सामाजिक समस्या में सामूहिकता का तत्त्व निहित होता है। यदि केवल कुछ व्यक्ति किसी स्थिति को अवांछनीय मानते हैं तो वह सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी। अधिकांश व्यक्तियों द्वारा अमुक समस्या को किसी-न-किसी प्रकार की बाधा मानने पर ही वह समस्या सामाजिक समस्या कही जाएगी।

4. सामाजिक समस्या वह अवांछनीय स्थिति है जिसे सुधारने का प्रयास किया जाता है। यदि कोई समस्या अवांछनीय तो है परन्तु समाज के सदस्य उसमें किसी प्रकार के सुधार की न तो आशा करते हैं और न ही प्रयास करते हैं तो ऐसी समस्या सामाजिक समस्या नहीं कही जाएगी।

5. सामाजिक समस्या समाज कल्याण की धारणा से सम्बन्धित होती है। समाज कल्याण को अवरुद्ध करने वाली समस्याएँ ही अधिकतर सामाजिक समस्याएँ मानी जाती हैं।

6. फुल्लर तथा मेयर के मतानुसार जागरूकता, नीति-निर्धारण तथा सुधार सामाजिक समस्या से सम्बन्धित वे चरण हैं जिनके द्वारा किसी समुदाय में इनका निर्धारण सम्भव होता है।

1.4 सामाजिक समस्या की उत्पत्ति

सामाजिक समस्या की उत्पत्ति अनेक कारणों से होती है। जब सामाजिक संगठन में सामंजस्य समाप्त हो जाता है और समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों, आदर्शों व नियमों में अव्यवस्था की स्थिति उत्पन्न हो जाती है तो सामाजिक समस्या जन्म लेती है। जॉन केन के अनुसार जब कभी समाज द्वारा प्रचलित मूल्यों एवं आदर्शों के प्रतिकूल परिस्थितियाँ विकसित हो जाती हैं तो अनेक प्रकार की समस्याएँ जन्म लेने लगती हैं। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति यद्यपि अनेक कारणों एवं परिस्थितियों के कारण होती है फिर भी प्रत्येक सामाजिक समस्या कुछ निश्चित चरणों में से गुजर कर ही विकसित होती है। फुल्लर एवं मेयर्स ने सामाजिक समस्या के स्वाभाविक एवं प्राकृतिक विकास के चरणों की विस्तृत विवेचना की है। प्रमुख चरण निम्नलिखित हैं—

1. **चेतना की स्थिति**—सामाजिक समस्या के विकास का प्रथम चरण समाज के व्यक्तियों में सामाजिक व्यवस्था एवं सामान्य जीवन को अवरुद्ध करने वाली कठिनाइयों के बारे में चेतना

है। समाज के अधिकांश सदस्य इन्हें महसूस करने लगते हैं और उनके बारे में सोच विचार शुरू कर देते हैं।

2. **कठिनाइयों का स्पष्टीकरण**—द्वितीय चरण में कठिनाइयाँ अधिक स्पष्ट हो जाती हैं और सामान्य जनता इनसे असुविधा महसूस करने लगती है और इनकी ओर स्पष्ट इशारा किया जाने लगता है।

3. **सुधार कार्यक्रमों या लक्ष्यों का निर्धारण**—समस्या स्पष्ट हो जाने के पश्चात् इसके समाधान के लिए कार्यक्रमों एवं लक्ष्यों के निर्धारण का कार्य तृतीय चरण में होता है।

4. **संगठन का विकास**—लक्ष्य निर्धारित करने के पश्चात् इन्हें पूरा करने के लिए आवश्यक संगठन का विकास किया जाता है तथा आवश्यक साधनों को एकत्र किया जाता है ताकि सुधार कार्यक्रमों को लागू किया जा सके।

5. **सुधार का प्रबन्ध**—सामाजिक समस्याओं के स्वाभाविक विकास का अन्तिम चरण इसके समाधान के लिए सुधार कार्यक्रमों को लागू करना है तथा अगर आवश्यक हो तो इसके लिए अनिवार्य संस्था का विकास करना है।

रोबर्ट ए० निस्बेत ने सामाजिक समस्या की उत्पत्ति में चार सहायक कारक बताए हैं—

***1.* संस्थाओं में संघर्ष**–कई बार अनेक संस्थाओं के उद्देश्यों, लक्ष्यों व साधनों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। प्राचीन एवं नवीन संस्थाओं में यह संघर्ष अधिक पाया जाता है क्योंकि प्राचीन संस्थाएँ व्यवस्था को यथारूप बनाए रखने पर बल देती हैं जबकि नवीन संस्थाएँ सामाजिक गतिशीलता पर अधिक बल देती हैं।

***2.* सामाजिक गतिशीलता**—यह प्रथम कारक से जुड़ा हुआ कारक है। गतिशीलता की सामाजिक समस्याओं को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि गतिशीलता के कारण व्यक्ति को नवीन प्रस्थितियों, मूल्यों आदि से काफी संघर्ष करना पड़ता है और कई बार लोग तंग आकर अवैधानिक, अनैतिक व अस्वीकृत तरीकों द्वारा अपनी प्रस्थिति ऊँचा करने का प्रयास करते हैं।

***3.* व्यक्तिवाद**—आज के युग में निरन्तर बढ़ता हुआ व्यक्तिवाद भी सामाजिक समस्याओं का कारण है। परम्परागत समाजों में जीवन सामूहिक होता था परन्तु आज व्यक्ति अपने में ही

खोता जा रहा है और सामूहिकता समाप्त होती जा रही है। इससे प्राथमिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता है और व्यक्ति के पथभ्रष्ट होने की सम्भावना बढ़ जाती है। सामाजिक एकता में कमी हो जाती है, व्यक्तिवाद के कारण व्यक्ति मनचाहा व्यवहार करने लगता है तथा वह समाज के रीति-रिवाजों की चिन्ता नहीं करता।

***4.* व्याधिकीय स्थिति**—व्याधिकीय स्थिति भी सामाजिक समस्याओं को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इस स्थिति में व्यक्ति समाज के मूल्यों की चिन्ता किए बिना, जो उन्हें अच्छा लगता है वह करने लगते हैं और इससे समाज में अव्यवस्था और सामाजिक समस्याएँ बढ़ जाती हैं। व्याधिकीय स्थिति एक प्रकार से आदर्शविहीनता की स्थिति है जिसमें समाज में पाए जाने वाले आदर्श नियम व्यवहार को नियमित करने में असफल रहते हैं। लोग मनमाना व्यवहार करने लगते हैं तथा इससे अनेक नवीन सामाजिक समस्याएँ विकसित हो जाती हैं।

1.5 सामाजिक समस्याओं के प्रकार

सामाजिक समस्याएँ अनेक प्रकार की होती हैं तथा इनका वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं—

(अ) सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर सामाजिक समस्या

वैयक्तिक- (यथा मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ, आत्महत्या आदि)

पारिवारिक- (यथा पारिवारिक कलह, घरेलू हिंसा एवं तलाक आदि)

सामुदायिक- (यथा जातिवाद, वर्ग संघर्ष, साम्प्रदायिकता आदि)

राष्ट्रीय- (यथा अपराध, बालापराध, भाषावाद, जनाधिक्य आदि)

अन्तर्राष्ट्रीय - (यथा युद्ध, शीतयुद्ध आतंकवाद आदि)

क्षेत्रीय आधार पर इन्हें क्षेत्रीय, प्रादेशिक, देशव्यापी तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं में विभाजित किया जा सकता है।

(ब) समय के आधार पर सामाजिक समस्या – थात्कालिक, अल्पकालिक, दीर्घकालिक

(स) प्रकृति के आधार पर सामाजिक समस्या बहिर्मुखी (जिन्हें स्पष्टत: देखा जा सकता है; जैसे निर्धनता, बेरोजगारी, अपराध आदि) अन्तर्मुखी (जिन्हें स्पष्टत: देखा नहीं जा सकता है; जैसे जातीय पूर्वाग्रह, वेश्यावृति, मद्यपान आदि)

सामाजिक समस्याओं के उपर्युक्त वर्गीकरण स्पष्ट करते हैं कि इन्हें अनेक आधारों पर विभाजित किया गया है। समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं एवं सामाजिक विघटन की दृष्टि से सम्बन्धित पक्ष एवं क्षेत्र के आधार पर किए गए वर्गीकरण को ही सर्वाधिक प्रयोग में लाया जाता है।

1.6 सामाजिक समस्याओं के कारण

सामाजिक समस्याओं के लिए कोई एक कारण उत्तरदायी नहीं है अपितु प्रत्येक समस्या के पीछे एक जटिल इतिहास रहता है। उदाहरणार्थ, बेरोजगारी, आत्महत्या, अपराध आदि समस्याओं के पीछे एक कारण न होकर अनेक कारण होते हैं। सामाजिक समस्याओं के कारणों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. राब एवं सेल्जनिक के अनुसार, ''एक सामाजिक समस्या तब पैदा होती है जबकि एक संगठित समाज की योग्यता लोगों के सम्बन्धों को व्यवस्थित करने में असफल सी प्रतीत होती हैं और तब इसकी संस्थाएँ विचलित होने लगती हैं, कानूनों का उल्लंघन होने लगता है, मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित नहीं होते तथा आकांक्षाओं का ढाँचा लड़खड़ाने लगता है।''

2. सामाजिक समस्याएँ मनुष्यों के व्यवहार, जोकि अनेक प्राणिशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारकों पर निर्भर करता है, में परिवर्तन के कारण उत्पन्न होती हैं। यदि व्यवहार सामाजिक मूल्यों के विरुद्ध होने लगता है तो सामाजिक समस्याएँ पैदा होने लगती हैं।

3. सामाजिक परिवर्तन की तीव्र गति के कारण प्राय: सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं क्योंकि कई बार व्यक्ति नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करने में असमर्थ होते हैं।

4. सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण आर्थिक होता है। बेरोजगारी न केवल व्यक्तिगत समस्या है वरन् यह आर्थिक समस्या भी है।

5. पारसन्स के अनुसार मनुष्य का भौतिक साधनों के साथ अधूरा समायोजन ही मनुष्य की समस्याओं के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है।

6. वोल्फ ने जनसंख्या की वृद्धि को ही सामाजिक समस्या का प्रमुख कारण बताया है।

7. इलियट एवं मैरिल ने सामाजिक विघटन को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण माना है।

8. ऑगबर्न ने भौतिक एवं अभौतिक संस्कृति में असमान गति के कारण उत्पन्न सांस्कृतिक विलम्बना को सामाजिक समस्याओं का प्रमुख कारण बताया है।

1.7 सामाजिक समस्याओं के अध्ययन की पद्धतियाँ

सामाजिक समस्याओं का अध्ययन विविध प्रकार की पद्धतियों द्वारा किया गया है। इन पद्धतियों को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

गुणात्मक पद्धतियाँ

प्रमुख गुणात्मक पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **ऐतिहासिक पद्धति**—यह पद्धति समाजों, सभ्यताओं, समुदायों, घटनाओं, संस्थाओं व समस्याओं के विकास-क्रम या समय-क्रम में अध्ययन करने की पद्धति है जिसका प्रयोग उत्पत्ति, विकास या रूपान्तर से सम्बन्धित अध्ययनों में किया जाता है। प्रारम्भिक समाजशास्त्रियों ने अपने अध्ययनों में इसी पद्धति को अधिकतर अपनाया है। सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति एवं विकास के अध्ययन में यह पद्धति अत्यधिक उपयोगी है।

2. **वैयक्तिक अध्ययन पद्धति**—यह किसी सामाजिक इकाई या समस्या के गहन एवं विस्तृत अध्ययन करने की प्रमुख पद्धति है। गुड एवं हैट के अनुसार, ''वैयक्तिक अध्ययन पद्धति सामाजिक तथ्यों को संगठित करने का वह ढंग है जिससे अध्ययन किए जाने वाले विषय के एकात्मक स्वभाव का संरक्षण हो सके। थोड़े से भिन्न रूप में यह वह पद्धति है जिसमें किसी इकाई को एक समग्र के रूप में देखा जाता है।'' सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में यह पद्धति अत्यधिक उपयोगी है, क्योंकि इससे सामाजिक समस्या के सभी पक्ष स्पष्ट हो जाते हैं।

3. **सामुदायिक अध्ययन पद्धति**—यह अध्ययन पद्धति जनजातीय समस्याओं एवं विभिन्न सम्प्रदायों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसके द्वारा जनजातीय कल्याण, श्रम कल्याण, हरिजन कल्याण, महिला कल्याण इत्यादि सामुदायिक समस्याओं का अध्ययन सफलतापूर्वक किया गया है।

4. **आदर्श-प्ररूप विश्लेषण पद्धति**—यह पद्धति भी कार्य-कारण सम्बन्धों का अध्ययन करने में मैक्स वेबर जैसे विद्वानों द्वारा प्रयुक्त की गई है। आदर्श-प्ररूप एक प्रकार का अवधारणात्मक ढाँचा है जोकि अन्वेषणकर्ता को वास्तविक घटनाओं में समानताओं एवं

असमानताओं को मापने में सहायता प्रदान करता है। जो समस्याएँ विश्लेषणात्मक एवं वर्णनात्मक प्रकृति की होती हैं, उनके अध्ययन में यह पद्धति अधिक उपयोगी है।

गणनात्मक या संख्यात्मक पद्धतियाँ

प्रमुख गणनात्मक या संख्यात्मक पद्धतियाँ निम्नलिखित हैं—

1. **सामाजिक सर्वेक्षण पद्धति**—व्यावहारिक समस्याओं के अध्ययन के लिए यह सबसे उपयुक्त पद्धति मानी जाती है तथा इसके द्वारा अपराध, भिक्षावृत्ति, बेरोजगारी, निर्धनता, जनसंख्या वृद्धि आदि विविध प्रकार की समस्याओं का सफल अध्ययन किया गया है। वेल्स ने तो सामाजिक सर्वेक्षण की परिभाषा ही इसी अर्थ में की है। इनके शब्दों में, ''श्रमिक वर्ग की निर्धनता तथा समुदाय की प्रकृति और समस्याओं सम्बन्धी तथ्य खोजने वाला अध्ययन ही सामाजिक सर्वेक्षण है।''

2. **सांख्यिकीय पद्धति**—सांख्यिकीय अनुसन्धान का उद्देश्य भूत और भविष्य की तुलना करना है। सामाजिक समस्याओं के प्रभाव का अध्ययन इस पद्धति द्वारा किया गया है। पी० वी० यंग के अनुसार वैयक्तिक अध्ययन पद्धति और सांख्यिकीय पद्धति एक-दूसरे की पूरक हैं यद्यपि दोनों ही सामाजिक परिस्थिति को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखती हैं तथा उस परिस्थिति में प्रभाव डालने वाले सामाजिक कारणों पर पृथक् रूप से बल देती हैं।

3. **समाजमिति**—इस पद्धति द्वारा सामाजिक दूरी एवं व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को मापने का प्रयास किया जाता है। असन्तोष एवं बैर, वैमनस्य जैसी समस्याओं को इसके द्वारा समझा जा सकता है। जे० एल० मोरीनो तथा हेलन हाल जेनिंग्स ने इस पद्धति का निर्माण सामाजिक दूरी एवं पारस्परिक सम्बन्धों के अध्ययन के लिए किया है। फ्रैंज के अनुसार, ''समाजमिति एक ऐसी पद्धति है जिसे कि समूह में विभिन्न व्यक्तियों के बीच पाए जाने वाले आकर्षण एवं विकर्षण के माप द्वारा सामाजिक स्वरूपों के अन्वेषण एवं संचालन के लिए प्रयोग किया जाता है।''

1.8 सामाजिक समस्याओं का समाधान

सामाजिक समस्याओं के हल में निम्न उपाय प्रभावकारी हो सकते हैं—

1. **'तनावपूर्ण समस्यात्मक' स्थितियों की पुनर्व्याख्या**–तनावपूर्ण एवं समस्याजनक परिस्थितियों पर पूर्व नियन्त्रण द्वारा सामाजिक समस्या को हल किया जा सकता है। हमारे

समाज की अनेक अन्त: समूह सम्बन्धों की समस्याएँ, भेदभाव की भावना, भ्रान्तिपूर्ण विश्वासों तथा अपमानजनक प्रवृत्तियों का परिणाम होती हैं। जिन समूहों के प्रति भेदभाव की भावना समाज में पाई जाती है, यदि उनकी नए सिरे से परिभाषा की जाए तो प्राय: अनेक अन्त: समूहों के सम्बन्धों की समस्याएँ हल हो सकती हैं। कुछ स्थितियों को यदि सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार न किया जाए तो ये स्थितियाँ स्वयं समाप्त हो सकती हैं। उदाहरणार्थ अमेरिका में व्यापारिक वेश्यावृत्ति समाप्त हो गई है क्योंकि वेश्याओं की माँग बहुत कम हो गई है तथा स्त्रियों ने अपनी आय बढ़ाने के लिए अच्छे संस्थानों में नौकरी करनी शुरू कर दी है।

***2.*व्यक्तियों के व्यवहारों में परिवर्तन**—क्योंकि अनेक समस्याएँ मूल्यों से सम्बन्धित हैं अत: इन मूल्यों एवं व्यक्तियों के व्यवहार को परिवर्तित करके भी सामाजिक समस्या के प्रभाव को कम किया जा सकता है। मनुष्य के समस्याजनक व्यवहार को तार्किक दृष्टि से समझाकर उसे प्रचार के साधनों द्वारा बदला जा सकता है। कभी-कभी व्यक्तियों के समस्याजनक व्यवहार को बदलना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में समुचित शिक्षा व मानसिक परिवर्तन के द्वारा कम से कम बच्चों के व्यवहार को परिवर्तित उन्हें समस्या से मुक्त किया जा सकता है।

***3.* समस्याजनक व्यवहार पर वैधानिक नियन्त्रण**—विभिन्न कानूनों को सख्ती से लागू करके या वर्तमान कानूनों में समुचित संशोधन कर अनेक समस्याजनक व्यवहारों को नियन्त्रित किया जा सकता है। समस्याजनक व्यवहार के लिए सरकार दण्ड तो देती ही है, लेकिन साथ ही दण्डनीय व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की पुर्स्थापना का प्रयत्न भी करती है। यह दोहरी नीति समस्याओं को सुलझाने की अपेक्षा उन्हें प्रोत्साहन देती है। अत: ऐसे व्यवहारों पर रोक लगाने के लिए प्रभावकारी कानून अनिवार्य है।

***4.* विद्वानों की सेवाओं का उपयोग**—सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में विभिन्न विद्वानों (जैसे मनोचिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता, समूह संगठनकर्ता, समूह कार्यकर्ता, समूह प्रशासक, शिक्षावेत्ताओं आदि) की सेवाओं को उपयोग में लाया जा सकता है। ये विद्वान् विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण कर सामाजिक समस्या के उपचार के साधन बता सकते हैं। हमारे समाज में सामाजिक वैज्ञानिक की पूर्ण क्षमताओं का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए नहीं किया जा रहा है।

***5.* सामाजिक संरचना में परिवर्तन**—प्राय: सामाजिक संरचना व्यक्ति के व्यवहार को निर्देशित करती है। कुछ सामाजिक समस्याओं का हल सामाजिक संरचना में परिवर्तन द्वारा सम्भव हो सकता है। समूह की संरचना में ऐसी स्थितियाँ सर्जित की जा सकती हैं जिनसे कि समूह के सदस्य सदैव सद्भावनापूर्ण वातावरण में आपस में सहयोगात्मक रूप से रहें तथा समाज की मान्यताओं के प्रतिकूल व्यवहार ही न करें।

***6.* समाजवादी समाज की स्थापना**—कार्ल मार्क्स ने समस्याओं से युक्त समाज के निर्माण के लिए पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर साम्यवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना का सुझाव दिया है, लेकिन केवल मात्र अर्थव्यवस्था को बदल देने से समाज की समस्त समस्याओं का हल नहीं हो सकता। इसके लिए वास्तविक समाजवादी समाज की स्थापना सहायक हो सकती है जिसमें आर्थिक एवं अन्य असमानताएँ कम से कम हों।

***7.* धार्मिक शिक्षा**—कुछ विद्वानों का विचार है कि धार्मिक शिक्षा के प्रसार द्वारा भी अनेक समस्याओं को हल किया जा सकता है। सोरोकिन तथा टॉयनबी आदि विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि धार्मिक मूल्यों को स्वीकार करके ही अनेक समस्याओं से मुक्ति मिल सकती है।

***8.* सामाजिक सेवाएँ**—विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं के द्वारा भी समाज की समस्याओं को हल करने में सहायता मिलती है क्योंकि ये तनावपूर्ण स्थितियों के प्रभाव को कम करने के महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान कर सकती हैं। सामाजिक समस्याओं से पीड़ित व्यक्ति सामाजिक सेवाओं का संरक्षण प्राप्त कर सकते हैं और समस्याजनक स्थिति के प्रभाव से मुक्त हो सकते हैं।

वास्तव में, सामाजिक समस्याओं का समाधान इतना सरल नहीं है जितना कि यह लगता है। अगर इतना सरल होता तो अनेक समाज समस्याओं से मुक्त होते। अनेक समस्याओं की जड़ें हमारी भ्रांतियाँ एवं अन्धविश्वास हैं। अत: उचित शिक्षा एवं ज्ञान के प्रसार से ऐसे अन्धविश्वासों को समाप्त करने के लिए उपयुक्त वातावरण बनाया जा सकता है तथा अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है। इस सन्दर्भ में यही बात अत्यन्त उल्लेखनीय है कि समस्याओं का समाधान केवल मात्र सरकारी प्रयासों द्वारा सम्भव नहीं है क्योंकि इसके लिए जन-सहयोग का होना अत्यन्त आवश्यक है।

1.9 शब्दावली

सामाजिक समस्या – सामाजिक समस्या से अभिप्राय उस परिस्थिति अथवा दशा से है जिसे समाज हानिकारक मानता है तथा उसमें सुधार की आवश्यकता महसूस करता है। यह ऐसी दशाओं की समग्रता है जिन्हें नैतिक आधार पर समाज में अधिकांश व्यक्ति अनुचित मानते हैं।

विशुद्ध विज्ञान —जिस विज्ञान का उद्देश्य केवल नवीन ज्ञान प्राप्त करना अथवा प्राप्त ज्ञान में किसी प्रकार का संशोधन करना होता है उसे विशुद्ध विज्ञान कहा जाता है।

व्यावहारिक विज्ञान—व्यावहारिक विज्ञान उस विज्ञान को कहा जाता है जिसका उद्देश्य प्राप्त ज्ञान का प्रयोग सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु करना होता है। ऐसे विज्ञानों में ज्ञान प्राप्ति एक साधन है, जबकि समस्या का समाधान साध्य है।

सामाजिक विघटन—सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है, जिसके कारण समूह के सदस्यों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध टूट जाते हैं अथवा नष्ट हो जाते हैं। सामाजिक विघटन की स्थिति में मतैक्य एवं उसके उद्देश्य की एकता भंग हो जाती है तथा सामाजिक संरचना के अस्त-व्यस्त होने के कारण व्यक्तियों को जोड़ने वाले सम्बन्ध नष्ट होने लगते हैं।

सामाजिक संरचना — किसी वस्तु की संरचना से हमारा तात्पर्य उसके भागों में सापेक्षिक रूप से पाए जाने वाले स्थायी अन्तर्सम्बन्धों से होता है। सामाजिक संरचना का निर्माण अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप व्यक्तियों में विकसित सामाजिक सम्बन्धों द्वारा होता है।

अप्रतिमानता — अप्रतिमानता आदर्शविहीनता अथवा आदर्शात्मक संरचना के अव्यवस्थापन की एक सामाजिक दशा है अर्थात् यह आत्यन्तिक अभिलाषा, लालच व अनगिनत आकांक्षाओं की सामूहिक नैतिक व्यवस्था द्वारा नियन्त्रण की असफलता है। इस अवधारणा के साथ दुर्खीम, मर्टन तथा पारसन्स जैसे प्रमुख समाजशास्त्रियों के नाम जुड़े हुए हैं।

सांस्कृतिक विलम्बना — सांस्कृतिक विलम्बना ऑगबर्न द्वारा प्रतिपादित अवधारणा है। भौतिक संस्कृति में तीव्रता से परिवर्तन होते हैं, जबकि अभौतिक संस्कृति में धीमी गति से। इसीलिए भौतिक संस्कृति अभौतिक संस्कृति से आगे निकल जाती है। इन दोनों में होने वाले अन्तराल अथवा पिछड़ को सांस्कृतिक विलम्बना कहते हैं। इस स्थिति में अभौतिक संस्कृति भौतिक संस्कृति के साथ तालमेल बनाने का प्रयास करती है।

परिप्रेक्ष्य— परिप्रेक्ष्य का अर्थ एक विशिष्ट नजरिया (देखने का तरीका) है जिसके द्वारा समाजशास्त्री अपने अध्ययन को समन्वित व सुव्यवस्थित करता है। प्रत्येक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य समस्या के अध्ययन के लिए कुछ सैद्धान्तिक कल्पनाओं का सहारा लेता है जिनसे अगर समस्या या इकाई के सम्पूर्ण व्यवहार का नहीं तो कम-से-कम उसकी प्रमुख विशेषताओं व प्रकृति का पता लग जाता है। परिप्रेक्ष्य के आधार पर ही समाजशास्त्री सामाजिक यथार्थता में पाई जाने वाली नियमबद्धता अथवा अनियमबद्धता की व्याख्या करता है।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक समस्या किसे कहते हैं? इसकी प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

2. सामाजिक समस्या को परिभाषित कीजिए। सामाजिक समस्याओं के सामान्य कारणों की विवेचना कीजिए।

3. सामाजिक समस्या क्या है? इसके अध्ययन के परिप्रेक्ष्य स्पष्ट कीजिए।

4. सामाजिक समस्या का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके प्रमुख प्रकार बताइए।

5. सामाजिक समस्या से आप क्या समझते हैं? सामाजिक समस्याओं के परिणामों की विवेचना कीजिए।

6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति

(ब) सामाजिक समस्याओं के प्रमुख तत्त्व

(स) सामाजिक समस्याओं के अध्ययन का सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Goode, W. J. and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.
2. Raab E. and G. J. Selznick, Major Social Problems, Illinois : Row, Peterson, 1959.
3. Green, A. W., Sociology : An Analysis of Life in Modern Society, New York : McGraw-Hill, 1968.
4. Horton, Paul B. and Gerald R. Leslie, The Sociology of Social Problems, New York : Appleton - Century - Crofts, 1955.

5. Fuller, Richard C. and Richard R. Myers, "Some Aspects of a Theory of Social Problems" in American Sociological Review, February 1941, Vol. 6, No. 27.
6. Merton, Robert K. and Robert A. Nisbet (eds.), Contemporary Social Problems, New York : Harcourt, Brace, Jovanovich, 1971.
7. Wells, A. F., The Local Survey in Great Britain, London : George Allen and Unwin Ltd., 1935.
8. Young, P. V., Scientific Social Surveys and Research, Bombay : Asia Publishing House, 1960.
9. Moreno, J. L. and Helen Hall Jennings, Quoted in W. J. Goode and P. K. Hatt, Methods in Social Research, New York : McGraw-Hill Book Company, 1952.
10. Franz, J. G., "Survey of Sociometric Techniques with an Annotated Bibliography" in Sociometry, Vol. II, October, 1939.

इकाई– 2

साम्प्रदायिकता
Communalism

इकाई की रूपरेखा

2.0 **उद्देश्य**

2.1 **प्रस्तावना**

2.2 **साम्प्रदायिकता का अर्थ**

2.3 **साम्प्रदायिकता की समस्या**

2.4 **साम्प्रदायिक तनावों एवं उपद्रवों के कारण**

2.5 **साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज**

2.6 **साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक हिंसा का समाज□ास्त्र**

2.7 **साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय**

2.8 **शब्दावली**

2.9 **अभ्यास प्रश्न**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.0 उद्देश्य

भारत एक बहुलवादी समाज है। जहाँ पर धर्म के अनेक सकारात्मक कार्य हैं तथा सामाजिक जीवन में धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है, वहीं पर कई बार धार्मिक संकीर्णता बहुलवादी समाजों में धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव का कारण भी बन जाती है। किसी भी बहुलवादी समाज में बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक का प्रश्न एक अत्यन्त नाजुक मामला माना जाता है। यदि सरकार अल्पसंख्यकों को कुछ विशेष अधिकार एवं सुविधाएँ प्रदान करने का प्रयास करती है तो बहुसंख्यक सम्प्रदाय इसे सरलता से सहन नहीं करता है और इसका विरोध करता है। यदि सरकार बहुसंख्यकों को कुछ सुविधाएँ प्रदान करती है तो अल्पसंख्यक इसे अपना शोषण मानते हैं और अल्पसंख्यक होने के नाते बहुसंख्यकों को दी जाने वाली सुविधाओं से कहीं

अधिक सुविधाओं की माँग करने लगते हैं। इससे अल्पसंख्यक एवं बहुसंख्यक सम्प्रदायों में सामाजिक दूरी बढ़ने लगती है तथा अन्तत: इसका परिणाम धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव के रूप में सामने आता है। धार्मिक एवं साम्प्रदायिक तनाव को ही साम्प्रदायिकता कहा जाता है। आज भारत में पाई जाने वाली सभी समस्याओं में साम्प्रदायिकता की समस्या सबसे प्रमुख मानी जाती है। यह समस्या इतनी गम्भीर होती जा रही है कि कोई भी सरकार इसका उचित समाधान खोजने में सफल नहीं हो पा रही है और न ही विभिन्न राजनीतिक दलों में इस समस्या के समाधान के बारे में कोई आम राय ही बन पा रही है। साम्प्रदायिकता की भाँति क्षेत्रवाद भी भारतीय समाज की एक प्रमुख समस्या है। आज भी अनेक राज्यों में विभाजन की माँग सरकार के लिए चिन्ता का विषय बनी हुई है।

2.1 प्रस्तावना

परिवार से लेकर बाजार तक की विभिन्न सामाजिक संस्थाएँ एक ओर लोगों को परस्पर सम्पर्क में लाती हैं तथा उनमें प्रबल सामूहिक पहचान स्थापित करती हैं, तो दूसरी ओर यही संस्थाएँ असमानता और अपवर्जन का स्रोत भी हो सकती हैं। किसी समाज या समुदाय की संस्कृति में पाई जाने वाली विविधता असमानताओं के बजाय अन्तरों पर बल देती है। उदाहरणार्थ, जब हम यह कहते हैं कि भारत में सांस्कृतिक विविधता पाई जाती है तो इससे तात्पर्य वहाँ पाए जाने वाले अनेक प्रकार के सामाजिक समूहों एवं समुदायों से है जो भाषा, जाति, प्रजाति, धर्म, पन्थ आदि द्वारा परिभाषित होते हैं। चूँकि सांस्कृतिक पहचानें अत्यन्त प्रबल होती हैं, इसलिए सांस्कृतिक विविधता एक कठोर चुनौती प्रस्तुत करती है। प्रत्येक व्यक्ति को अपना अस्तित्व बनाए रखने हेतु एक स्थायी पहचान की आवश्यकता होती है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा हमें पता चलता है कि हमारे माता-पिता, परिजन, नातेदार, समूह तथा समुदाय कौन-सा है। समुदाय ही हमें भाषा और सांस्कृतिक मूल्य प्रदान करता है तथा हमारी स्वयं की पहचान को बनाता है।

2.2 साम्प्रदायिकता का अर्थ

श्रीकृष्णदत्त भट्ट के अनुसार साम्प्रदायवाद का अर्थ है मेरा साम्प्रदाय, मेरा पथ, मेरा मत ही सबसे अच्छा है मेरे साम्प्रदाय की ही तूती बोलनी चाहऐं उसकी ही सत्ता मानी

जानी चहिऐं स्मिथ के अनुसार एक साम्प्रदाय व्यक्ति अथवा समूह वह है कि जो अपने धार्मिक या भाषा भाषी समूह को एक ऐसी पूर्थक राजनैतिक तथा समाजिक इकाई के रूप में देखता है जिसके हित अन्य समूहों से पूर्थक होते है और जो अक्सर उनके विरोधी भी हो सकते है।

2.3 साम्प्रदायिकता की समस्या

अब तो भारत में शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता हो जिस दिन दैनिक अखबार में साम्प्रदायिक दंगों का समाचार न होता हो। यह साम्प्रदायिक दंगे कहीं दो सम्प्रदायों या धर्मों के बीच, तो कहीं एक ही धार्मिक सम्प्रदाय के दो उप-सम्प्रदायों के बीच, तो कहीं विभिन्न जातियों के बीच अपना रंग दिखाते रहते हैं। इनके परिणामस्वरूप जन और धन की बहुत हानि होती है और समाज के साम्प्रदायिक सद्भाव के हृदय-पटल पर दरार की गहरी रेखा खिंच जाती है। एस० एल० शर्मा के अनुसार यद्यपि भारत में साम्प्रदायिकता का एक लम्बा इतिहास रहा है तथापि पिछले कुछ वर्षों में यह एक अत्यन्त चिन्ताजनक विषय बन गया है। यह उन क्षेत्रों में भी फैलता जा रहा है जिनमें पहले ऐसा नहीं होता था; उदाहरणार्थ—राजस्थान में जयपुर, उत्तर प्रदेश में बदायूँ तथा मध्य प्रदेश में रतलाम इत्यादि। साथ ही, पहले साम्प्रदायिक हिंसा छोटे नगरों तक सीमित थी परन्तु अब वह विकास की ओर अग्रसर व्यापारिक तथा औद्योगिक नगरों (जैसे अहमदाबाद, जमशेदपुर, भिवण्डी, मुरादाबाद आदि) में भी फैलती जा रही है। कुछ नगरों (जैसे अलीगढ़, मेरठ, हैदराबाद आदि) साम्प्रदायिकता की दृष्टि से अत्यन्त संवेदनशील बन गए हैं तथा इनमें सदैव हिंसा का डर बना रहता है। बिपन चन्द्र ने उचित ही लिखा है, ''साम्प्रदायिकता सम्भवत: सबसे गम्भीर समस्या है जिसका सामना भारतीय समाज आज कर रहा है।'' इसलिए इस समस्या का समाधान ढूँढना राष्ट्रहित के लिए बहुत आवश्यक है। इस समस्या की प्रकृति पर प्रकाश डालते हुए डी० आर० गोयल ने इस बात पर बल दिया है कि साम्प्रदायिक तनावों तथा उपद्रवों को मौलिक एकता की कमी के सूचक के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि एक ऐसे कारक के रूप में जिससे विघटन होता है। यह सत्य है कि इससे एकता में कुछ रुकावट पड़ती है परन्तु आधुनिक तकनीकी तथा विचारों से ऐसा होना सम्भव है। इस समस्या को सही रूप से आँकने के लिए यह आवश्यक है कि साम्प्रदायिकता के अर्थ एवं कारणों को समझा जाए।

साम्प्रदायिकता एक निम्न कोटि की विभाजनात्मक प्रवृत्ति है जिसके कारण प्रथमत: देश का विभाजन हुआ तथा स्वतन्त्रता के पश्चात् साम्प्रदायिक तनावों तथा उपद्रवों ने राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में बाधा डाली है। इन उपद्रवों से हिंसा भड़कती है तथा तनाव पैदा होता है जिससे राष्ट्रीयता एवं राष्ट्र-निर्माण की भावनाएँ प्रभावित होती हैं। साम्प्रदायिकता प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में एक कलंक है और राष्ट्र-निर्माण को नुकसान पहुँचाती है।

धार्मिक पहचान पर आधारित आक्रामक उग्रवाद को सामान्य बोलचाल की भाषा में सम्प्रदायवाद या साम्प्रदायिकता कहते हैं। उग्रवाद अपने आप में एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने ही समूह को वैध या श्रेष्ठ समूह मानता है और अन्य समूहों को निम्न, अवैध अथवा विरोधी समझता है। अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता एक आक्रामक राजनीतिक विचारधारा है जो धर्म से जुड़ी होती है। यद्यपि अंग्रेजी भाषा का 'कम्यूनल' शब्द व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय या सामुदायिकता से जुड़ा हुआ है, तथापि भारत एवं दक्षिण एशियाई देशों में साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया जाता। साम्प्रदायिकता व्यक्ति में एक ऐसी आक्रामक राजनीतिक पहचान बनाती है कि वह अन्य सम्प्रदायों के लोगों की निन्दा करने या उन पर आक्रमण करने को तैयार हो जाते हैं। साम्प्रदायिकता में धार्मिक पहचान अन्य सभी की तुलना में सर्वोपरि होती है अर्थात् इसमें अमीर-गरीब, व्यवसाय, जाति, राजनीतिक विश्वास इत्यादि के आधार पर अन्तर नहीं होता। भारत में साम्प्रदायिकता एक विशेष मुद्दा मानी जाती है। इसका कारण यह है कि साम्प्रदायिकता समय-समय पर तनाव एवं हिंसा का पुनरावर्तक स्रोत रही है।

धर्मनिरपेक्षता अथवा लौकिकता सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्त में प्रस्तुत सर्वाधिक जटिल शब्द माने जाते हैं। पश्चिम में इन शब्दों का मुख्य भाव चर्च और राज्य की पृथकता का द्योतक है। धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के पृथक्करण में पश्चिम के इतिहास में एक बड़ा मोड़ ला दिया क्योंकि इस विचारधारा ने आधुनिकता के आगमन और विश्व को समझने के धार्मिक तरीकों के विकल्प के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया। भारतीय सन्दर्भ में पश्चिमी भाव के अतिरिक्त धर्मनिरपेक्षता के कुछ अन्य अर्थ भी हैं। इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग 'साम्प्रदायिक' के विलोम के रूप में किया जाता है अर्थात् वह व्यक्ति या राज्य धर्मनिरपेक्ष है जो किसी

विशेष धर्म का अन्य धर्मों की तुलना में पक्ष नहीं लेता। इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक उग्रवाद का विरोधी भाव है और इसमें धर्म के प्रति विद्वेष का भाव होना आवश्यक नहीं होता। धर्मनिरपेक्षता का यह भाव सभी धर्मों के प्रति समान आदर का द्योतक होता है, न कि अलगाव या दूरी का।

साम्प्रदायिक तनाव या साम्प्रदायिकता एक ऐसा शब्द है जो भारतीय पृष्ठभूमि में समस्याबोधक और दुर्भाग्यपूर्ण अर्थ वाला हो गया है। पश्चिमी देशों में यह शब्द सामुदायिक सहायता एवं भाईचारे के लिए प्रयोग होता है। पश्चिमी समाजों में यह एक वैचारिकी *(Ideology)* को व्यक्त करता है जिसका उद्देश्य सामुदायिकता की भावना, हम की भावना तथा पारस्परिक सहायता की भावना की पुनर्स्थापना करना है। अत: वहाँ यह शब्द धनात्मक रूप में प्रयोग होता है। भाषा विज्ञान की दृष्टि से अंग्रेजी शब्द *'Communalism' 'communis'* शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'मिल-जुलकर रहना'; परन्तु हमारे समाज की विशेष परिस्थितियोंवश यहाँ साम्प्रदायिकता से अभिप्राय अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय अथवा सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, दयादृष्टि, घृणा, विरोध व आक्रमण की भावना से है जिसका आधार वह वास्तविक या काल्पनिक भय है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे सम्प्रदाय को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की हानि पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है या वही हमारे कष्टों के लिए जिम्मेदार है। अत: भारत में यह शब्द ऋणात्मक अर्थ के रूप में प्रयोग होता है। एस० एल० शर्मा के अनुसार, साम्प्रदायिकता शब्द का प्रयोग व्यापक तथा सीमित दोनों रूपों में किया जाता है। व्यापक अर्थ में यह दो या अधिक सम्प्रदायों में प्रतिरोध *(Antagonsim)* को व्यक्त करता है तथा ये सम्प्रदाय नृजातीय *(Ethnic)*, प्रजातीय, धार्मिक या जातीय आधार पर हो सकते हैं। विशिष्ट (सीमित) अर्थ में यह दो या अधिक धार्मिक सम्प्रदायों में प्रतिरोध को व्यक्त करता है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग भारतीय समाज के सन्दर्भ में विशिष्ट अर्थ में किया है। बलराज मधोक के शब्दों में, ''साम्प्रदायिकता कुछ धार्मिक वर्गों का राष्ट्र अथवा अन्य धार्मिक वर्गों की कीमत पर अपने लिए विशेष राजनीतिक अधिकार एवं अन्य सुविधाओं की माँग करना है।'' इसी भावना से प्रेरित होकर अनेक साम्प्रदायिक संगठनों का निर्माण होता है।

बिपन चन्द्र ने साम्प्रदायिकता के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, ''साम्प्रदायिकता मौलिक रूप से और सबसे ऊपर एक विचारधारा *(Ideology)* है जिसके साम्प्रदायिक दंगे

और अन्य रूपों में साम्प्रदायिक हिंसा परिणाम हैं। साम्प्रदायिक विचारधारा तो बिना हिंसा के भी अस्तित्व बनाए रख सकती है परन्तु साम्प्रदायिक हिंसा बिना साम्प्रदायिक विचारधारा के नहीं हो सकती।'' उन्होंने आगे लिखा है कि साम्प्रदायिकता में तीन तत्त्व अथवा चरण होते हैं—प्रथम, यह केवल धर्म तक ही सीमित नहीं होती अपितु इसका विश्वास यह होता है कि एक धर्म के अनुयायियों के आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक हित भी समान हैं; द्वितीय, इसका यह भी विश्वास है कि अन्य धर्म या धर्मों के अनुयायियों के राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक हित उनके सम्प्रदाय से भिन्न हैं; तथा तृतीय, सम्प्रदायों के लौकिक हित न केवल भिन्न हैं वरन् एक-दूसरे के विरोधी भी हैं।

2.4 साम्प्रदायिक तनावों एवं उपद्रवों के कारण

ऐसिहासिक कारक – यह एक ऐसिहासिक सत्य है कि मुसलमान बाहर से आये और उन्होंने भारत में अपने धर्म प्रचार के लिए तलवार एवं जोर जबरदस्ती का सहारा लिया। मुसलिम लिग की मांग ने भारत के दो टुकटे किये विभाजन के समय दोनों ओर से होने वाले दंगों से हुई हानियों को कई लोग आज तक नही बुला पायें ।

सॉस्कृतिक भिन्नता – साम्प्रदायिकता को जन्म देने में एक महत्वपूर्ण कारक हिन्दू एवं मुसलमानों की सॉस्कृतिक भिन्नता है दोनों का रहन सहन खान पान रीति रिवाज एवं विचार धारा में बहुत भिन्नता है यह सॉस्कृतिक मत भेद मन मुटाव एवं तनाव पैदा करता है और दोनो साम्प्रदायों में अलगावों की स्थिति बनी रहती है।

राजनैतिक स्वार्थ – राजनैतिक स्वार्थ भी साम्प्रदायिक तनाव एवं उपद्रवो एक प्रमुख कारण है कई राजनैतिक दलों का गठन धार्मिक अधार पर किया जाता है । यह राजानैतिक दल मत प्राप्त करने एवं राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए साम्प्रायिकता की आग भडकाते है।

साम्प्रायिक सगठन – जैन, सिक्ख, हिन्दू और मुसलमानों में कई साम्प्रादयिक संगठन पाये जाते है यह साम्प्रायिक संगठन अपने अपने मतावलम्बियों को संगठित करते है और उन्हें दूसरों के प्रति भडकाते है।

2.5 साम्प्रदायिकता के कारणों की खोज

आधुनिक साम्प्रदायिक उपद्रव न तो धर्म की उच्चता तथा निम्नता पर आधारित हैं और न ही संघर्षात्मक समूहों में उपद्रव है, अपितु एक सम्प्रदाय के व्यक्ति दूसरे सम्प्रदाय के व्यक्तियों से बदले की भावना से लड़ते हैं क्योंकि किसी एक सम्प्रदाय द्वारा दूसरे को किसी बात के लिए दोषी मान लिया जाता है। इस भाँति, साम्प्रदायिकता एक जटिल भावात्मक तथ्य को प्रकट करती है। अनेक विद्वानों ने उसके कारणों की खोज का प्रयास किया है। परिणामत: कई स्पष्टीकरण भी उभरे हैं। कुछ ने आर्थिक विषमता को तो कुछ ने विभिन्न सम्प्रदायों के बीच महत्त्वाकांक्षाओं और उभरते हुए वर्गों को साम्प्रदायिक दंगों के लिए दोषी ठहराया है। इन विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर साम्प्रदायिकता के निम्नलिखित प्रमुख कारणों का वर्णन किया जा सकता है—

***1.* धार्मिक संकीर्णता–**भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का एक कारण बलपूर्वक धर्म प्रचार कहा जा सकता है। मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के बाद कुछ मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाना शुरू किया। इससे हिन्दुओं में संकीर्णता एवं घृणा की भावनाएँ बढ़ीं। पुर्तगालियों तथा अंग्रेजों ने भी शासन को अधिक मजबूत बनाने के लिए पादरियों का सहारा लिया और ईसाई धर्म का प्रचार किया तथा धर्म परिवर्तन को प्रोत्साहित किया। आज यही धार्मिक संकीर्णता की प्रबल भावना हमें हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, सिक्खों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्धों में देखने को मिलती है। आज यही धार्मिक संकीर्णता साम्प्रदायिकता के पीछे एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। प्रमुख राजनीतिशास्त्री प्रो० इम्तियाज अहमद ने इस तथ्य की पुष्टि करते हुए कहा है कि पिछले डेढ़-दो दशक के दौरान हमारे देश के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक वातावरण में जो संकीर्णता आती जा रही है, *2002* ई० में अहमदाबाद और गोधरा की साम्प्रदायिक घटना उसी की कड़ी हैं और कुछ हद तक इसका परिणाम भी हैं।

***2.* अपने धर्म के प्रति श्रेष्ठता एवं सम्मान की भावना**—साम्प्रदायिकता का दूसरा कारण यह है कि प्रत्येक सम्प्रदाय का व्यक्ति अपने धार्मिक विश्वासों से इतना जकड़ चुका है कि उसमें धार्मिक सहिष्णुता बिलकुल नहीं रह गई है। आज विविध प्रकार के सेवा कार्य भी धर्म के नाम पर होते हैं। धर्मशालाएँ, स्कूल, मन्दिर, आदि धर्म पर ही आधारित हैं। आज धर्म और उसके

कार्य शक्ति-सन्तुलन से भी सम्बन्धित हो गए हैं। इन सबसे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है।

***3.* दोषपूर्ण नेतृत्व**—साम्प्रदायिकता का तीसरा कारण हमारा दोषपूर्ण नेतृत्व है। वर्तमान में राजनीतिक नेता नेतृत्व के लिए धर्म का सहारा लेते हैं और धार्मिक नेता राजनीति में अवैध रूप से प्रविष्ट हो रहे हैं। हिन्दुओं में यह भावना पैदा हो गई है कि वे बहुमत में होते हुए भी उत्पीड़न के शिकार हैं और सरकार अल्पमतों को तुष्ट करने में लगी हुई है। इसलिए और कितना सहा जाए? दूसरी ओर, मुसलमान अल्पसंख्यक होने के कारण बहुसंख्यकों द्वारा अपने उत्पीड़न की बात, तो कुछ सिक्ख खालिस्तान की बात करते हैं।

***4.* उग्रवादी विचारधारा**—भारत में साम्प्रदायिक तनाव के लिए उग्रवादी विचारधारा तथा इसमें विश्वास रखने वाले उग्रवादी नेताओं की भूमिका से भी इनकार नहीं किया जा सकता। प्रो० इम्तियाज अहमद ने गुजरात में हाल में ही हुए दंगों के सन्दर्भ में इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा है कि भारत में राज्य का जो ढाँचा है, वह बुनियादी तौर पर धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक सन्तुलन पर आधारित है। यहाँ कि अधिकतर जनता इस अवधारणा को स्वीकार करती है और इसी के अनुरूप आचरण भी करती है। उनकी सार्वजनिक चेतना भी इसकी पक्षधर है, लेकिन समुदायों के हाशिए पर जो उग्रवादी विचारधारा रखने वाले लोग हैं, वे इससे भिन्न राय रखते हैं। ऐसे लोग इस समय देश के वातावरण पर हावी हैं और इसी के कारण राज्य की अपने नागरिकों को सुरक्षा देने की क्षमता प्रभावित हुई है, या दूसरे शब्दों में कहें तो ऐसा करने में राज्य असमर्थ सिद्ध हुआ है।

***5.* राजनीतिक स्वार्थ–**भारत में स्वतन्त्रता के बाद से ही राजनीति ने साम्प्रदायिकता का संरक्षण किया है। धर्म का राजनीतिकरण हुआ है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार शाहबानो तथा रामजन्मभूमि-बाबरी मसजिद विवाद इसी राजनीतिकरण तथा राजनीतिक संरक्षण का परिणाम हैं। कुछ विद्वानों ने तो साम्प्रदायिकता को धर्म व राजनीति में अपवित्र (दुष्ट) गठबन्धन के रूप में परिभाषित करने पर बल दिया है। राजनीतिक स्वार्थ के कारण भी साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन मिलता है। अंग्रेजों ने शासन चलाने के लिए 'फूट डालो और राज करो' की नीति को अपनाया; इसलिए उन्होंने जातिभेद और धर्म-भेद का सहारा लिया। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय

नेताओं और विभिन्न वर्गों ने भी अपने व्यक्तिगत राजनीतिक हित की पूर्ति के लिए इसी सिद्धान्त का सहारा लिया है, जिससे जातिवाद और साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिलता है।

***6.* मनोवैज्ञानिक कारण**–प्राय: अल्पसंख्यकों और पिछड़े वर्गों में बहुसंख्यकों द्वारा सताए जाने की भावना होती है। चाहे यह उत्पीड़न वास्तव में हो और चाहे वे ऐसा महसूस कर रहे हों, परन्तु उनके लिए यह एक सत्य है। इसके अतिरिक्त, अपनी अस्मिता के मिटने का भी खतरा उन्हें महसूस होता है। कभी-कभी अपने सामाजिक कष्टों के लिए दोषारोपण के लिए अन्य सम्प्रदाय को चुन लिया जाता है और अपनी भग्नाशाओं का आक्रोश उन पर निकाल लिया जाता है। अन्त में, एक सम्प्रदाय द्वारा दूसरे को सबक सिखाने की प्रवृत्ति भी साम्प्रदायिकता की आग में घी का काम करती है।

***7.* आर्थिक एवं सामाजिक विषमता**—आर्थिक सम्पन्नता के स्तर की दृष्टि से विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में विषमता है, विशेषत: विकास की प्रक्रिया में कुछ सम्प्रदाय आगे बढ़ गए हैं तो कुछ इस दौड़ में पिछड़ गए हैं। लेकिन सभी के हृदय में विकास के फलों में हिस्सा प्राप्त करने की निरन्तर वृद्धिशील चाह होती है। इसलिए आर्थिक रूप से पिछड़े सम्प्रदायों में यह भावना आ जाती है कि वे सापेक्षिक रूप से उस सब से वंचित कर दिए गए हैं जो उन्हें देय था। इसलिए उन हितों की पुन: प्राप्ति के लिए या 'दोषी' को दण्डित करने के लिए धर्म का एक यन्त्र के रूप में प्रयोग किया जाता है। लुईस ड्यूमों तथा सतीश सबरवाल जैसे विद्वानों ने सामाजिक पहचान (विशिष्टता) तथा साम्प्रदायिक पृथक्करण को उभारने में धर्म की महत्त्वपूर्ण भूमिका की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आर्थिक प्रतिद्वन्द्विता को भी इसका एक कारण माना गया है। असगर अली इन्जीनियर ने अनेक अध्ययनों के निष्कर्षों के आधार पर हमें यह बताया है कि मुसलमानों व हिन्दुओं में आर्थिक प्रतियोगिता ने भी साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। इम्तियाज अहमद ने मुरादाबाद तथा अलीगढ़ में साम्प्रदायिक दंगों का एक कारण पहले से संस्थापित हिन्दू औद्योगिक वर्ग एवं नवोदित मुस्लिम उद्यमिता वर्ग में आर्थिक प्रतियोगिता बताया है।

***8.* अन्तर्राष्ट्रीय कारक**—आजकल एक देश में साम्प्रदायिक दंगों में और साम्प्रदायिकता के प्रोत्साहन में किसी विदेशी शक्ति का हाथ होना; असामान्य घटना होना नहीं रह गया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रत्यक्ष रूप से साम्प्रदायिकता का महत्त्वपूर्ण कारक बन गई है। हमारे देश

में पंजाब समस्या, असम समस्या, कश्मीर समस्या और देश में फैले हिन्दू-मुस्लिम दंगों के पीछे विदेशी हाथ की भूमिका से इनकार नहीं किया जा सकता।

2.6 साम्प्रदायिकता या साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र

भारत के सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा का अपना एक अलग समाजशास्त्र होता है और यह हिंसा के अन्य सभी रूपों के समाजशास्त्र से भिन्न होता है। इनके अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा को छोड़कर अन्य सभी प्रकार की हिंसा के सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारण होते हैं, जबकि साम्प्रदायिक हिंसा के साथ ऐसा नहीं होता। इसका आर्थिक विकास से कोई सम्बन्ध नहीं होता। अन्य सभी प्रकार की हिंसा कहीं-न-कहीं गरीबी और असमानता से जुड़ी हुई होती है, जबकि साम्प्रदायिक हिंसा अक्सर पूर्व-नियोजित एवं कुछ लोगों द्वारा निहित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए होती है। इन्होंने अपने तथ्य की पुष्टि हेतु आर्थिक रूप से भारत के अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक दृष्टि से सम्पन्न राज्य गुजरात तथा महाराष्ट्र का उदाहरण दिया है, जिनमें साम्प्रदायिक तनाव सबसे अधिक पाया जाता है।

प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा कभी भी, कहीं भी हो सकती है। यह एक नगरीय अवधारणा है और गाँव में अभी इसका प्रभाव लगभग नहीं के बराबर है। इस बार गुजरात में हुए साम्प्रदायिक तनाव का प्रभाव नगरों के इर्द-गिर्द बसे गाँव तक भी पहुँच गया है। इनके अनुसार लोगों में व्याप्त डर उन नगरों में साम्प्रदायिक हिंसा की सम्भावना को बढ़ा देता है जिनमें पहले भी साम्प्रदायिक हिंसा होती रही है। ऐसे नगरों में किसी खास समुदाय या सम्प्रदाय की अलग कॉलोनियों की संख्या बढ़ जाती है और इस प्रकार वे साम्प्रदायिक हिंसा के समय अलग से पहचाने जाते हैं। ऐसी अलग कॉलोनियों का सबसे बड़ा नुकसान यह होता है कि समाज का एक समुदाय या दूसरे समुदाय से संवाद कम हो जाता है, समाज का बहुलवाद कमजोर हो जाता है, संकीर्ण मानसिकता पनपने लगती है, जो अगली साम्प्रदायिक हिंसा को जमीन मुहैया कराती है। इनके अनुसार साम्प्रदायिक हिंसा का मूल कारण धार्मिक न होकर राजनीतिक होता है। साम्प्रदायिक तनाव का फायदा उठाकर कुछ नेता टाइप के लोग उस पर राजनीति करने लगते हैं, तब जाकर यह तनाव साम्प्रदायिक हिंसा का रूप ले लेता है।

2.7 साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

डी० आर० गोयल ने साम्प्रदायिकता को रोकने के निम्नलिखित तीन उपाय बताए हैं—

1. प्रशासनिक व्यवस्था इतनी प्रभावशाली बनाई जानी चाहिए कि साम्प्रदायिक तनावों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा इन्हें रोकने के लिए कठोर कदम उठाए जा सकें।

2. साम्प्रदायिक तत्त्वों को पहचान कर उनका भण्डा-फोड़ करना चाहिए ताकि सन्देह की स्थिति में जनता ऐसे तत्त्वों का साथ न दे।

3. राष्ट्रीयता के बारे में साम्प्रदायिक विचारों का मुकाबला राजनीतिक प्रचार द्वारा किया जाना चाहिए। शिक्षा-संस्थाओं तथा शिक्षा प्रक्रियाओं को इन तत्त्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इन सब उपायों से अधिक कारगर साम्प्रदायिक संगठनों पर रोक लगाना तथा उनकी गतिविधियों पर निरन्तर ध्यान रखने की आवश्यकता है। उन प्रादेशिक दलों का, जोकि साम्प्रदायिकता अथवा प्रादेशिकता के नाम पर जनता को गुमराह कर रहे हैं, राजनीतिक स्तर पर मुकाबला किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित सुझाव भी साम्प्रदायिकता को रोकने में सहायक हो सकते हैं—

1. साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाले समाचारपत्रों व साहित्य के प्रकाशकों के विरुद्ध कठोर कदम उठाए जाने चाहिए।

2. राष्ट्रीय जन संचार के साधनों का प्रयोग राष्ट्रीय एकता के लिए जनमत तैयार करने के लिए किया जाना चाहिए।

3. धार्मिक नेताओं को लोगों को भड़काने की अपेक्षा सहिष्णुता के विकास के लिए सहयोग देना चाहिए।

4. नैतिक शिक्षा का प्रचार किया जाना चाहिए।

साम्प्रदायिकता के विषय में यह कहा जा सकता है कि स्थिति अभी लाइलाज नहीं हुई है। असगर अली इन्जीनियर ने उचित ही लिखा है कि, ''जनसमूह धार्मिक है, साम्प्रदायिक नहीं है। सभी समुदायों में शुभेच्छा वाले धार्मिक और लौकिक नेता भी विद्यमान हैं। हम निश्चय ही साम्प्रदायिकता की आवृत्ति और गहराई को कम कर सकते हैं।'' एस० एल० शर्मा ने जनता,

विशेषत: युवा पीढ़ी के मस्तिष्क को असाम्प्रदायिक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया है। शिक्षा को लौकिकीकरण अथवा धर्मनिरपेक्षता के अनुरूप मूल्यों को बढ़ावा देने वाली बनाना होगा। कर्फ्यू, बड़े पैमाने पर गिरफ्तारियाँ तथा शान्ति समितियों का गठन; कानून व व्यवस्था से सम्बन्धित साम्प्रदायिकता के आयाम पर नियन्त्रण के केवल अल्पकालीन उपाय हैं। दीर्घकालीन उपायों में राजनीति को स्वच्छ बनाना, शिक्षा को पुनर्गठित करना तथा युवा पीढ़ी का उचित समाजीकरण प्रमुख हैं।

साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए धर्मनिरपेक्षता को बढ़ावा देना चाहिए। धर्मनिरपेक्षता अथवा धर्मनिरपेक्षतावाद सामाजिक और राजनीतिक सिद्धान्त में प्रस्तुत सर्वाधिक जटिल शब्द माने जाते हैं। पश्चिम में इन शब्दों का मुख्य भाव चर्च और राज्य की पृथक्ता का द्योतक है। धार्मिक और राजनीतिक सत्ता के पृथक्करण में पश्चिम के इतिहास में एक बड़ा मोड़ ला दिया क्योंकि इस विचारधारा ने आधुनिकता के आगमन और विश्व को समझने के धार्मिक तरीकों के विकल्प के रूप में अपने आप को प्रस्तुत किया। भारतीय सन्दर्भ में पश्चिमी भाव के अतिरिक्त धर्मनिरपेक्षता के कुछ अन्य अर्थ भी हैं। इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग 'साम्प्रदायिक' के विलोम के रूप में किया जाता है अर्थात् वह व्यक्ति या राज्य धर्मनिरपेक्ष है जो किसी विशेष धर्म का अन्य धर्मों की तुलना में पक्ष नहीं लेता। इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक उग्रवाद का विरोधी भाव है और इसमें धर्म के प्रति विद्वेष का भाव होना आवश्यक नहीं होता। धर्मनिरपेक्षता का यह भाव सभी धर्मों के प्रति समान आदर का द्योतक होता है, न कि अलगाव या दूरी का।

भारतभूमि पर अनेक अल्पसंख्यक समुदाय बसते हैं। उनके प्रवास की लम्बी अवधि के दौरान उनका कुछ सीमा तक भारतीयकरण भी हुआ है। सभी धर्मों में नीति के सामान्य नियम हैं। सभी मानव प्रेम, समानता, सुविचार, सुवचन और सुआचरण पर जोर देते हैं। भारतीय समाज की यह धार्मिक बहुलता उसके लिए धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय नीति की अनिवार्यता को प्रकट करती है। भारतीय समाज की समृद्धि और ऐतिहासिक परम्परा में, सभी धर्मावलम्बी समान रूप से भागीदार हैं। भारत का सन्देश ही मानव-प्रेम है और उसकी खोज आध्यात्मिकता है। आज के भौतिकवाद और विज्ञानवाद ने मानव-समाज को विनाश के कगार पर ला खड़ा किया है। कदाचित् इसी क्षण के लिए प्रकृति ने भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनाए रखा है। उसका एक ही मिशन है—मानव-जाति को भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के सन्तुलित योग की शिक्षा देकर

सही रास्ता दिखाना। भारत का धार्मिक बहुलवाद भारतीय समाज के लिए गर्व का विषय होना चाहिए। यही वह प्रयोगशाला है जो धार्मिक सहअस्तित्व एवं सहयोग के प्रयोगसिद्ध परिणाम दे सकती है। भारतीय चेतना को इसी समय की माँग को पूरा करना है। यह उसका विश्व के प्रति नैतिक दायित्व है। यदि हम इसमें असफल रहे तो समस्त मानव जाति के साथ हम भी विनष्ट हो जाएँगे। हमें सिद्ध करना है कि भारतभूमि वह महान उद्यान है जहाँ देशी और विदेशी सभी धार्मिक बिरवे पनप सकते हैं, वृक्ष बन सकते हैं, पल्लवित और पुष्पित हो सकते हैं और सारे विश्व को अपनी महक से भर रहे हैं। भारत में बहुलवादी परम्पराओं के व्यापक आधार विविधता में एकता द्वारा प्रकट होते हैं। विविधताएँ होते हुए भी भारत एक बहुलवादी समाज है जिसमें सांस्कृतिक एकता पाई जाती है।

2.8 शब्दावली

साम्प्रदायिकता—धार्मिक पहचान पर आधारित आक्रामक उग्रवाद को साम्प्रदायिकता कहते हैं। अपने सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदाय के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, हेय दृष्टि, घृणा, विरोध एवं आक्रमण की वह भावना साम्प्रदायिकता कहलाती है जिसका आधार यह वास्तविक या काल्पनिक आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या जान-माल की क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है।

राष्ट्र-निर्माण— राष्ट्र-निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति लघु जनजातियों, गाँवों अथवा स्थानीय समुदायों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना को वृहत् केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था को अन्तरित (समर्पित) कर देते हैं। यह राष्ट्र के प्रति वफादारी विकसित करने की प्रक्रिया है।

क्षेत्रवाद —क्षेत्रवाद से अभिप्राय अपने क्षेत्र-विशेष के प्रति अन्धभक्ति अथवा पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा करता है।

2.9 अभ्यास प्रश्न

1. साम्प्रदायिकता किसे कहते हैं? इसके प्रमुख कारण बताइए।

2. भारत में साम्प्रदायिकता की समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Sharma, S. L., ''Communalism : Trends and Roots'' in **Competition Affairs**, September, 1991.
2. Srinivas, M. N., **Social Change in Modern India**, New Delhi : Orient Longman, 1995.
3. योगेन्द्र सिंह, ''साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र'', **हस्तक्षेप**, राष्ट्रीय सहारा, 9 मार्च 2002 ई0, पृष्ठ 2.
4. Waterhouse, Eric S., **Encyclopaedia of Religion and Ethics**, Vol. XI, London, 1949.

इकाई – 3

क्षेत्रवाद

Regionalism

इकाई के रूपरेखा

3.0 उददेश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 क्षेत्रवाद का अर्थ

3.3 क्षेत्रवाद की विशेषतायें

3.4 क्षेत्रवाद के उददेश्य

3.5 भारत में क्षेत्रवाद के विकास के कारण

3.6 क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति

3.7 भारत में क्षेत्रवाद के निराकरण हेतु सुझाव

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 उददेश्य

क्षेत्रवाद अथवा प्रादेशिकता की समस्या भारत के राष्ट्र–निर्माण में एक अवरोधक तत्त्व है। प्रदेशों को विभिन्न आधारों जैसे भूगोल, आर्थिक विकास, भाषाई एकीकरण, जाति या जनजाति इत्यादि द्वारा परिभाषित किया जा सकता है। विभिन्न राज्यों में कभी–कभी भाषा के आधार पर झगड़े भी होते हैं। ऐसा माना जाता है कि राज्यों के भाषायी पुनर्गठन ने भारत का अहित ही किया हो यह भी वास्तविकता के विपरीत है। भाषा पर आधारित राज्यों ने भारतीय एकता को कोई ठेस नहीं पहुँचाई बल्कि उसे और मजबूत करने में सहयोग दिया। वस्तुत: भारत में भाषायी समुदायों

की भावनाओं की उपेक्षा शायद उतनी नहीं की गई है जितनी कि पड़ोसी देश श्रीलंका और पाकिस्तान में की गई है।

कई बार अनेक आधार परस्पर जुड़े होते हैं। क्षेत्रवाद अपने क्षेत्र अथवा राज्य के प्रति निष्ठा की संकीर्ण भावना है। कई बार ऐसा होता है कि किसी विशेष क्षेत्र या प्रदेश के लोग यह सोचते हैं कि उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक या संवैधानिक अधिकारों की उपेक्षा की जा रही है। इससे लोग अपने क्षेत्र या प्रदेश के विकास के लिए उन विशेषाधिकारों एवं अवसरों की माँग करने लगते हैं जोकि उन्हें सम्पूर्ण समाज के सन्दर्भ में करने चाहिए। क्षेत्रीय हितों द्वारा प्रभावित व्यक्ति अन्य प्रदेशों व सम्पूर्ण राष्ट्र के हितों की ओर कोई ध्यान नहीं देते हैं। इससे भी राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचता है। कुछ विद्वान् इसे राष्ट्रीयता में ही अन्तर्भूत प्रक्रिया बताते हैं। अतः इस इकाई में क्षेत्रवाद की समस्या से निपटने हेतु विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है।

3.1 प्रस्तावना

सामुदायिक पहचान जन्म तथा सम्बन्धित होने के भाव पर आधारित होती है। यह हमें किसी अर्जित योग्यता या उपलब्धि के आधार पर प्राप्त नहीं होती। जिस समुदाय में हमने जन्म लिया है उसकी सदस्यता हमें जन्म से ही मिल जाती है तथा वही हमारी पहचान बन जाता है। परिवारों, धार्मिक अथवा क्षेत्रीय समुदायों की सदस्यता के लिए न कोई योग्यता एवं कुशलता की आवश्यकता होती है और न ही किसी प्रकार की परीक्षा पास करनी पड़ती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने समुदाय से सम्बन्धित होकर अत्यन्त सुरक्षित एवं सन्तुष्ट महसूस करता है। वह भावात्मक रूप से अपने समुदाय से जुड़ा हुआ होता है। समुदाय के परस्परव्यापी दायरे ही हमारी दुनिया को सार्थकता प्रदान करते हैं और हमें एक पहचान देते हैं कि हम कौन हैं। यह पहचान एक प्रकार से प्रदत्त होती है तथा इतनी पक्की होती है कि उसे हिलाया नहीं जा सकता। धर्म तथा क्षेत्र के आधार पर पहचान इसके प्रमुख उदाहरण हैं।

3.2 क्षेत्रवाद का अर्थ

क्षेत्रवाद का अर्थ अपने क्षेत्र के प्रति लगाव की उस भावना से है जो व्यक्ति को अन्य क्षेत्रों की तुलना में अपने क्षेत्र को प्राथमिकता देने तथा अन्यों की उपेक्षा करने हेतु प्रेरित करती है। भारत

जैसे देश में क्षेत्रवाद का आधार विभिन्न भाषाएँ, संस्कृतियाँ, जनजातियाँ तथा धर्मों की विविधता है। इन भिन्नताओं को विशेष क्षेत्रों में पहचान चिह्नकों के भौगोलिक संकेन्द्रण के कारण भी प्रोत्साहन मिलता है। इसलिए यदि किसी क्षेत्र के व्यक्ति यह सोचते हैं कि अन्य क्षेत्रों की तुलना में उन्हें किसी चीज या सुविधा से वंचित रखा जा रहा है तो यह भावना अग्नि में घी का काम करती है। धर्म की तुलना में भाषा ने क्षेत्रीय तथा जनजातीय पहचान के साथ मिलकर भारत में नृजातीय राष्ट्रीय पहचान बनाने के लिए एक अत्यन्त सशक्त साधन का काम किया है।

क्षेत्रवाद की परिभाषा देना इतना सरल नहीं है क्योंकि प्रदेश को निर्धारित करने का कोई एक सामान्य आधार नहीं है। साथ ही, कई आधार आपस में जुड़े हुए होते हैं जिससे समस्या और भी जटिल हो जाती है। उदाहरणार्थ, केवल भाषाएँ प्रदेशों को परिभाषित करने के लिए पर्याप्त नहीं है। कई बार ऐसा होता है कि किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति अनुभव करते हैं कि उनके संवैधानिक उद्देश्यों (जैसे आर्थिक तथा सांस्कृतिक इत्यादि) की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जा रहा है अथवा पूरे नहीं हो रहे हैं। क्षेत्रवाद के बारे में दो दृष्टिकोण हमारे सम्मुख रखे गए हैं—प्रथम, अपने प्रदेश के प्रति भक्ति देश में बढ़ती हुई राष्ट्रीयता का ही परिणाम है। विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले लोग आर्थिक तथा सांस्कृतिक विकास के लिए वही विशेषाधिकारों एवं अवसरों की माँग करते हैं जिनकी पहले पूरे देश में माँग की जाती थी। द्वितीय, इसके बारे में एक अन्य दृष्टिकोण यह है कि क्षेत्रीय भावनाएँ राष्ट्रीय एकता में रुकावट है क्योंकि क्षेत्रीय उद्देश्यों की सर्वोच्चता के कारण राष्ट्रीय उद्देश्य पिछड़ जाते हैं। क्षेत्रीय भावना से ग्रसित व्यक्ति केवल अपने प्रदेश के उद्देश्यों की पूर्ति चाहता है तथा पड़ोसी प्रदेशों अथवा पूरे देश के उद्देश्यों को सामने नहीं रखता।

भारतीय सरकार का प्रमुख उद्देश्य सांस्कृतिक, धार्मिक तथा प्रजातीय अनेकताएँ एवं संघर्ष होते हुए भी एकता की भावना का विकास करना है। आर्थिक असमानताओं को जब राजनीतिक उद्देश्य के लिए शोषित किया जाता है तो क्षेत्रवाद की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा क्षेत्रीय संगठन जन्म लेने लगते हैं। आर० सी० पाण्डे के अनुसार, हिन्दी बोलने वाले तथा न बोलने वाले क्षेत्रों में संघर्ष के अतिरिक्त अन्य घटनाएँ; जैसे—असम में असमियों तथा बंगालियों में संघर्ष, महाराष्ट्र में शिव सेना द्वारा उत्तर भारतीयों का विरोध तथा तेलंगाना में आंध्रन का विरोध

क्षेत्रवाद की ओर इंगित करती है। अप्रभावित क्षेत्रों में भी स्थानीय माँगों को उठाया जा रहा है। पाण्डे के अनुसार, ''क्षेत्रवाद संघीय संरचना की एक समस्या है। एकता का शाब्दिक अर्थ है अंगों से समग्र का निर्माण करना। इसमें हम अनेकता को मानकर चलते हैं तथा अंगों को एक साथ मिलाना इसका उद्देश्य है। अंगों में अनेकता होते हुए भी पारस्परिक सहायता की भावना होनी चाहिए।''

अरुण चटर्जी के मतानुसार क्षेत्रवाद को बहु-परिणाम सम्बन्धी पृथक् विभागों से निर्मित प्रघटना तथा राष्ट्रीयता में ही निहित प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। क्षेत्रवाद तथा प्रान्तीयवाद में अन्तर है क्योंकि प्रान्तीयवाद में स्थानीयता, अलगाव तथा पृथकता के विचार निहित हैं। क्षेत्रवाद सामाजिक-सांस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन में अन्तर से शुरू होता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि किसी क्षेत्र की भाषा अथवा बोली को लेकर या उसकी आर्थिक स्थिति को लेकर वहीं के हित को सर्वोपरि रखकर राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करना ही क्षेत्रवाद या क्षेत्रीयता है।

3.3 क्षेत्रवाद की विशेषतायें

1. क्षेत्र के आधार पर प्रषासन का विवेकीकरण पाया जाता है।
2. राष्ट्रीय एकता के लिए जब सभी पर एक ही राजनीतिक विचारधारा भाषा सांस्कृतिक प्रतिमान आदि थोपे जाते है तो प्रतिक्रिया स्वरूप सामाजिक सांस्कृतिक प्रति आन्दोलन किया जाता है।
3. संघात्मक संरचना में अधिकाधिक उपसंस्कृतियाँ स्वायत्ता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक 5.प्रति आन्दोलन करती है।
4. क्षेत्रवाद स्थानीय देषभक्ति तथा क्षेत्रीय श्रेष्ठता की भावना को बल देता है।
5. क्षेत्रवाद एक सीखा हुआ व्यवहार है।
6. क्षेत्रवाद संकीर्णता ही पैदा करता है। क्योंकि एक क्षेत्र के लोग अपनी भाषा , संस्कृति ,
7. आदर्ष और सिद्धान्तों को ही श्रेष्ठ समझने लगते है। अपने हितो को ही सर्वोच्च प्राथमिकता देते है तथा अपनी मांग मंगवाने के लिए तोड़ फोड़ दंगे विरोध एवं आन्दोलन का सहारा लेते है।

3.4 क्षेत्रवाद के उद्देश्य

सैद्धान्तिक रूप से क्षेत्रवाद के निम्नलिखित पहलू तथा उद्देश्य हैं—

1. जहाँ पर प्रशासन तथा सत्ता का अधिक केन्द्रीकरण है वहाँ प्रदेशों के आधार पर प्रशासन का विकेन्द्रीकरण करना,
2. एक विशेष राजनीतिक विचारधारा तथा राष्ट्रीय एकता के विरुद्ध सामाजिक-सांस्कृतिक प्रति-आन्दोलन,
3. राष्ट्र के संघीय संरचना के अन्तर्गत उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों के लिए अधिक स्वायतता की माँग को लेकर राजनीतिक प्रति-आन्दोलन तथा
4. पृथकतावाद की नीति ताकि क्षेत्रीय समूह, जोकि किसी विशेष उप-सांस्कृतिक क्षेत्र में रहता है, के राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति की जा सके।

इन्हीं से सम्बन्धित क्षेत्रवाद के चार उद्देश्य हैं—

1. क्षेत्रीय संस्कृतियों का पुनर्गठन,
2. प्रशासनीय तथा राजनीतिक निक्षेपण या अवनति,
3. केन्द्र तथा राज्यों के संघर्षों को सुलझाने के लिए नियम बनाना ताकि दो अथवा अधिक उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों में संघर्ष टाला जा सके तथा
4. केन्द्र तथा राज्यों में राष्ट्र तथा उप-सांस्कृतिक क्षेत्रों में आर्थिक एवं राजनीतिक सन्तुलन बनाए रखना।

3.5 भारत में क्षेत्रवाद के विकास के कारण

क्षेत्रवाद जैसी समस्या का जन्म एवं विकास किसी एक कारण से नहीं होता है। इसके लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. **क्षेत्रीय विभिन्नता**—क्षेत्रवाद विभिन्न क्षेत्रों में पाई जाने वाली विभिन्नता का उत्पाद है। राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन के बाद भी अनेक क्षेत्रों में अलगाव का मनोभाव बना हुआ है; उदाहरणार्थ—महाराष्ट्र में विदर्भ या मराठवाड़ा, गुजरात में सौराष्ट्र, बिहार में झारखण्ड, मध्य प्रदेश में छत्तीसगढ़ या विन्ध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में बुन्देलखण्ड या उत्तराखण्ड या हरित प्रदेश, पश्चिमी बंगाल में गोरखालैण्ड तथा जम्मू-कश्मीर में लद्दाख की माँग इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। इनमें से कुछ-एक राज्यों में पृथक् राज्यों के निर्माण हो भी चुके हैं।

***2.* भाषायी लगाव**—भाषायी लगाव क्षेत्रवाद की उत्पत्ति का मुख्य कारक है। *1948* ई० में राज्य पुनर्गठन पर विचार करने हेतु नियुक्त दर आयोग ने भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन न करने का विचार व्यक्त किया था; परन्तु राजनीतिज्ञों ने अपने निहित स्वार्थ के लिए भाषायी हितों को आगे बढ़ाना जारी रखा। १९५३ ई० में तेलुगू भाषी लोगों के लिए तत्कालीन मद्रास राज्य का भाग लेकर आन्ध्र प्रदेश नामक नए राज्य की स्थापना की गई। *1956* ई० में भाषाओं के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया।

***3.* विभिन्न क्षेत्रों का असन्तुलित आर्थिक विकास**—राज्य के अलग-अलग भागों में आर्थिक विकास की असन्तुलित स्थिति भी क्षेत्रवाद के उदय का एक मुख्य कारक रही है। उदाहरणार्थ—आन्ध्र प्रदेश में तेलंगाना आन्दोलन, महाराष्ट्र में शिवसेना द्वारा चलाया गया आन्दोलन, असम में ऑल असम स्टूडेण्ट्स यूनियन *(AASU)* तथा ऑल असम गण-संग्राम परिषद् *(AAGSP)* द्वारा चलाए गए आन्दोलनों के पीछे यही मुख्य कारक हैं।

***4.* सामाजिक अन्याय एवं पिछड़ापन**—सामाजिक अन्याय एवं पिछड़ापन क्षेत्रवाद के उदय का एक और मुख्य कारण है। मुख्यत: जब इस पिछड़ेपन में आर्थिक पिछड़ापन भी मिल जाता है तो स्थिति और भी विषम हो जाती है।

***5.* धार्मिक संकीर्णता की भावनाएँ**—धर्म भी कई बार क्षेत्रीयवाद की भावनाओं को बढ़ाने में सहायता करता है। पंजाब में अकालियों की पंजाबी सूबे की माँग कुछ हद तक धर्म के प्रभाव का परिणाम ही थी।

***6.* निहित राजनीतिक स्वार्थ**—क्षेत्रवाद की भावनाओं को विकसित करने में राजनीतिज्ञों का भी हाथ रहता है। कई राजनीतिज्ञ यह सोचते हैं कि यदि उनके क्षेत्र का अलग राज्य बना दिया जाएगा तो इससे उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति हो जाएगी; अर्थात् उनके हाथ भी सत्ता लग जाएगी।

3.6 क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति

यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्षेत्रवाद का भारतीय राजनीति पर धनात्मक प्रभाव पड़ा है अथवा ऋणात्मक? रशीउद्दीन खाँ का मानना है कि क्षेत्रीय आन्दोलनों के कारण भारतीय संघ छिन्न-भिन्न हो जाएगा। यह धारणा मिथ्या सिद्ध हुई है। लगभग इसी प्रकार का दृष्टिकोण

मॉरिस जोन्स का भी है। जोन्स का मानना है कि ''क्षेत्रीय आन्दोलन उप-राष्ट्रवाद के विकास में सहायक होते हैं, जो कालान्तर में राष्ट्रवाद के विकास में सहायता करते हैं।'' इस दृष्टिकोण के समर्थकों का यह मानना है कि भारत में क्षेत्रीय आन्दोलन न्यूनाधिक रूप से पृथकतावादी नहीं रहे हैं। क्षेत्रवाद का लक्ष्य अपने क्षेत्र या समुदाय के लिए अधिक सुविधाएँ प्राप्त करना अथवा विकास की गति को तीव्र करना होता है।

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार क्षेत्रवाद का भारतीय राजनीति पर ऋणात्मक प्रभाव पड़ा है और इनमें आन्दोलनात्मक राजनीति को बढ़ावा मिला है। इस दृष्टिकोण के समर्थक विद्वानों के अनुसार क्षेत्रवाद ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म, भाषा, जाति जैसे विघटनकारी तत्त्वों का सहारा लिया है, जिससे भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में नवीन बाधाएँ पैदा हो रही हैं।

वास्तविक स्थिति इन दोनों दृष्टिकोणों के मध्य की है। भारत में विकास की गति असमान रही है, अतएव क्षेत्रीय धरातल पर विरोध स्वाभाविक है। यदि विकास के अवसरों और उससे प्राप्त लाभों का बँटवारा न्यायसंगत तरीके से हो सके तो क्षेत्रीय आन्दोलनों से भारत के संघीय ढाँचे पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा।

3.7 भारत में क्षेत्रवाद के निराकरण हेतु सुझाव

किसी भी लोकतान्त्रिक राष्ट्र के लिए, विशेष रूप से ऐसे राष्ट्र के लिए, जो अभी भी राष्ट्र-निर्माण और राष्ट्रीय एकीकरण की समस्याओं से जूझ रहा हो, क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति का विकास एक चिन्ताजनक विषय है। इस समस्या का समाधान एक सोची-समझी, सुविचारित रणनीति द्वारा ही हो सकता है। क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान के कुछ प्रभावशाली उपाय निम्नलिखित हैं—

1. सरकार को विकास कार्यक्रमों का निर्माण और उनका क्रियान्वयन कुछ इस प्रकार करना चाहिए कि सन्तुलित क्षेत्रीय विकास को बढ़ावा मिल सके। यह तभी सम्भव है जब नीतियों का निर्धारण राष्ट्रीय हित में हो न कि किसी क्षेत्र-विशेष के हित में।
2. विशिष्ट जातीय समुदाय की अपनी विशिष्ट संस्कृति और पहचान *(Identity)* को सुरक्षित रखने के लिए सरकार द्वारा विशेष प्रयास किए जाने चाहिए। इस आशय के

प्रावधान मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद *29-30* में भी किए गए हैं। इन्हें पूर्ण ईमानदारी के साथ लागू किया जाना चाहिए।

3. जहाँ तक सम्भव हो पिछड़े हुए क्षेत्रों के आर्थिक विकास पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे उन्हें राष्ट्र की मुख्य विकासधारा से जोड़ा जा सके। संघ सरकार को पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास पर विशेष ध्यान देने के लिए राज्य सरकारों को विशेष निर्देश देना चाहिए।
4. क्षेत्रवादी आन्दोलनों की हिंसात्मक प्रवृत्ति पर कठोरता से अंकुश लगाया जाना चाहिए।
5. राष्ट्रभाषा को सभी राज्यों को जोड़ने वाला सामान्य आधार बनाया जाना चाहिए। राष्ट्रभाषा के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं का भी उचित सम्मान होना चाहिए तथा उन्हें समृद्ध बनाया जाना चाहिए।

उपर्युक्त उपायों को अपनाने से क्षेत्रवाद की प्रवृत्ति का समाधान सम्भव है। यदि समय रहते इन उपायों पर ध्यान नहीं दिया गया तो सम्भव है कि एक बार फिर राज्यों का पुनर्गठन करना पड़े। क्षेत्रीयता की समस्या का समाधान करने के लिए राष्ट्रीयता की भावनाओं एवं राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन देना अनिवार्य है। राष्ट्रीय एकता की भावना, विभिन्न प्रदेशों का सन्तुलित आर्थिक विकास एवं विकास की उपयुक्त योजनाओं द्वारा इसका समाधान किया जा सकता है।

3.8 शब्दावली

राष्ट्र-निर्माण— राष्ट्र-निर्माण वह प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति लघु जनजातियों, गाँवों अथवा स्थानीय समुदायों के प्रति निष्ठा एवं समर्पण की भावना को वृहत् केन्द्रीय राजनीतिक व्यवस्था को अन्तरित (समर्पित) कर देते हैं। यह राष्ट्र के प्रति वफादारी विकसित करने की प्रक्रिया है।

क्षेत्रवाद – क्षेत्रवाद से अभिप्राय अपने क्षेत्र-विशेष के प्रति अन्धभक्ति अथवा पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अन्य क्षेत्रों की उपेक्षा करता है।

बहुलवाद— बहुलवाद वह सिद्धान्त है जिसके अनुसार समाज के विभिन्न समूहों के बीच शक्ति वितरित रहती है। इसकी यह मान्यता है कि समाज में विद्यमान विभिन्न समूहों के हित अलग-अलग हो सकते हैं। अत: समाज की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि समाज के

सभी विविध समूहों को अपने हितों की प्राप्ति की स्वतन्त्रता हो और उसके लिए उन्हें उचित अवसर उपलब्ध हों।

3.9 अभ्यास प्रश्न

1. क्षेत्रवाद क्या है? इसके प्रमुख कारण बताइए।

2. भारत में क्षेत्रवाद की समस्या के समाधान हेतु सुझाव दीजिए।

3. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) क्षेत्रवाद के उद्देश्य

(स) क्षेत्रवाद एवं भारतीय राजनीति।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Goyal, D. R., quoted in Satish Chandra, K. C. Pande and P. C. Mathur (eds.), **Regionalism and National Integration : Proceedings of a Seminar**, Jaipur : Aalekh Publishers, 1976.
2. Pande, R. C., quoted in Satish Chandra, K. C. Pande and P. C. Mathur (eds.), **Regionalism and National Integration : Proceedings of a Seminar**, Jaipur : Aalekh Publishers, 1976.
3. Srinivas, M. N., **Social Change in Modern India**, New Delhi : Orient Longman, 1995.
4. योगेन्द्र सिंह, ''साम्प्रदायिक हिंसा का समाजशास्त्र'', **हस्तक्षेप**, राष्ट्रीय सहारा, 9 मार्च 2002 ई0,

इकाई 4

प्रदूषण
Pollution

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रदूषण

4.3 प्रदूषण के प्रकार

4.4 भारत में प्रदूषण का विस्तार

4.5 भारत में प्रदूषण के कारण

4.6 प्रदूषण को दूर करने के लिए अपनाये प्रमुख उपाय

4.7 शब्दावली

4.8 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

मानव और पर्यावरण का साथ सदा से ही रहा है परन्तु आज मानव-पर्यावरण के सम्बन्ध एक खतरनाक मोड़ पर पहुँच गए हैं। मनुष्य अपनी प्रगति की धुन में पर्यावरण का शोषण इस ढंग से करता चला गया कि उसने इसे विषाक्त ही कर डाला और इस प्रकार अपने अस्तित्व को ही खतरे में डाल दिया। यह आज स्थानीय और राष्ट्रीय ही नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन गई है। पर्यावरण और विकास के समन्वय में ही मानव का भविष्य छिपा है। पृथ्वी के उपग्रह को चन्द मिनटों में राख के ढेर में बदलने की क्षमता रखने वाले शस्त्रों के बाद यदि कोई बहुचर्चित विषय आज विश्व में है तो वह है—पर्यावरणीय प्रदूषण। अतः प्रदूषण से समस्त जीवन अस्त व्यस्त हो गया है प्रत्येक व्यक्ति का जीवन इस भयावय स्थिति से दो चार

हो रहा है। अतः प्रस्तुत इकाई में समाज में व्याप्त प्रदूषण के प्रकार एवं व उसके विस्तार को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। जिससे अभ्यर्थी इसको अध्ययन में लाये वह प्रदूषण से निपटने हेतु युद्ध स्तर पर कार्य करें व नित नये निदान की खोज करें।

4.1 प्रस्तावना

पर्यावरणीय प्रदूषण तो हमारा सदैव का साथी बन चुका है और हमें प्रतिपल भयावह स्थिति में रखता है। *1984* ई० में घटित भोपाल काण्ड, जहाँ एक कारखाने के गैस रिसाव ने सैकड़ों लोगों की जीवनलीला समाप्त कर दी और हजारों को अपंग बना दिया, इसका उदाहरण है। इसी प्रकार, रूस के एक देश में आणविक ऊर्जा से संचालित केन्द्र से गैस रिसाव ने भयावह स्थिति पैदा कर दी थी। सुन्दरलाल बहुगुणा, जो विश्वप्रसिद्ध पर्यावरणवादी हैं, ने अति सुन्दर शब्दों में इस समस्या के मूल को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह है कि पर्यावरणीय प्रदूषण में सबसे बड़ा योगदान हमारी विकास योजनाओं का है। जैसे-जैसे इन योजनाओं का विस्तार होता जाता है, उतनी ही तेजी से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्याएँ जटिल होती जाती हैं।'' उद्योगों के विस्तार ने जंगलों के अन्धाधुन्ध कटान को प्रोत्साहित किया। पृथ्वी के गर्भ में छिपे खनिज का दोहन अनियोजित ढंग से चला। इन कारखानों से निकले धुएँ ने वायुमण्डल को और अवशिष्ट पदार्थों ने बचे-खुचे जल को भी दूषित कर दिया। इस भाँति, जीवन को बनाए रखने वाली परिस्थितियों में असन्तुलन पैदा हो गया। इसलिए आज मानव जगत के सम्मुख सबसे बड़ा संकट पर्यावरणीय प्रदूषण का संकट है।

4.2 प्रदूषण

प्रदूषण को स्पष्ट करने से पहले यह उचित होगा कि हम पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट कर दें। 'पर्यावरण' शाब्दिक दृष्टि से 'परि आवरण' दो शब्दों से बना है। 'परि' का अर्थ है—चारों ओर, और 'आवरण' का अर्थ है—ढकने वाला। इस भाँति, साहित्यिक दृष्टि से पर्यावरण का अर्थ उन तमाम भौतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक वस्तुओं और परिस्थितियों से है जो मानव जीवन को चारों ओर से घेरे हुए हैं और उसे प्रभावित करती हैं। मानव, व्यक्तिगत रूप से भी और संस्थागत रूप से भी, अपने पर्यावरण को एक अर्थ प्रदान करता है और उस अर्थ के अनुसार उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। भौतिक दृष्टि से इस भूमण्डल के चारों ओर के ग्रह और उपग्रह, वातावरण, जलवायु तथा पृथ्वी की सतह की मिट्टी, जल, वनस्पति एवं पशु-पक्षी,

पहाड़ तथा पृथ्वी के गर्भ में छिपा तेल, कोयला, लोहा और अन्य खनिज पर्यावरण में शामिल होते हैं। मनुष्य ने इन सभी को विशेष अर्थ प्रदान किया है, कहीं इन्हें पूजा है, कहीं इनका दोहन किया है तो कहीं इनमें संशोधन किया है। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से वे सभी विचार और वस्तुएँ पर्यावरण में सम्मिलित होती हैं जो मानव द्वारा निर्मित हैं ; जैसे रासायनिक पदार्थ, मशीनें, कल-कारखाने, सड़कें, बाँध, पुल, भवन, यातायात और संचार के साधन, भाषा, धर्म तथा परिवार-व्यवस्था आदि। इन सभी भौतिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों से मिलकर बनता है मानव का 'कुल पर्यावरण'। मनुष्य और उसके कुल पर्यावरण के बीच एक अन्तर्क्रिया चलती रहती है जो परस्पर प्रभावोत्पादक है। वैज्ञानिक दृष्टि से और प्रदूषण के सन्दर्भ में यदि पर्यावरण को परिभाषित किया जाए तो कहा जा सकता है कि पर्यावरण से आशय उस जैव-मण्डल से है जो पृथ्वी पर जीवनदायिनी शक्तियाँ एवं जीवन के आधारों को प्रदान करने वाली शक्तियों की व्यवस्था से सम्बन्धित है। इसमें जल, वायु, तापमान, प्राकृतिक साधन आदि सम्मिलित होते हैं।

वास्तव में, पर्यावरण में एक लय और सन्तुलन है; जैसे जब तापमान बढ़ता है तो समुद्र से भाप बनकर बादल उठते हैं और उन स्थानों की ओर चलते हैं जहाँ तापमान बहुत अधिक हो गया है। इसी भाँति, तापमान की अधिकता से बर्फीली चोटियाँ पिघलती हैं और नदियों में पानी आता है। वर्षा का पानी पृथ्वी की तपिश बुझाता हुआ, झरनों एवं झीलों की गोद भरता हुआ फिर नदियों के माध्यम से समुद्र में आ जाता है। मनुष्य को भौतिक समृद्धि की चाह ने पर्यावरण की इस लय तथा सन्तुलन को बिगाड़ दिया है, इसमें व्यवधान उपस्थित कर दिया है। यह पर्यावरण असन्तुलन ही प्रदूषण का मूल स्रोत है।

इस प्रकार, प्रदूषण से आशय जैव-मण्डल में ऐसे तत्त्वों का समावेश है जो जीवनदायिनी शक्तियों को नष्ट कर रहे हैं। उदाहरणार्थ, रूस में चेरनोबिल के आणविक बिजलीघर से एक हजार कि० मी० क्षेत्र में रेडियोधर्मिता फैल गई जिससे मानव जीवन के लिए ही अनेक संकट पैदा हो गए। आज इस दुर्घटना के बाद लोग आणविक बिजलीघरों का नाम सुनते ही सिहर उठते हैं। इसी तरह रासायनिक खाद, लुगदी बनाने, कीटनाशक दवाओं के बनाने और चमड़ा निर्माण करने आदि के कुछ ऐसे दूसरे उद्योग हैं जो वायु प्रदूषण फैलाते हैं। इतना ही नहीं, कई उद्योग तो वायु प्रदूषण के साथ-साथ मिट्टी और पानी का भी प्रदूषण करते हैं।

4.3 प्रदूषण के प्रकार

पारिस्थितिकीय विज्ञान के अनुसार पृथ्वी को तीन प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है— स्थलमण्डल, वायुमण्डल तथा जलमण्डल। अतः प्रदूषण मुख्यतः इन्हीं तीन क्षेत्रों में होता है। प्रदूषण के अन्य स्रोतों में हम उन स्रोतों को भी सम्मिलित करते हैं जो अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि, वैज्ञानिक आविष्कारों तथा रासायनिक व भौतिक परिवर्तनों के कारण विकसित होते हैं। इनमें ध्वनि, रेडियोधर्मिता तथा तापीय स्रोत प्रमुख हैं। अत: पर्यावरणीय प्रदूषण के प्रमुख प्रकार निम्नांकित हैं—

1. **मृदीय प्रदूषण**—मृदीय प्रदूषण का कारण मृदा में होने वाले अस्वाभाविक परिवर्तन हैं। प्रदूषित जल व वायु, उर्वरक, कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशी पदार्थ इत्यादि मृदा को भी प्रदूषित कर देते हैं। इसके काफी हानिकारक प्रभाव होते हैं तथा पौधों तक की वृद्धि रुक जाती है, कम हो जाती है अथवा उनकी मृत्यु होने लगती है। अगर मृदीय स्वरूप, मृदीय संगठन, मृदीय जल व वायु तथा मृदीय ताप में अस्वाभाविक परिवर्तन लाने का प्रयास करते हैं तो इसका जीव-जन्तुओं पर अत्यन्त हानिकारक प्रभाव होता है।

2. **जल प्रदूषण**—जल में निश्चित अनुपात में खनिज, कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ तथा गैसें होती हैं। जब इसमें अन्य अनावश्यक व हानिकारक पदार्थ घुल जाते हैं तो जल प्रदूषित हो जाता है। कूड़े-करकट, मल-मूत्र आदि का नदियों में छोड़ा जाना, औद्योगिक अवशिष्टों एवं कृषि पदार्थों (कीटाणुनाशक पदार्थ, अपतृणनाशक पदार्थ व रासायनिक खादें आदि) से निकले अनावश्यक पदार्थ जल प्रदूषण पैदा करते हैं। साबुन इत्यादि तथा गैसों के वर्षा के जल में घुल कर अम्ल व अन्य लवण बनाने से भी जल प्रदूषित हो जाता है। भारत में जल प्रदूषण एक प्रमुख समस्या है।

3. **वायु प्रदूषण**—वायु में गैसों की अनावश्यक वृद्धि (केवल ऑक्सीजन को छोड़कर) या उसके भौतिक व रासायनिक घटकों में परिवर्तन वायु प्रदूषण उत्पन्न करता है। मोटर गाड़ियों से निकलने वाला धुआँ, कुछ कारखानों से निकलने वाला धुआँ तथा वनों व वृक्षों के कटाव से वायु में ऑक्सीजन, नाइट्रोजन व कार्बन डाइऑक्साइड का सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा यह मनुष्यों व अन्य जीवों पर प्रतिकूल प्रभाव डालने लगता है। दहन, औद्योगिक अवशिष्ट, धातुकर्मी

प्रक्रियाएँ कृषि रसायन, वनों व वृक्षों को काटा जाना, परमाणु ऊर्जा, मृत पदार्थ तथा जनसंख्या विस्फोट इत्यादि वायु प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

***4.* ध्वनि प्रदूषण**–तीखी ध्वनि या आवाज से ध्वनि प्रदूषण पैदा होता है। विभिन्न प्रकार के यन्त्रों, वाहनों, मशीनों, जहाजों, राकेटों, रेडियो व टेलीविजन, पटाखों, लाउडस्पीकरों के प्रयोग से ध्वनि प्रदूषण विकसित होता है। ध्वनि प्रदूषण प्रत्येक वर्ष दोगुना होता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण से सुनने की क्षमता का ह्रास होता है, रुधिर ताप बढ़ जाता है, हृदय रोग की सम्भावना बढ़ जाती है तथा तन्त्रिका तन्त्र सम्बन्धी रोग हो सकते हैं। कुछ प्रकार की ध्वनियाँ सूक्ष्म जीवों को नष्ट कर देती हैं। इससे जैव अपघटन क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है।

5. **रेडियोधर्मी व तापीय प्रदूषण**—रेडियोधर्मी पदार्थ पर्यावरण में विभिन्न प्रकार के कण और किरणें उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार, तापीय प्रक्रमों से भी कण निकलते हैं। ये कण व किरणें जल, वायु तथा मिट्टी में मिलकर प्रदूषण पैदा करते हैं। इस प्रकार के प्रदूषण से कैंसर, ल्यूकेनिया इत्यादि भयानक रोग उत्पन्न होते हैं तथा मनुष्यों में रोग अवरोधक शक्ति कम हो जाती है। बच्चों पर इस प्रकार के प्रदूषण का अधिक प्रभाव पड़ता है। नाभिकीय विस्फोट, आणविक ऊर्जा संयन्त्र, परमाणु भट्टियाँ, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान व लेसर बम आदि इस प्रकार के प्रदूषण के प्रमुख कारण हैं।

4.4 भारत में प्रदूषण का विस्तार

स्वतन्त्रता के बाद पश्चिमी विकास को एक आदर्श के रूप में मानकर हमारे देश में भी औद्योगीकरण और नगरीकरण योजनाबद्ध रूप में बड़ी तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ। यह सच है कि आज लोगों के जीवन का रहन-सहन का स्तर बढ़ा है; कम-से-कम जनसंख्या के कुछ भाग का तो बढ़ा ही है। परन्तु उस विकास के द्वारा उत्पन्न पर्यावरणीय असन्तुलन और प्रदूषण के प्रभाव अब महसूस होने लगे हैं। निम्नलिखित कुछ उदाहरणों से हम पर्यावरणीय प्रदूषण की गम्भीरता एवं विस्तार को प्रकट कर सकते हैं—

***1.* वनों का विनाश**—बढ़ते हुए नगरीकरण और औद्योगीकरण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों को बड़ी मात्रा में काटा गया। भारत में हिमालय के वन, जो उत्तरी भारत के पंजाब और दोआब जैसे अन्न के कटोरे के लिए पानी के स्रोत और उपजाऊ मिट्टी बनाने के कारखाने रहे हैं, एक अध्ययन के अनुसार अगले पचास वर्षों में समाप्त हो जाएँगे। वनों के कटने से

पर्यावरणीय असन्तुलन इतना बढ़ गया है कि अब सूखे की स्थिति उपस्थित होने लगी है। वन बादलों को आकर्षित करते हैं तथा पानी के बहाव को नियन्त्रित करते हैं जिससे भूमि का कटाव रुकता है। वे बड़ी मात्रा में आक्सीजन प्रदान करते हैं। वनों के बढ़ते हुए अभाव ने जहाँ उनसे मिलने वाली बहुमूल्य सामग्री से हमें वंचित कर दिया है, वहीं भूमि का कटाव बढ़ा दिया है, उसकी उपजाऊ क्षमता को नष्ट किया है और अनेक रोगों को जन्म दिया है।

***2.* कृषि का व्यापारीकरण**—देश में हरित क्रान्ति एक गर्व का विषय बन गया है। उसके लिए संकर बीज, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई पर अधिकाधिक धन खर्च होने लगा। यह रासायनिक उर्वरक, जो पेट्रोलियम पदार्थों से प्राप्त होते हैं, मिट्टी की स्वाभाविक उपजाऊ क्षमता को कम करते हैं और फिर वे अनादिकाल तक उपलब्ध नहीं होंगे क्योंकि विश्व में पेट्रोल की मात्रा सीमित है। इसी प्रकार व्यापारिक कृषि के लिए बहुत अधिक जल की आवश्यकता होती है। इसलिए भूमिगत जल का पम्पों और ट्यूबवैलों से बड़े पैमाने पर खनन किया जा रहा है। भूमि के नीचे से जितने जल को हम खींच रहे हैं, उस अनुपात से उसकी पूर्ति नहीं हो रही है। पृथ्वी में जल का स्तर और नीचे जा रहा है। नीचे से जल खींचने के लिए बिजली की माँग बढ़ गई है। गाँव और शहर के बीच परस्पर प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष का वातावरण बन गया है। अनेक जगह घटित हो रहे किसान आन्दोलनों के पीछे यह पर्यावरणीय असन्तुलन भी उत्तरदायी है। सुन्दरलाल बहुगुणा ने इस समस्या पर प्रकाश डालते हुए बहुत उपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया है, ''कृषि के औद्योगीकरण से अब कृषि एक जीवन-पद्धति नहीं रह गई है, न ही वह संस्कृति जिसका अर्थ है 'प्रकृति का सुसंस्कार करना।' जब मिट्टी को नकद रुपये में बदलकर धनवान बनने का साधन बनाया जाता है तो इसका अर्थ होता है 'मिट्टी के साथ बलात्कार'। आज जो कुछ हमने प्राप्त किया है वह तो मिट्टी और पानी की स्थायी पूँजी का निरन्तर ह्रास करके पाया है। यह लाभ का धोखा है।''

***3.* विशाल बाँध परियोजनाएँ**—आजादी के बाद से हमारे देश में लगभग *1500* बड़े बाँध बन चुके हैं। प्रारम्भिक आकलनों से औसतन *213* प्रतिशत अधिक दर से इनमें गाद भरी है। रामगंगा पर बने कालागढ़ बाँध में तो यह दर *400* प्रतिशत से अधिक है। इन बाँधों के जो कुपरिणाम हुए हैं वे इस प्रकार हैं—

(i) केन्द्रित सिंचाई योजनाओं के कारण दलदल बनने और लवणीकरण की समस्याएँ पैदा हो गई हैं,

(ii) सम्भावित भूकम्प के खतरे बढ़ गए हैं,

(iii) एक बार गाद भर जाने के बाद ये बाँध फसल के लिए बिलकुल निरर्थक हो जाएँगे,

(iv) इनसे सुरक्षा के खतरे बढ़ गए हैं तथा

(v) इन योजनाओं के निर्माताओं के लिए चाहे ये बाँध खुशहाली के प्रतीक हों या बिजली और सिंचाई के प्रतीक हों, परन्तु इन क्षेत्रों के निवासियों और पर्यावरण व सन्तुलित विकास की चिन्ता करने वालों के लिए ये सर्वनाश के प्रतीक हैं। उदाहरणार्थ, टिहरी बाँध के कारण *70,000* पर्वतीय लोग विस्थापित हो जाएँगे। बाँधों के नीचे बहुत बड़ा उपजाऊ भू-खण्ड, गाँव और नगर सघन वन डूब जाएँगे। इसी भाँति, नर्मदा बाँध लाखों आदिवासी और वनवासी लोगों को विस्थापन के लिए मजबूर करेगा जिन्हें इस विशालकाय बाँधों से न तो सिंचाई के लिए पानी ही मिलेगा और न उद्योगों के लिए बिजली। वास्तव में, इतनी बड़ी संख्या में मनुष्य का यह विस्थापन उनकी संस्कृतियों का ही विस्थापन होगा और चूँकि यह विस्थापन किसी दैवी आपदा के कारण नहीं है, इसे मानवता के प्रति एक जघन्य अपराध की ही संज्ञा दी जा सकती है।

4. **प्रदूषण उत्पन्न करने वाले उद्योगों का विस्तार**—कुछ ऐसे उद्योग हैं जो बहुत अधिक बड़े हैं जिनमें वायु और जल का प्रदूषण बढ़ा है। इनमें सबसे प्रमुख रासायनिक खाद, कीटनाशक, चमड़े के कारखाने, ताप बिजलीघर आदि हैं। वैसे तो सभी कारखाने धुआँ और स्राव दोनों ही उगलते हैं, लेकिन ये कारखाने तो सबसे अधिक खतरनाक हैं। भोपाल के गैस काण्ड का हम उदाहरण दे ही चुके हैं। पिछले वर्षों में दिल्ली में फैला हैजा और आन्त्रशोथ भी जल प्रदूषण का ही दुषपरिणाम था। इन कारखानों से वायुमण्डल में उगली जाने वाली गैस जीवशेषीय ईंधनों के विस्फोट से पैदा होती है। यही नहीं, इन कारखानों से जो बचा हुआ पानी और गन्दगी स्राव के रूप में बाहर निकलते हैं वह भी जल और वायु का प्रदूषण करते हैं। ये जीवन समर्थक शक्तियों के लिए खतरा बन जाते हैं।

***5.* आणविक एवं ताप बिजलीघर**—हमने ऊपर भी लिखा है कि आणविक और ताप बिजलीघर मानव जीवन के लिए खतरे के प्रतीक हैं। देश में नागरिक अब इस खतरे को

समझने लगे हैं। कर्नाटक के कारावाड जिले में और अन्य स्थानों में बनने वाले आणविक बिजलीघरों का विरोध किया जा रहा है। इस प्रकार, भारतीय विकास एक दोराहे पर पहुँच गया है। बिजली के बिना देश की तरक्की सम्भव नहीं, और बिजली के लिए सभी साधन खतराविहीन नहीं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नियुक्त कमीशन की रिपोर्ट 'हमारा साँझा भविष्य' के चेतावनी भरे निम्न शब्दों को हम उद्धृत करना चाहेंगे, ''पर्यावरणीय खतरों और अनिश्चितता के कारण उच्च ऊर्जा का भविष्य चिन्ताजनक है और इससे कई शंकाएँ पैदा होती हैं। इससे वायुमण्डल में उगली जाने वाली गैसों के 'ग्रीन हाऊस' प्रभाव के फलस्वरूप मौसम में गम्भीर परिवर्तन की सम्भावना है.....आणविक रिएक्टरों से दुर्घटनाओं के खतरे, आणविक कचरे को ठिकाने लगाने और बिजलीघरों का जीवन काल समाप्त हो जाने के पश्चात् रिएक्टरों का क्रियाकर्म तथा इससे फैलने वाली रेडियोधर्मिता के खतरे परमाणु ऊर्जा के साथ जुड़े हुए हैं।''

***6.* बड़े पैमाने पर खनन**—शीघ्र विकास की धुन में सारे विश्व में ही पृथ्वी से खनिज पदार्थों का खनन किया गया है। खनन उद्योग से पैदा होने वाले खतरों की तरफ लोगों का अब ध्यान गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ की उपर्युक्त रिपोर्ट में लिखा है, ''अभी तक जीवशेषीय ईंधनों (कोयला, खनिज तेल, गैस आदि) के विस्फोट से पैदा होने वाली कार्बन डाइऑक्साइड को हटाने के लिए कोई तकनीक विकसित नहीं हुई है। कोयले के अधिकाधिक उपयोग में सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन की मात्रा में वृद्धि होगी। यह वायुमण्डल में जाकर तेजाब बन जाते हैं। आज जिस दर से उपयोग हो रहा है उस हिसाब से विश्व में गैस की आपूर्ति केवल दो सौ वर्ष तक और कोयले की तीन हजार वर्षों तक ही होगी।'' इन सभी खनिजों की मात्रा पुन: बढ़ाई नहीं जा सकती और ये धरती में निश्चित मात्रा में हैं। इसलिए इनके आधार पर खड़े विकास के भवन का भविष्य एक प्रश्न चिह्न ही बनकर रह गया है।

हमारे देश में भी खनन विनाशकारी होता गया है। उदाहरण के रूप में, देहरादून जिले के मसूरी की पर्वतश्रेणियों में बड़ी मात्रा पर चूने का खनन किया गया। देहरादून की घाटी, जो देश में सबसे अधिक श्रेष्ठ बासमती पैदा करने वाली थी, इस खनन के कारण रेगिस्तान में बदलने लगी है। गाँवों में खेती चौपट हो गई है और पानी के स्रोत सूखने लगे हैं। नागरिकों ने छुटपुट आन्दोलन भी किए, परन्तु वे शक्तिशाली खनन ठेकेदारों के प्रभाव के सामने दबा दिए गए। तब सजग नागरिकों ने उच्चतम न्यायालय के द्वार खटखटाये। पाँच वर्षों के अनवरत कानूनी

युद्ध और नागरिकों की ओर से मुकदमा लड़ने वाले प्रार्थियों ने जीवन की जोखिम उठाकर उच्चतम न्यायालय से न्याय पाया और इन खानों में से केवल चार को छोड़कर न्यायालय के आदेश से बाकी सभी खानें बन्द हो गई हैं। परन्तु देश के अन्य हिस्सों में खनन तो अभी चालू है। इसी प्रकार उड़ीसा में भारत ऐल्यूमिनियम कम्पनी द्वारा बाक्साइट खनन के विरुद्ध भी संघर्ष चल रहा है। वास्तव में, पर्यावरणीय सन्तुलन बिगड़ने से यह खनन वायु और जल दोनों की जीवन्त शक्तियों को कम कर देते हैं। पीने के जल की निरन्तर कमी होती जा रही है और शुद्ध जीवन्त जल तो मिलना ही दूभर हो गया है।

4.5 भारत में प्रदूषण के कारण

यद्यपि उपर्युक्त विवरण से ही पर्यावरणीय प्रदूषण के कारणों का पता चल जाता है तथापि हम यहाँ इसके मूल कारणों पर प्रकाश डालना चाहेंगे। इसके निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं—

***1.* भौतिक विकास को अत्यधिक महत्त्व**—सारे ही विश्व में पिछली शताब्दी से भौतिक विकास ही मानव के विकास का पर्याय बन गया है। विकास से आशय हम उपभोग की बढ़ती हुई दर से लगाते हैं। प्रति व्यक्ति आय, प्रति व्यक्ति बिजली का उपभोग, वार्षिक राष्ट्रीय उत्पादन की दर इस विकास के मापदण्ड बन गए हैं। विकास की प्रक्रिया में निरन्तर वृद्धि एक आवश्यक तत्त्व मानी जाती है। निरन्तर वृद्धि से आशय है कि जो वैभव आज की पीढ़ी को प्राप्त हो गया है कम-से-कम उतना वैभव, यदि अधिक सम्भव नहीं तो, अगली पीढ़ी को भी मिलना चाहिए। विकास का लक्ष्य वास्तव में अगली पीढ़ी को और अधिक भौतिक सुखों को प्रदान करना है। इस दृष्टिकोण के वास्तविक परिणाम दो हुए—एक, प्रकृति को उपभोग की जाने वाली वस्तु माना जाने लगा और उसका अधिकाधिक दोहन किया जाने लगा। द्वितीय, समाज का अर्थ केवल मनुष्यों का समाज ही माना जाने लगा। मनुष्य भूल गया कि प्रकृति के समक्ष वह अनेक जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों की भाँति ही एक प्राणी है। उसे सभी के साथ सन्तुलन बनाकर चलना है। अपने बढ़ते हुए भोग की लालसा ने मनुष्य को प्रकृति के प्रति कसाई बना दिया है। उसने न केवल पुन: पूरे न किए जा सकने वाले प्रकृति के भण्डारों को खाली किया वरन् पेड़-पौधों व जीव-जन्तुओं के लिए भी खतरा पैदा कर दिया। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि बीसवीं शताब्दी के अन्त तक वनस्पति और जीव-जन्तुओं की डेढ़ करोड़ प्रजातियाँ अपना अस्तित्व खो बैठेंगी।

2. **विकास के लिए असन्तुलित कार्यक्रम**—विकास के लिए जो योजनाएँ बनाई गईं वे असन्तुलनों से भरी पड़ी हैं। खेती योग्य भूमि बढ़ाने के लिए और उद्योगों की माँगों की आपूर्ति के लिए हम जंगल तो काटते चले गए, परन्तु उतने ही नए जंगल नहीं लगाए गए। हम बाँध तो बनाते चले गए पर यह अनुमान नहीं लगाया कि एक दिन जब ये बाँध गाद से भर जाएँगे तो इनका क्या उपयोग होगा। हमने प्रकृति की लय और गति में असन्तुलन पैदा कर दिया। खतरनाक उद्योगों से निकलने वाला स्राव कहाँ जाएगा और उससे क्या-क्या खतरे पैदा होंगे, यह अनुमान नहीं लगाया गया। जहरीली गैसों और रेडियोधर्मिता की रोकथाम कैसे की जाए इस पर विचार नहीं किया गया। इन असन्तुलित विकास कार्यक्रमों का स्वाभाविक परिणाम था—जल और वायु का प्रदूषण।

3. **समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली का अभाव**—भोगवादी जीवन-पद्धति में विकास के नैतिक आधारों की पूर्ण उपेक्षा कर दी गई है। मनुष्य के जीवन की आवश्यकताएँ पूरी हों यह प्रयास तो किया ही जाना चाहिए, परन्तु मन की लालसाओं और तृष्णाओं का तो कभी अन्त नहीं होता। उनको बढ़ाते रहने में कहाँ तक बुद्धिमानी है। आज भी विश्व के करोड़ों लोग भूख से परेशान हैं। कुछ लोगों के भोग के लिए बड़ी संख्या में गरीबों को भूखे रखने को विकास का नाम दिया जा रहा है। आज से २५०० वर्ष पहले महात्मा बुद्ध ने मानवों को सन्देश दिया था कि मानव-जीवन में दु:ख का स्रोत तृष्णा है और तृष्णा को समाप्त करने से ही दु:ख का निवारण हो सकता है। हमारे युग में भी महात्मा गांधी ने आवश्यकताओं को कम-से-कम करने का सन्देश दिया था। अंहिसा, असंग्रह, सत्य, स्वदेशी, कायिक श्रम, छुआछूत की भावना का त्याग, ब्रह्मचर्य, अस्वाद और निर्भयता जीवन-यापन के नियम बनाए जाने चाहिए। विकास की सही व्याख्या मनुष्य और समाज के जीवन में सुख, शान्ति और सन्तोष के रूप में की जानी आवश्यक है, अन्यथा पर्यावरणीय प्रदूषण और मानव के मानसिक प्रदूषण से छुटकारा नहीं मिल सकता। जब तक मनुष्य का प्रकृति के प्रति आक्रामक दृष्टिकोण नहीं बदलता तब तक सुख और शान्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अस्तु; पर्यावरणीय प्रदूषण के मूल कारणों के विश्लेषण के बाद उन उपायों पर भी विचार किया जाना चाहिए जो इस प्रदूषण को दूर करने के लिए हमारे देश में उठाए गए हैं।

4.6 प्रदूषण दूर करने के लिए अपनाए गए प्रमुख उपाय

हमारे देश में पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम के लिए एवं पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए निम्नलिखित प्रमुख उपायों को अपनाया गया है—

***1.* कानूनी उपाय**—भारत सरकार ने कारखाना (संशोधन) अधिनियम *1987* पारित किया है जिसका उद्देश्य कारखानों में लगे श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करना एवं पर्यावरणीय प्रदूषण को नियन्त्रित करना है। इस अधिनियम के अनुसार, यदि किसी भी उद्योग में कुछ खतरनाक प्रक्रियाएँ लागू होती हैं तो उस उद्योग पर नियन्त्रण किया जाएगा। खतरनाक प्रक्रियाओं से आशय यह है कि उस उद्योग में खनिज पदार्थों के प्रयोग से या उत्पादित वस्तुओं अथवा अर्द्धनिर्मित वस्तुओं या कारखाने से होने वाले स्राव *(Effluents)* से वहाँ के श्रमिकों के स्वास्थ्य पर या वहाँ के सामान्य पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पड़ता हो। इसके नियन्त्रण के लिए तीन प्रकार की समितियों की स्थापना का प्रावधान किया गया है—मौका मुआयना समिति, जाँच समिति एवं सुरक्षा समिति। राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे उन कारखानों को अनुमति प्रदान करने से पहले विस्तृत जाँच कर लें जिनमें किसी भी प्रकार की खतरनाक प्रक्रियाओं के होने की सम्भावना है। इसी प्रकार, पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, *1986* भी पारित किया गया है। पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए और प्रदूषित पर्यावरण के सुधार के लिए ही इस कानून में प्रावधान किया गया है।

***2.* सार्वजनिक हित में अभियोजन**—देश के सर्वोच्च न्यायालय ने पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में लोकहित अभियोजन की अनुमति देकर एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है। लोकहित अभियोजन वे मुकदमे होते हैं जो किसी भी जागरूक नागरिक की लोकहित में दिए गए प्रार्थना-पत्र से शुरू होते हैं। देहरादून में चूने की खानों के ठेकेदारों के खिलाफ ऐसे ही लोकहित मुकदमे का जिक्र हमने ऊपर किया है। इसी प्रकार का एक और प्रसिद्ध अभियोजन एम० सी० मेहता बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया है जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कानपुर में कार्यरत चमड़ा उद्योग के सभी कारखानों को तब तक के लिए बन्द करने का निर्देश दिया था जब तक कि वे अपने यहाँ ऐसे प्राथमिक शुद्धि संयन्त्र न लगा लें जिनमें उनसे होने वाले स्राव गंगा नदी में डालने से पहले शुद्ध किए जा सकें।

***3.* जन शिक्षा**—जन संचार माध्यमों द्वारा जनता में पर्यावरणीय सुरक्षा एवं प्रदूषण के प्रति जागरूकता लाने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। पर्यावरणीय शिक्षा के नाम से एक पृथक् विषय स्कूलों और कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किए जाने पर भी जोर दिया जा रहा है।

***4.* पर्यावरणीय सुरक्षा सम्बन्धी अनुसन्धान को प्रोत्साहन**–पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धानों को प्रोत्साहित किया गया है। वनों तथा पर्यावरण मन्त्रालय ने पर्यावरण सम्बन्धी संरक्षण और सुरक्षा के लिए अब तक लगभग *636* अनुसन्धान परियोजनाओं को समर्थन दिया जिन पर *27·96* करोड़ रुपये का व्यय होना है। इनमें से *262* प्रोजेक्ट, जिन पर *8·80* करोड़ रुपया खर्च हुआ, पूर्ण हो गए हैं। बाकी *345* प्रोजेक्ट अभी चलाए जा रहे हैं। इन अनुसन्धान परियोजनाओं को सरकारी, गैर-सरकारी, स्वशासी संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के माध्यम से चलाया जा रहा है।

***5.* ऐच्छिक संघ**—पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में देश के अनेक ऐच्छिक संघ भी क्रियाशील हैं जिनके सामाजिक कार्यकर्ता प्रदूषण के खिलाफ संघर्षरत हैं। गढ़वाल का 'चिपको आन्दोलन' इन ऐच्छिक संघों की सफलता का बहुत सटीक उदाहरण है।

***6.* संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रयास**—वास्तव में, पर्यावरणीय प्रदूषण का एक अनिवार्य पक्ष अन्तर्राष्ट्रीय भी है। पर्यावरण तो सबका साँझा होता है इसलिए मानव का भविष्य भी साँझा है। इस सन्दर्भ में यह उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर विशेष कमीशन की नियुक्ति की थी जिसने पर्यावरणीय सुरक्षा के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं।

4.7 प्रदूषण के उन्मूलन हेतु सुझाव

प्रदूषण की समस्या के समाधान हेतु निम्नलिखित सुझाव दिए जा रहे हैं—

***1.* कानूनों का निष्ठापूर्वक पालन**–कानून बनाने से ही समस्या हल नहीं हो जाती। सबसे अधिक आवश्यक है कि उनका कड़ाई से पालन कराया जाए। इसके लिए उपयुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की भी आवश्यकता है। इसके लिए एक अलग सेना का गठन किया जाए और कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षा विशिष्ट ढंग से की जाए।

***2.* जन जागरण एवं जन सहयोग**—वास्तव में एक राष्ट्रीय पर्यावरण नीति के अन्तर्गत पर्यावरण के सम्बन्ध में जन शिक्षा के प्रसार की तीव्र आवश्यकता है। जब तक जन-मानस

प्रकृति, मनुष्य और समाज के गहरे रिश्ते को नहीं समझेगा तब तक पर्यावरणीय प्रदूषण बना ही रहेगा। इसीलिए आवश्यक है कि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जन आन्दोलन चलाया जाए और उसमें जन सहभागिता को बढ़ाया जाए।

***3.* विकेन्द्रित विकास**—समाज की रचना का आधार विकेन्द्रित व्यवस्था पर रखा जाना चाहिए। प्राणवायु, स्वच्छ और जीवन्त जन, खुराक, आश्रय तथा वस्त्र की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति आस-पास के क्षेत्र से हो सके, इसके लिए विकेन्द्रित विकास की योजनाएँ बनानी होंगी। इस दृष्टि से हमें पुन: गांधी जी के ग्राम-स्वराज्य की अवधारणा की प्रासंगिकता को समझना होगा। सीधे-सादे शब्दों में, विकास के नियोजन की इकाई गाँवों को बनाना होगा। जब उपभोग घर-घर और गाँव-गाँव में होता है तो उत्पादन केन्द्रित ढंग से क्यों किया जाए? विकेन्द्रित उत्पादन से प्रदूषण की समस्या स्वत: हल हो जाएगी क्योंकि उच्च ऊर्जा प्रयोग करने वाले और अपनी बड़ी-बड़ी चिमनियों से धुआँ उगलने वाले कारखाने ही वहाँ नहीं होंगे। लघु उद्योगों के लिए आणविक या ताप बिजलीघरों की आवश्यकता भी नहीं है। इस व्यवस्था में ऊर्जा की प्राथमिकता भी बदल जाएगी। इसमें पशु शक्ति, बायोगैस, सौर ऊर्जा, पवन शक्ति, नदियों के सीधे बहाव से जल, विद्युत और लहरों की शक्ति से ही काम किया जा सकेगा।

***4.* समाकलित जीवन शैली**—आज एक समाकलित जीवन दर्शन एवं शैली की आवश्यकता है। बहुत-से लोग, जिसमें विद्वान् भी शामिल हैं, कहते हैं कि विकेन्द्रीकरण और सादगी भारत जैसे गरीब देशों के लिए ही हो सकती है। परन्तु ऐसा नहीं है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण और विकास आयोग ने समृद्ध देशों को स्पष्ट चेतावनी दी है कि जब तक वे सादगी का जीवन नहीं बिताते, तब तक विश्व में न तो पर्यावरण की ही रक्षा हो सकती है और न विकास ही सम्भव है। यूरोप में अधिकांश देश पर्यावरणीय सुरक्षा के प्रति चिन्तित हैं। वहाँ कोई भी राजनेता आज पर्यावरण के कारक की उपेक्षा नहीं कर सकता। चुनावों में हुई पर्यावरणवादियों की विजय इस तर्क को सिद्ध करती है। यूरोप का हरित आन्दोलन पश्चिमी जगत के सामने एक नया रास्ता रख रहा है जिसे वे सीधा रास्ता कहते हैं। यह रास्ता वाम और दक्षिण दोनों ही पंथों से सर्वथा अलग है। इस आन्दोलन के घोषणा-पत्र को पढ़ने से ऐसा लगता है कि मानो वह गांधी के 'हिन्द स्वराज्य' का ही नवीन रूप हो।

पर्यावरणीय सुरक्षा और पर्यावरणीय प्रदूषण की रोकथाम सारे विश्व के सामने गम्भीरतम समस्याओं में से एक है। आज विश्व के सम्मुख तीन सबसे बड़ी चुनौतियाँ हैं—युद्ध, भूख और पर्यावरणीय प्रदूषण। ये तीनों एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। इनमें से एक की भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। इनके सफल समाधान पर ही मानव जाति का भविष्य टिका है। भारत इसका अपवाद नहीं है। भारत की इस दिशा में जिम्मेदारी और भी अधिक है क्योंकि यह आध्यात्मिक खोज और प्रयोगों का देश रहा है। पर्यावरणीय सुरक्षा के क्षेत्र में भी इसे अविलम्ब पहलकदमी करनी चाहिए।

4.8 शब्दावली

प्रदूषण —प्रदूषण से आशय जैव-मण्डल में ऐसे तत्त्वों का समावेश है जो जीवनदायिनी शक्तियों को नष्ट कर रहे हैं।

4.9 अभ्यास प्रश्न

1. प्रदूषण किसे कहते हैं? इसके प्रमुख प्रकार बताइए।

2. प्रदूषण को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारण बताइए।

3. भारत में प्रदूषण के विस्तार एवं नियन्त्रण हेतु किए जाने वाले उपायों की विवेचना कीजिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Gillin, J. L. and J. P. Gillin, **Cultural Sociology**, New York : The Macmillan Company, 1948.
2. Gist, N. P. and L. A. Halbert, **Urban Sociology**, New York : Crowell, 1933.
3. Giselher Wirsing, **The Indian Experiment : Key to Asia's Future**, New Delhi : Orient Longman, 1972.
4. **Aspects of Crime in India**, London : Allen and Unwin, 1934.
5. Landis Paul H. and Judson T. Landis, **Social Living : Principles and Problems in. Introductory Sociology**, Boston : Ginn & Co., 1938.

इकाई *5*

गरीबी
Poverty

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 गरीबी: आशय
5.3 गरीबी का माप
5.4 गरीबी की परिमाण
5.5 गरीबी के कारण
5.6 भारत में गरीबी का अनुमान
5.7 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम
5.8 गरीबी निवारण के उपाय
5.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन
5.10 सांराश
5.11 शब्दावली
5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.14 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री
5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- गरीबी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें।
- भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में गरीबी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।
- सरकार द्धारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सके

5.1 प्रस्तावना

भारतीय अर्थव्यवस्था की संरचना से सम्बन्धित यह सातवी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप भारतीय सामाजिक समस्या पाठयक्रम की सामान्य जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। गरीबी से आशय उस सामाजिक अवस्था से है जिसमें समाज का एक भाग अपने जीवन की बुनियादी आवश्यकताओं से भी वंचित रहता है। गरीबी की माप के लिए सामान्यतः सापेक्षित प्रतिमान एवं निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है। भारत में गरीबी की माप कैलोरी मानक के अनुसार की जाती है। गरीबी निवारण के लिए अनेक कार्यक्रम योजना काल में लागू किए गए परन्तु आशानुसार सफलता नहीं प्राप्त हुई।इस सन्दर्भ में और उपाय एवं नीतियों में परिवर्तन की आवश्यकता हैं, प्रस्तुत इकाई में इसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप गरीबी आशय एवं परिदृश्य को जान पायेगें। भारत गरीबी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।आप इससे जुड़ी सरकार द्धारा गरीबी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

5.2 गरीबी: आशय

स्वइतंत्रता के समय से ही गरीबी और गरीब व्यंक्ति शासन की चिन्तो और कर्तव्य के विषय रहे । अंग्रेजो के शासनकाल में जिस प्रकार हमारी ग्रामस्वाहलम्बगन व्यविस्थाव को नष्टे कर पराधीन तंत्र में रहने को विवश किया गया। उस कालन्त्र से गरीबी भारतवर्ष की सबसे बड़ी सामाजिक आर्थिक समस्या अभी तक बनी हुई है। मूल रूप में गरीबी को हम एक आर्थिक समस्या् मानते हैए परन्तुन इसका सामाजिक पक्ष भी अत्यकन्त महत्वपूर्ण है । स्व तंत्र होने के पश्चामत गरीबी कम करना एक सामाजिक उत्तररदायित्व रहा है । इसका विभिन्नअ दृष्टिकोण आधारित विवेचन से पहले हम गरीबी से क्यास आशय है इसकोजानेंगे फिर इस संदर्भ में लागू नीतियोंए कार्यक्रमों आदि को समझेंगे।

हेनरी बर्सटीन ने गरीबीके निम्नय चार आयाम बताये है

1) जीविका रणनीतियों का अभाव
2) संसाधनों ;धन, भूमि की अनउपलब्धता
3) असुरक्षा की भावना

4) अभाव के कारण अन्यन व्यअक्तियों से सामाजिक सम्ब न्ध बनाये रखने और विकसित करने की अक्षमता।

गरीबी की परिभाषा करते समय तीन स्थितियों का प्रयोग करते है : 1) एक व्यनक्ति को जीवित रहने के लिए कितना पैसा चाहिएए 2) निम्नपतम जीवन.निर्वाह का स्तगर और एक विशेष समय और स्थानन पर प्रचलित जीवन स्तनर और 3) समाज में कुछ व्यक्तियों के सम्पन्नत होने और अधिकांश के गरीब होने की दशाओं की तुलना। पहली दूसरी उपागम नितान्त गरीबी की आर्थिक अवधारणा का उल्लेख करती है. जबकि तीसरा उपागम उसको सामाजिक अवधारणा की तरह देखता है।

गरीबी को परिभाषितकरते हुए **गिलिन और गिलिन** ने लिखा है, "गरीबी वह दशा है जिसमें व्यतक्तिया तो अपर्याप्तव आय या बुद्धिहीन खर्च के कारण अपने स्तखर को उतना ऊँचा नहीं रख सकता कि उसकी शारीरिक और मानसिक क्षमता बनी रह सके और उसको तथा उसके प्राकृतिक आश्रितों को समाज के स्तर के अनुसार जिसका कि वह सदस्यत है, उपयोगी ढंग से काम करने योग्य बना सकें।''

गोडार्ड व्यनक्त करते है कि "गरीबी उन वस्तुओं का अभाव है जो कि एक व्यक्ति और उसके आश्रितों को स्वलस्थ्रित और पुष्ट रखने के लिए आवश्याक है।''

प्रसिद्ध **अर्थशास्त्री एडम स्थिम** गरीबी को निम्नब रूप में व्यहक्त करते है एक व्यक्ति उन्हीं अंशों में धनी या गरीब होता है जिन अंशों में उसे जीवन की आवश्यकतायें सुविधायें एवं मनोरंजन के साधन उपभोग के लिए प्राप्त हो सकते है।राउन्ट्री ने गरीबी को परिभाषित करते हुये लिखा है कि "गरीबी जीवन को व्यवस्थित रूप से चलाने के लिये किये गये न्यूनतम व्यय से सम्बन्धित है, जिसमें भोजन, कपड़ा, मकान, घर का किराया, ईंधन आदि सभी आवश्यक वस्तुओं की कीमत शामिल है।"

दो अध्येताओं, शाहीन रफी खान और डैमियन किल्लेन ने गरीबी की स्थिति को बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है। इनके अनुसार गरीबी भूख है, गरीबी बीमार होना है और डॉक्टर को न दिखा पाने की विवषता है। यह स्कूल में न जा पाने और निरक्षर रह जाने का नाम है। गरीबी बेरोजगारी व अपने भविष्य के प्रति भय है। यह अपने बच्चे को उस बीमारी से मरते हुये देखने की स्थिति है जो अस्वच्छ पानी पीने से होती है। गरीबी शक्ति प्रतिनिधित्व और स्वतन्त्रता की हीनता का नाम है।

एस0 महेन्द्र देव ने गरीबी को बहुआयामी तथ्य के संदर्भ में लिया है। इनके अनुसार गरीबी केवल आय व उपभोग के स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य व शिक्षा का भी गरीबी की अवधारणा में विचार करना चाहिये।

प्रो0 अर्मत्य सेन के अनुसार, गरीबी निरपेक्ष वंचित की तुलना में सापेक्षिक अभाव को बताती है। सेन का मानना है कि सामान्यतः भुखमरी गरीबी को ही दर्शाती है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि व्यापक रूप में गरीबी होने पर भुखमरी भी गम्भीर अवस्था में हो।

बाईसब्रान्ड के अनुसार गरीबी मुख्यतः अपर्याप्त भोजन, कपड़ा और रहने की समस्या से सम्बन्धित है।

इस प्रकार गरीबी की धारणा एक बहुआयामी तथ्य है। यह केवल आय व उपभोग स्तर से ही सम्बन्धित नहीं वरन् स्वास्थ्य, शिक्षा, आवास व उचित रहन-सहन के स्तर से वंचित रहने की स्थिति से भी सम्बन्धित है।

5.3 गरीबी की माप

गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों का प्रयोग किया जाता है जो इस प्रकार हैः

सापेक्षित प्रतिमान :गरीबी के सापेक्षित माप के अर्न्तगत देश की जनसंख्या की सम्पत्ति उपभोग अथवा आय स्तर के आधार पर विभिन्न क्रमिक वर्गो में विभक्त किया जाता है । इस प्रकार प्राप्त वर्गों को सम्पति, आय, उपभोग के बढ़ते या घटते हुए स्तरो के आधार पर क्रमबद्व किया जाता है । तत्पश्चात उच्चतम 5 प्रतिशत या 10 प्रतिशत निवासियों के अंश से की जाती है । सापेक्षित प्रतिमान के आधार पर प्राप्त जानकारी गरीबी की अपेक्षा आय, सम्पत्ति तथा उपभोग के वितरण में व्याप्त विषमता का बेहतर चित्रण करती है । इसकी सीमा यह है कि इसके द्वारा गरीबी की माप करने पर विकसित देशों में भी जनसंख्या का एक बड़ा भाग गरीबी की श्रेणी में आयेगा। यद्यपि उन देशों के गरीबों के रहन सहन का स्तर विकासशील देशों के गरीबों की तुलना में अधिक बेहतर होगा। वस्तुतः यह प्रणाली गरीबी की वास्तविक माप का चित्रण नहीं करके आर्थिक विषमता का चित्रण करती है । यही कारण है कि भारत में गरीबी की माप इस विधि से नहीं की जाती है ।

निरपेक्ष प्रतिमान: गरीबी माप की इस विधि के अर्न्तगत गरीबी की माप के लिए देश में विद्यमान एक न्यूनतम उपभोग स्तर को जीवन यापन की अनिवार्य आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाता है। न्यूनतम उपभोग स्तर से कम उपभोग करने वाले व्यक्ति को गरीबों की श्रेणी में रखा जाता है। भारत में इस न्यूनतम उपभोग स्तर को गरीबी रेखा की संज्ञा दी गयी है। गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए जीवन यापन हेतु अनिवार्य आवश्यक वस्तुओं की न्यूनतम मात्रा को पोषकता की न्यूनतम मात्रा के आधार पर ज्ञात किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त भौतिक मात्राओं की कीमत से गुणा करके मुद्रा के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। प्राप्त मौद्रिक मान प्रति व्यक्ति न्यूनतम उपभोग व्यय को प्रदर्शित करता है। यही न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। गरीबी रेखा में सम्मिलित व्यय न्यूनतम उपभोग व्यय गरीबी रेखा को व्यक्त करता है। गरीबी रेखा में सम्मिलित व्यय न्यूनतम आवश्यक पोषकता प्रदान करने वाले खाद्य पदार्थो पर किए जाने वाले व्यय को प्रदर्शित करता है। इस व्यय में अनिवार्य आवश्यकताओं यथा वस्त्र, आवास तथा ईधन पर किए जाने वाले व्यय को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अत; गरीबी रेखा केवल जीवन यापन हेतु आवश्यक खाद्य पदार्थो पर किए जाने वाले व्यय से संबधित होती है। ज्ञातव्य है कि गरीबी की माप के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग सर्वप्रथम खाद्य एवं कृषि संगठन के प्रथम महानिदेशक ब्याएड आर ने 1945 में किया तथा इसके आधार पर गरीबी की माप करने के लिए क्षुधा रेखा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। यही संकल्पना विश्व के सभी देशों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

भारत में गरीबी की माप करने के लिए निरपेक्ष प्रतिमान का ही प्रयोग किया जा रहा है। इसी प्रतिमान के आधार पर निर्धारित किए गये न्यूनतम उपभोग व्यय को गरीबी रेखा की संज्ञा दी जाती है। इस विधि के माध्यम से गरीबी की माप करने की विधि को हेड काउंट रेशियो भी कहा जाता है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबों की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1989 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी0 टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल

द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को आधार बनाया। 11 मार्च 1997 को योजना आयोग की पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए लकड़वाला फार्मूले को स्वीकार कर लिया गया।

बृहद अर्थो में गरीबी से आशय उस सामाजिक क्रिया से है जिसमें समाज का एक भाग निश्चित न्यूनतम उपभोग का स्तर प्राप्त करने में असफल रहते है। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। इस कारण हमारे देश में योजना आयोग द्वारा गरीबी निर्धारण के सम्बन्ध में एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार संबंधी जरुरतो को घ्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार "जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।"जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

5.4 गरीबी का परिमाण

भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान लगाने के लिये समुचित एवं संतोषजनक आँकड़ों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इस देश में आय के वितरण से सम्बन्धित आँकड़ों का प्रायः उचित संकलन नहीं हो पाता। परन्तु राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के विभिन्न दौर में सर्वेक्षण के आधार पर जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा निजी उपभोग पर व्यय के संतोषजनक आँकड़े उपलब्ध हुये हैं। परन्तु गरीबी की परिभाषा पर मतभेद और अध्ययन की रीतियों के अन्तर के

कारण बर्धन, मिन्हास, पी0डी0 ओझा तथा दांडेकर व नीलकंठ रथ आदि अर्थशास्त्री गरीबी की व्यापकता के सम्बन्ध में एक दूसरे से भिन्न निष्कर्षों पर पहुँचे हैं।

पी0डी0 ओझा के अनुमान: ओझा का मत है कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें अपने आहार से प्रतिदिन 1,800 कैलोरी की प्राप्ति नहीं होती, गरीब माने जा सकते हैं। 1960-61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर भोजन के उपर्युक्त स्तर के अनुरूप प्रति व्यक्ति उपभोग 15-18 रू0 प्रति माह होना चाहिये।इस आधार पर ओझा के अनुसार 1960-61 में 52 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या तथा इसी वर्ष शहरी क्षेत्रों में 56 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे थी।

दांडेकर एवं रथ के अनुमान: इन्होंने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा प्रदत्त आँकड़ों का प्रयोग किया है। वे 1968-69 में ग्रामीण क्षेत्रों में उन परिवारों को गरीबी के स्तर के नीचे मानते हैं जिनकी वार्षिक आय 324 रूपये से कम थी। इस श्रेणी में आने वाले लोग समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र के लिये उन्होंने गरीबी का स्तर प्रति व्यक्ति 486 रूपये वार्षिक आय पर निर्धारित किया। इस आधार पर 1968-69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी के स्तर से नीचे थे।

वी0एम0 दांडेकर तथा नीलकंठ रथ ने राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण द्वारा उपलबध आँकड़ों का विश्लेषण कर यह निष्कर्ष निकाला है कि 1960-61 से 1968-69 के मध्य उपभोग पर व्यय में औसत 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई है। 1960-61 से 1967-68 तक सात वर्षों में उपभोग पर औसतन वृद्धि 3.9 प्रतिशत रही। इसी अवधि में जहाँ गांवों में उपभोग व्यय 3.4 प्रतिशत बढ़ा, शहर में औसत वृद्धि दर 2.4 प्रतिशत थी। दांडेकर और रथ के ही शब्दों में विकास के लाभ प्रधानतः उच्च, मध्यम तथा सम्पन्न वर्गों के लोगों तक ही जो जनसंख्या के 40 प्रतिशत हैं, सीमित रहे हैं। जबकि सात वर्षों में राष्ट्रीय उपभोग के औसत स्तर में 3.9 प्रतिशत की वृद्धि हुई, वहाँ ग्रामीण लोगों में सर्वोच्च 40 प्रतिशत, लोगों के उपभोग के स्तर में 4.4 प्रतिशत और शहरी जनसंख्या में ऊपर के 40 प्रतिशत लोगों के उपभोग में 4.8 प्रतिशत वृद्धि हुई। गांवों में मध्यम, निम्न मध्यम तथा गरीब श्रेणियों के लोगों के प्रति व्यक्ति उपभोग में अपेक्षाकृत थोड़ा सुधार हुआ और सबसे

गरीब 5 प्रतिशत व्यक्तियों के प्रति व्यक्ति उपभोग में थोड़ी कमी हुई है। शहरी क्षेत्र में स्थिति अधिक गंभीर है। शहरी जनसंख्या के सबसे नीचे के 40 प्रतिशत व्यक्तियों के औसत प्रति व्यक्ति उपभोग में कमी हुई और सबसे गरीब 10 प्रतिशत जनसंख्या का उपभोग का स्तर 15 से 20 प्रतिशत गिर गया। विकास के लाभों का इस प्रकार का असमान वितरण, अंततः आर्थिक असमानता को बढ़ाता है और धनी तथा गरीब के बीच खाई चौड़ी करता है।

प्रणव के0 वर्धन के अनुमान: बर्धन ने कृषि में नवीन नीति के वितरण पर प्रभाव का अध्ययन किया है। उनके अनुसार वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक के अन्त में भारत की लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या न्यूनतम स्वीकार्य जीवन स्तर के नीचे थी। बर्धन ने गरीबी की रेखा 1960-61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति 15 रूपये मासिक निजी उपभोग के स्तर के अनुरूप स्वीकार की है। 1967-68 और 1968-69 में प्रचलित कीमतों के आधार पर इन वर्षों में गरीबी की रेखा क्रमशः 30.0 और 29.4 रू0 प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग के अनुरूप होगी। बर्धन के अनुमान के अनुसार इस वर्ष गरीबी की रेखा के नीचे आने वाले ग्रामीणों की संख्या 23 करोड़ थी, जो तत्कालीन ग्रामीण जनसंख्या की 54 प्रतिशत थी।

बी0 एस0 मिन्हास के अनुमान: मिन्हास का विचार है कि 1960-61 के मूल्यों के आधार पर 200 रू0 वार्षिक के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिये न्यूनतम जीवन स्तर को प्राप्त कर सकना संभव होगा। ''शहरी और ग्राम्य दोनों ही क्षेत्रों को मिलाकर देखने पर सारे देश के लिये सरकारी विशेषज्ञ समिति न्यूनतम जीवन स्तर के लिये 240 रू0 वार्षिक प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि इससे कम ही होनी चाहिये और मिन्हास इसे 200 रू0 मान लेते हैं।

डॉ0 कोस्टा ने अपने अनुमान में गरीबी के तीन स्तर बताये हैं, अर्थात् अतिदीन, दीन और गरीब। उनके अनुमान के अनुसार 1963-64 में 6.2 करोड़ व्यक्ति अतिदीन जीवन व्यतीत करते थे। 10.4 करोड़ दीन और 16.2 करोड़ व्यक्ति गरीबी का जीवन व्यतीत करते थे। अतिदीनता का जीवन गुजारने वाले लोगों का अनुपात 13.2 प्रतिशत था और गरीबी में रहने वालों का 34.9 प्रतिशत था।

एम0 एस0 आहलूवालिया ने भी गरीबी के अनुमान प्रस्तुत किये। 1956-57 में ग्रामीण जनता का 54.1 प्रतिशत भाग गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा था। गरीब जनता का यह अनुमान 1960-61 में 38.9 प्रतिशत ही रहा गया। इसके बाद 1967-68 तक गरीबों की संख्या में वृद्धि हुई। 1967-68 के बाद इस गरीबी अनुपात में कमी आयी और 1973-74 में यह गरीबी अनुपात ग्रामीण जनसंख्या का 46.1 प्रतिशत रह गया।

देश में गरीबी अनुपात के ताजा आँकड़े योजना आयोग ने मार्च 2007 में जारी किये हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने गरीबी की स्थिति के आंकलन के लिये 2004-05 के अपने सर्वेक्षण में दो तरह की प्रश्नावली का प्रयोग किया है। जिसमें प्रथम 30 दिन के यूनीफार्म रिकॉल पीरियड उपभोग व्यय व दूसरा 365 दिन के संदर्भ वाले मिक्स्ड रिकॉल पीरियड पर आधारित था। इन दोनों ही आधारों पर गरीबी अनुपात अलग-अलग आँकलित किया गया है। न्त्च् आधारित ऑकलन में देश में गरीबों की संख्या 2004-05 में 30.7 करोड़ बतायी गयी है, जबकि आँकड़ों में यह 23.85 करोड़ है जिसमें ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में गरीबों की कुल संख्या क्रमशः 17.03 करोड़ व 6.82 करोड़ आँकलित है। इससे पूर्व 1999-2000 के आँकड़ों में देश के गरीबों की कुल संख्या (गरीबी रेखा से नीचे कुल जनसंख्या) 26.02 करोड़ (ग्रामीण क्षेत्रों में 19.32 करोड़ व शहरी क्षेत्रों में 6.7 करोड़) थी।

हमारे देश में गरीबी के माप हेतु गरीबी रेखा के निर्धारण करने का प्रयास सर्वप्रथम सरकार द्धारा गठित एक विशेषज्ञ दल द्धारा 1961 में किया गया। इस विशेषज्ञ दल ने 1960-61 की कीमतों पर 240 रु0 वार्षिक या 20 रू0 मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय को गरीबी रेखा माना था। इस विशेषज्ञ दल ने न्यूनतम उपभोग व्यय में शिक्षा तथा स्वास्थ्य पर किए जाने वाले व्यय का भार को नहीं लिया क्योंकि इनको सरकार स्वंय वहन करती है। उक्त विशेषज्ञ दल ने यह भी कहा था कि बाद के वर्षो के लिए गरीबी रेखा का अनुमान कीमत वृद्धि से उक्त राशि को समायोजित कर प्राप्त किया जा सकता है। इसी आधार पर समय-समय पर विशेषज्ञो ने गरीबी रेखा तथा गरीबी के स्तर का अनुमान लगाया गया है।

योजना आयोग द्वारा आंकलित गरीबो की संख्या को लेकर विवाद बना रहता है। 1993-94 में योजना आयोग ने प्रसिद्व अर्थविद डी0 टी0 लकड़वाला की अध्यक्षता में गठित विशेषज्ञ दल द्वारा योजना आयोग के पूर्व आँकडों को अविश्वसनीय बताते हुए गरीबी की माप के लिए वैकल्पिक फार्मूले का उपयोग करने का सुझाव दिया। जिसके अंतर्गत शहरी गरीबी के आंकलन के लिए औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक एवं ग्रामीण क्षेत्रो में इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को आधार बनाया। 11 मार्च 1997 को योजना आयोग की पूर्ण बैठक में गरीबी रेखा की माप के लिए लकड़वाला फार्मूले को स्वीकार कर लिया गया। इस न्यूनतम उपभोग के लिए आवश्यक आय के विषय पर अर्थशास्त्री एकमत नहीं है। 7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया। इस वर्द्धित गरीबी रेखा के निर्धारण में मासिक वैयक्तिक उपभोग व्यय में सरकार द्वारा शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवार नियोजन, समाज कल्याण आदि पर किए जाने वाले प्रति व्यक्ति मासिक व्यय की राशि भी जोड़ दिया। इस प्रकार प्राप्त हुई धनराशि को वर्द्धित गरीबी रेखा का नाम दिया गया। वर्द्धित गरीबी रेखा पूरे देश के लिए समान नहीं होगा बल्कि इसका निर्धारण प्रत्येक राज्य के लिए अलग-अलग होगा। इस कारण योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार "जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है।"

जो व्यापक गरीबी की स्थिति को बताता है। जिसका विद्यमान होना चिन्ता का विषय है। इसी अवधारणा पर आधारित योजना आयोग राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण एवं विश्व बैंक द्वारा उपभोग व्यय से सम्बन्धित जो जानकारी उपलब्ध है उसके आधार पर शहरी व ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी के अनुमापन का प्रयास किया गया।

अभ्यास प्रश्न 1

1. भारत में ..... प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे रहते है।
2. गरीबी रेखा की पुर्न परिभाषा हेतु ..... की अध्यक्षता में समिति गठित की गयी है।
3. गरीबी की माप के लिए सामान्यतः..... का प्रयोग किया जाता है
4. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना 1 जनवरी .....से प्रारम्भ हुई थी।
5. निर्धनता रेखा मापने का कैलोरी मापदण्ड ..... द्वारा दिया गया है।
6. शहरी गरीबी के आंकलन के लिए ..... को आधार बनाया।
7. ग्रामीण गरीबी के आंकलन के लिए .....को आधार बनाया।
8. भारत में गरीबी की माप .....प्रतिमान विधि से की जाती है।

5.5 गरीबी के कारण

पुरातन और आधुनिक दो परिप्रेक्ष्य के आधार पर हम गरीबी के कारणों का विश्लेषण करते है। पुरातन दृष्टिकोण यह है कि गरीबी दैवकृत और व्यक्ति के पूर्व कर्मों और पापों का परिणाम है। हेनरी जार्ज इस सन्दर्भ में लिखते हैं कि बड़े नगरों में जहाँ भूमि इतनी मूल्यवान है कि फुट से नापी जा सकती है, आप गरीबी और विलासिता की चरम सीमायें पायेंगे और सामाजिक स्तर की दो चरम सीमाओं की अवस्था में यह असमानता सदैव भूमि के मूल्य से नापी जाती है जहॉ गरीबी प्रमुख सामाजिकसमस्या के रूप में दिखाई पड़ती है। काल मार्क्स गरीबी का कारण पूँजीपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण है। **हेनरी इलेश** ने गरीबी के तीन कारण बतलाये है : क्तिव्य, संस्कृति या उपसंस्कृति और सामाजिक संरचना। आधुनिक विचार गरीबी को उन कारकों से जोड़ता है जो एक व्यक्ति के नियत्रंण से परे होतेहै, दूसरा समाज में सामाजिक व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली को गरीबी का कारण बतलाया है।

व्यक्तिगत कारण

व्यक्तिवाद का सिद्धान्त निर्धनता के कारण को व्यक्तिमें ही ढूढ़ता है। व्यक्ति की सफलता और असफलता उसके व्यक्तिगत कारकों पर निर्भर करती है। जैसे –

1) **बीमारी** – हन्टर कहते है, ''गरीबी और बीमारी एक जटिल समझौता बना लेती है जिसमें कि मनुष्यों में सबसे अधिक अभागों के दु:खों को बढ़ाने में प्रत्येक दूसरे की सहायता करता है।'' बीमार होने पर कार्य न करने के कारण आय नहीं होती, वही उसकी पूर्व आय का बड़ा भाग चिकित्सा पर व्यय होता है। इस तरह बीमारी उसपर दोहरी चोट कर गरीबी को बढ़ती जाती है।
2) **अशिक्षा** – अशिक्षा गरीबी के मूल में ही समाहित है। अशिक्षित व्यक्ति में आय अर्जन की सामर्थ्य बहुत कम होता है जिस कारण वह आगे भी स्वयं और अपने बच्चों को भी पढ़ा-लिखा नहीं पाता है और गरीबी का दंश सहन रहता है ।
3) **आलस्य** – आलस्य के कारण कार्य मिलने पर भी कार्य को न करना गरीबी बढ़ने एवं बने रहने में सहायतारूप में ही है। गर्म देशों में यह समस्या व्यापक रूप में पाई जाती है।
4) **दुर्घटना** – दुर्घटना के कारण व्यक्ति शारीरिक रूप में अक्षम होने पर बेकार हो जाता है, जो उसकी आय को ही समाप्त कर गरीबी की तरफ ले जाती है।
5) **अनावश्यक व्यय** – सामाजिक परम्परा और लोक उलाहन के कारण हमारे देश में लोग त्यौहारों,पारिवारिक समारोह आदि में अनावश्यक रूप में अपनी आय से अधिक व्यय कर स्वयं को गरीबी की तरफ ले जाते है।
6) **नैतिक पतन** – नैतिक पतन में व्यक्ति शराब, जुआ, वेश्या-वृत्ति आदि व्यसनों में पड़ कर स्वयं को बर्बाद कर गरीबी में आजाता है।
7) **अधिक सन्तानोत्पत्ति** भी हमारे देश में गरीबी का एक प्रमुख व्यक्तिगत कारण है जो व्यक्ति की आय से अधिक सन्तानों का भरण-पोषण का व्यय होता है जो उसे गरीबी से और गरीबी की तरफ ले जाती है।

लैण्डिस और लैण्डिस)Landis and Landis(कहते है, ''संसार में जहाँ आर्थिक समस्या इतनी अधिक है, व्यक्ति को सदैव गरीबी के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता।'' अत : गरीबी के भौगोलिकक्तिगत कारणों के अतिरिक्तव्य, संस्कृति, आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य कारण भी है।

भौगोलिक कारण

प्राकृतिक संसाधनों के अभाव, मौसम की प्रतिकूलता, प्राकृतिक आपदाओं का संकट ऐसे कारक है जो गरीबी के बढ़ावा ही देते रहते है।

संस्कृति या उपसंस्कृति कारण

आस्कर लेविस ने ति के विचार को बढ़ाया। रेयन और चिलमेन भी में गरीबी की संस्कृ 1958 इस विचारधारा का तर्क है कि गरीबी की संस्क इस विचारधारा के पक्षघर थे।ृति गरीबों के मूल्य, मानदण्ड, विश्वास और रहने के रंगढ़ंग समाजद्वारा उनके दूर करने के प्रयास में प्रमुख रूप - में अवरोध बन जाती है। इस प्रकार गरीब, गरीबी में ही जीता रहता है।

आर्थिक कारण

आर्थिक कारण गरीबी का मुख्य कारण है। इसका परीक्षण मुख्य रूप में निम्नांकित कारकों से किया जा सकता है –

1) **अपर्याप्त एवं असंतुलित विकास** – देश के सभ्ज्ञी क्षेत्रों का संतुलित विकास न होना गरीबीका एक प्रमुख कारक है। उद्योग-धन्धों का विकास भी उन्हीं क्षेत्रों में तीव्रता से हुआ जहाँ संसाधनों की उपलब्धता एवं अद्योसंरचना का विकास हुआ है।
2) **कामकारों में कार्यकुशलता की कमी** – श्रमिकों का उपलब्ध रोजगार के अनुसार कार्यकुशलता का न पाया जाना एक प्रमुख समस्या है। हमारी शिक्षा प्रणाली भी परम्परागत पद्धति पर ही लागू है जो केवल शिक्षित बेरोजगार ही पैदा करती आ रही है।
3) **कृषि क्षेत्र का विकास न होना** – कृषि क्षेत्र पर जनसंख्या का जुड़ाव 70 प्रतिशत से अधिक है और सर्वाधिक श्रम कृषि क्षेत्र में ही कार्यरत है परन्तु कृषि अभी 60 प्रतिशत क्षेत्र मानसून पर निर्भर है नवीन तकनीक ज्ञान का अभाव एवं सभी क्षेत्रों में संतुलितकृषि ज्ञान का प्रसार न हो पाना चिन्ता का कारण बनताजारहा है।

4) **पूँजी का अभाव** – पूँजी के अभाव के कारण अभी भी देश भारी उद्यम पिछड़े क्षेत्रों में औद्योगिक विकास, अद्योसंरचना का विकास और अनुसंधान हेतु विदेशी पूँजी पर निर्भरहै जिस हेतु हमें अनावश्यक इनकी शर्तो का पालन करना पड़ता है।
5) **बेरोजगारी** – बेरोजगारी गरीबी का प्रमुख कारण है। देश में लागू शिक्षा प्रणाली, श्रम की अकुशलता, परिवार नियोजन का अभाव बेरोजगारी को तीव्र करते है जिसका परिणाम गरीबी में वृद्धि के रूप में सामने आता है।

सामाजिक कारण

समाज वैज्ञानिक गरीबी का सम्बन्ध सामाजिक संरचना अथवा व्याप्त सामाजिक परिस्थितियों से जोड़ते है। इसको निम्न रूप में व्यक्त करते है।

1) **दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली** – भारतीय शिक्षा प्रणाली केवल शिक्षित बेरोजगार को जन्म देते है। जबकि आवश्यकता हमेशा तकनीक ज्ञान रूप से कुशल श्रम की है।
2) **स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव** – स्वास्थ्य की अवसंरचना का विकास नहीं हुआ है जिस कारण निजी क्षेत्र द्वारा उपलब्ध अकुशल एवं मंहगी स्वास्थ्य सेवा के कारण समाज का कमजोर वर्ग बीमार होने पर गरीबीकीजाल में बन्धक बन जाताहै।
3) **सामाजिक कुरीतियाँ** – देश में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों का बन्धन कमजोर वर्ग को गरीबी और कर्ज में ले जाता है। जैसे व्यक्ति की मृत्यु पर सामाजिक भोज का आयोजन, जन्म और विवाह संस्कार में अनावश्यक व्यय करना आदि।
4) **जातिवाद** – जातिवादी व्यवस्था ने देश के समाजको लगातार बटवारा किया है जिस कारण विकास अवरूद्ध हुआ है और गरीबी में वृद्धि हुई है।

उपरोक्त सामाजिक, संस्कृति, आर्थिक, व्यक्तिगत तथा भौगोलिक कारणों के अतिरिक्त राजनीतिक रूप में अतिरिक्त करारोपण करके देश की आर्थिक माहौला को खराब करना, जनसंख्या की वृद्धि एवं अकुशलता, अद्योसंचरना के विकास में बाधा उत्पन्न कर व्यापार और

उद्योग की उन्नति रोकने जैसे अनेक अन्य कारक गरीबी को उत्पन्न करते है। इसी कारण कहते है कि गरीबी स्वयं गरीबी बढ़ानेका सबसे बड़ा कारण है।

5.6 भारत में गरीबी का अनुमान

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के विभिन्न दौर पर किए गये सर्वेक्षण से प्राप्त आँकड़ों से सामान्य गरीबी का विश्लेषण तालिका के आधार पर करते हैं तो गरीबी के सम्बन्ध में निम्न निष्कर्ष पाया गया- समग्र गरीबी का अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि के दौरान 45.3 प्रतिशत से कम होकर 37.2 प्रतिशत हो गया अर्थात् इसमें 8.10 प्रतिशत की कमी हुई जो इसके बाद की अवधि 2004-05 से 2009-10 के बीच भी 37.2 प्रतिशत से कम होकर 29.8 प्रतिशत अर्थात् इसमें भी 7.4 प्रतिशत

समग्र देश में विभिन्न वर्षो में गरीबी का अनुमान (वर्ष 1993-94 से 2009-10)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी	भारत
1993-94	*50.1*	*31.8*	*45.3*
2004-05	*41.8*	*25.7*	*37.2*
2009-10	*33.8*	*20.9*	*29.8*
वार्षिक औसत गिरावट **1993–94 से 2004–05** (प्रतिशत बिंदु प्रति वर्ष)	*0.75*	*0.55*	*0.74*
वार्षिक औसत गिरावट **2004–05 से 2009–10** (प्रतिशत बिंदु प्रति वर्ष)	*1.60*	*0.96*	*1.48*

स्रोत्र–योजना आयोग,तेंदुलकर विधि द्वारा अनुमानित।

की कमी हुई। शहरी क्षेत्र में यह अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि में 31.8 प्रतिशत से कम होकर 25.7 प्रतिशत अर्थात् 6.1 प्रतिशत की कमी जो वर्ष 2004-05 से 2009-10 में 25.7 प्रतिशत से कम होकर 20.9 प्रतिशत अर्थात् इसमें 4.8 प्रतिशत की कमी हुई। ग्रामीण क्षेत्र में यह अनुपात 1993-94 से 2004-05 की अवधि में 50.1 प्रतिशत से कम होकर 41.8 प्रतिशत अर्थात् 8.3 प्रतिशत की कमी हुई वर्ष 2004-05 से 2009-10 में 41.8 प्रतिशत से कम होकर 33.8 प्रतिशत अर्थात् 9.0 प्रतिशत की कमी हुई।

5.7 गरीबी निवारण के लिए नीतियाँ और कार्यक्रम

भारतीय संविधान और पंचवर्षीय योजनाओं में सामाजिक न्याय को सरकार की रण नितियों का प्राथमिक उद्देश्य माना है। **प्रथम योजना (1951-56)** में ही यह विचार व्यक्त किया गया था कि आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन की अतः प्रेरणा का उदय गरीबी और आय, संपत्ति तथा अवसरों की

असमानताओं से होता है। और माना गया आर्थिक विकास की प्रक्रिया के बढ़ने के साथ रिसाव सिद्धान्त प्रभावी हो जायेगा एवं गरीबी और आय, सम्पत्ति की असमानता में कमी आएगी। **दूसरी योजना (1956-61)** में भी कहा गया है, "आर्थिक विकास के अधिकाधिक लाभ समाज के अपेक्षाकृत कम भाग्यशाली वर्गो तक पहुँचना चाहिए"। प्राय सरकार के सभी नीति विषयक प्रपत्रों में गरीबी निवारण और अपनाई जाने वाली रणनीतियों की चर्चा हुई है। इस सन्दर्भ में सरकार गरीबी निवारण के लिए लि-आयामी नीति अपनाई। प्रथम संवृद्धि आधारित जो प्रथम, दूसरी एवं तीसरी योजना में रही जो राष्ट्रीय आय और प्रति व्यक्ति आय में तीव्र वृद्धि का प्रभाव धीरे2 गरीबी वर्ग तक पहुँचने पर आधारित था। जिसमें चुने क्षेत्रों का तीव्र औद्योगिक विकास हो एवं **तीसरी योजना (1961-66)** में लागू हरित क्रान्ति से कृषि का पूर्ण काया-कल्प कर समाज के अधिक पिछड़े वर्गो को लाभान्वित करना था। जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत वृद्धि न हो सकी एवं साथ ही धनी एवं गरीबी की खाई और बढ़ गई। हरित क्रान्ति ने विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के बीच खाई को और चौड़ा किया। जबकि भूमि के पुर्नवितरण की इच्छा तथा योग्यता का अभाव था। इस तरह **चौथी योजना (1969-74)** तक गरीबी के निवारण हेतु प्रत्यक्ष कार्यवाही की जगह अप्रत्यक्ष नीति का सहारा लिया जाता रहा।

पाँचवी योजना (1974-1979) में प्रथम बार गरीबी से मुक्ती को मुख्य उद्देश्य माना गया। योजना के अर्न्तगत गरीबी निवारण, स्वालम्बन की प्राप्ति, आय की विषमताओं में कमी और गरीबों के उपभोग स्तर में वृद्धि के मुख्य लक्ष्य नियत किए थे। **छठी योजना (1970-75)** में भी गरीबी निवारण को महत्ता प्रदान की गई। विकास कार्यक्रमो में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान दिया। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की सामाजिक आर्थिक अन्तसंरचना को सुदृढ़ करने, ग्रामीण गरीबी का निवारण एवं क्षेत्रीय विषमताओं को कम करने के लिए विशिष्ट कार्यक्रम संचालित किए।

इसी तरह **सातवीं योजना (1975-90)** में खाद्यान्न उत्पादन की वृद्धि,रोजगार अवसरों में वृद्धि, आधुनिकीकरण, स्वालम्बन व सामाजिक न्याय के आधारभूत सिद्धान्त के आधारभूत सिद्धान्त के आधार पर उत्पादकता में वृद्धि आने पर बल दिया गया जिससे गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार सम्भव हो इसी रणनीति के तहत गरीबी से सन्दर्भित अनेक कार्यक्रम चलाये गयें।

आठवीं योजना (1992-97) में नियोजित विकास हेतु 'मानव विकास' को मुख्य रूप से ध्यान की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देते हुए न्याय संगत सामाजिक स्थिति के पुनरूस्थापन पर जोर दिया गया। यह सुनिश्चित यिा गया कि योजना के केन्द्र में, आम लोगों की आवश्यकताएँ व उनका जीवन स्तर सुधार का लक्ष्य रहे। इसके लिए काम के अधिकार, ग्रामीण विकास की अनिर्वायता, विकेन्द्रीकरण व एकीकृत क्षेत्र आयोजना, कृषि का विकास, शहरी गरीबी व बेरोजगारी का निवारण व सामाजिक विकास शिक्षा व स्वास्थ्य के स्तर में परिवर्तन, खाद्य व सामाजिक सुरक्षा का बेहतर स्थिति व जनसंख्या नियत्रंण की रणनीति प्रस्तावित की गयी।

नवीं योजना (1997-2002) में उन योजना को प्राथमिकता के आधार पर लागू किया गया जों कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गयी जिससें गरीबी का निवारण हो सके। इसके साथ ही योजना हेतु निंदिष्ट स्कीमों में श्रम गहन होने पर जोर दिया गया जो दीर्घकालीन धारणीय लाभ प्रदान कर सके। योजना काल में आरम्भ किये गये आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के द्वारा जो संरचनात्मक सुधार लागू हुए उनका ध्येय भी गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करना ही था।

दसवीं पंचवर्षीय योजना (2002-07) के दौरान तीव्र वृद्धि के साथ गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के माध्यम से गरीबी में बड़ी कमी का लक्ष्य रख गया। योजना में 7 प्रतिशत वार्षिक विकास का लक्ष्य रखा गया। इसके साथ प्राथमिक शिक्षा व साक्षरता में वृद्धि करना, स्वास्थय सुविधाओं के विकास को प्राथमिकता प्रदान की गई। परन्तु जहाँ वृद्धि दर 7.6 प्रतिशत प्राप्त हुई लेकिन गरीबी निवारण कार्यक्रमों में उतनी सफलता नहीं प्राप्त हुई जितनी आशा थी।

ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना (2002-12) में समावेशी विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के साथ शुरू की गई है। जिसमें गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार के अनेक दीर्घकालीन कार्यक्रमों को लगू किया गया है और इसे इस प्रकार क्रियान्वित किया जाना है कि आर्थिक व सामाजिक विकास में राज्यों के बीच अन्तर समाप्त हो जाए।

गरीबी निवारक कार्यक्रम- गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। इसमें से अधिकांश कार्यक्रम भौतिक सम्पदा के निर्माण जैसे- ग्रामीण आधारिक संरचना के अन्तर्गत सड़क, पीने का पानी की सुविधाओं, सीवरेज आदि से जुड़े है जबकि अन्य को स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित करना तथा व्यापार प्रारम्भ करने हेतु

सहायता प्रदान करना है। स्वयं सहायता समूह भी लोगों के सतत् विकास हेतु प्रयत्नशील है। गरीबी निवारक कार्यक्रम निम्न है-

अस्थायी रोजगार सृजित करने वाले कार्यक्रम- जवाहर रोजगार योजना (जे0आर0वाई0), जवाहर समृद्धि योजना, दस लाख कुआं योजना, रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले आनाज, राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन0आर0ई0पी0), भूमिहीन ग्रामीण रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (एन0आर0ई0जी0पी0), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम (2005)।

सतत् रोजगार एवं आय सृजित कार्यक्रम- स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, स्वयंसिद्धा प्रोजेक्ट, संयुक्त वन प्रबन्धन कार्यक्रम, स्वयं सहायता समूह, ग्रामीण वन प्रबन्धन कमेटी, सूक्ष्म वित्त एवं प्रबन्धन द्वारा लाभार्थी का व्यापक आर्थिक सुधार।

जीविका की लागत कम करने वाले कार्यक्रम - सार्वजनिक वितरण प्रणाली, स्वजल धारा (ग्रामीण क्षेत्र में पीने के पानी की सुनिश्चितता करना), इन्दिरा आवास योजना।

इनमें से मुख्य कार्यक्रमों का विवरण निम्न है-

गरीबी निवारक कार्यक्रम

कार्यक्रम	वर्ष	उद्देश्य
सघन कृषि जिला कार्यक्रम (IADP)	1960-61	कृषकों को बीज, उर्वरक, औजार और ऋण उपलब्ध करना।
साख अधिकरण योजना (CAS)	1995	RBI की चयनात्मक साख नीति की एक योजना
बहु फसली कार्यक्रम	1966-67	कृषि उत्पादन में वृद्धि करना
विभेदीकृत ब्याजदर योजना	1972	समाज के कमजोर वर्गो को रियायती दर 4 प्रतिशत पर ऋण उपलब्ध कराना।
ग्रामीण रोजगार के लिए नकद योजना	1972- 74	ग्रामीण विकास हेतु
मरूभूमि विकास कार्यक्रम	1977-78	मरूभूमि विस्तार प्रक्रिया नियंत्रण एवं पर्यावरण सन्तुलन
काम के बदले अनाज कार्यक्रम	1977-78	विकास प्रक्रियाओं के काम हेतु खाद्यान्न देना।
अन्तोदय कार्यक्रम	1977-78	राजस्थान में गांव के सबसे गरीब परिवारों को स्वाबलम्बी बनाना।

ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु ग्रामीण प्रशिक्षण कार्यक्रम (TRYSEM)	15अगस्त 1979	युवा वर्ग की बेरोजगारी को दूर करने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम
समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (IRDP)	12 अक्टूबर 1980	ग्रामीण निर्धन परिवारों को स्वरोजगार हेत ऋण उपलब्ध कराना।
राष्ट्रीय ग्राम्य रोजगार कार्यक्र	1980	ग्रामीण निर्धनों को लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना
ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं एवं बाल विकास(NREP)	1982	BPL ग्रामीण परिवारों की महिलाओं को कार्यक्रम स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।
ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारण्टी कार्यक्रम (RLEGP)	15 अगस्त 1983	भूमिहीन कृषकों व श्रमिकों को रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
इन्दिरा आवास योजना	1985-86	ग्रामीण क्षेत्रों में गृह निमार्ण हेतु।
शहरी निर्धनों हेतु स्वरोजगार कार्यक्रम	1986	स्वरोजगार हेतु वित्तीय एवं तकनीकी मद्द
सेवा क्षेत्र दृष्टिकोण	1988	ग्रामीण क्षेत्रों के लिए नई साख नीति।
प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम	1988	ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में शिक्षा विस्तार
नेहरू रोजगार योजना	अक्टूबर 1989	नगरीय बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु।
जवाहर रोजगार योजना	अप्रैल1989	ग्रामीण क्षेत्रों के बेरोजगारों को रोजगार देने हेतु ।
कृषि एवं ग्रामीण ऋण राहत योजना	1990	ग्रामीण कुशल श्रमिकों, कारीगरों बुनकरों को 10000रु0 तक ब्याज मुक्त ऋण देना।
शहरी सूक्ष्म उद्यम योजना	1990	शहरी लघु उद्यमियों को वित्तीय सहायता।
शहरी सवेतन रोजगार योजना	1990	एक लाख से कम जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में गरीबों के लिए मूल सुविधा की व्यवस्था करके मजदूरी रोजगार प्रदान करना।
शहरी आवास एवं आश्रय सुधार योजना	1990	1 लाख से 20 लाख की जनसंख्या वाली शहरी बस्तियों में आश्रय उन्नयन के माध्यम से रोजगार प्रदान करना।
रोजगार आश्वासन योजना	1993-94	रोजगार उपलब्ध कराने हेतु।
राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम	1995	विभिन्न योजनाओं द्वारा लोगों को सहायता।
संगम योजना	1996	विकलांगों के कल्याण हेतु।

कस्तूरबा गाँधी शिक्षा योजना	15 अगस्त 1997	नीची महिला साक्षरता वाले जिलों में बालिका विद्यालय की स्थापना।
स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना	1 दिसम्बर 1997	शहरी क्षेत्रों में लाभ प्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
जवाहर ग्राम समृद्धि योजना	1अप्रैल,1999	ग्रामीण निर्धनों का जीवन सुधारना और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।
अन्नपूर्णा योजना	19 मार्च1999	वृद्ध नागरिकों को निःशुल्क अनाज
स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना	1अप्रैल, 1999	सामूहिक प्रयास पर बल। सहायता प्राप्त गरीब व्यक्ति को 3 वर्ष में BPL के ऊपर लाना।
प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना	2000	गाँवों का समग्र विकास।
अन्तोदय योजना	2000	बी.पी.एल .पारिवारिक सर्वाधिक गरीबों को अनाज उपलब्ध कराना।
आश्रय बीमा योजना	जून 2001	रोजगार छूटे कर्मचारियों को सुरक्षा कवच प्रदान करना।
सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना	25 सितम्बर 2001	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार का सृजन
बाल्मीकि अम्बेडकर आवास योजना	2001, दिसम्बर	शहरी स्लम आबादी को स्वच्छ आवास उपलब्ध कराने हेतु।
सर्वशिक्षा अभियान	2000-01	6-14 वर्ष के सभी बच्चों को 2010 तक निःशुल्क एवं आठवीं तक की प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराना।
खाद्यान्न बैंक योजना	2001	घोषित ग्राम पंचायत स्तर पर खाद्यान्न बैंक की स्थापना।
प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना	25 दिसम्बर 2000	गाँवों को सडक से जोड़ना।
हरियाली योजना	27 जनवरी 2003	ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण को प्रोत्साहन।
जवाहर लाल नेहरू नेशनल अरबन	3 दिसम्बर 2005	शहरी अवस्थापना विकास रिनुअल मिशन
राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ अभियान	12अप्रैल 2005	प्राथमिक स्वास्थय सुरक्षा को सुदृढ़ करना।
भारत निर्माण योजना	16 दिसम्बर 2005	ग्रामीण अवसथापना सर्वागीण तथा व्यापक विकास योजना।
नेशनल रूरल लिमलीहुड मिशन	2009-10	SGRY का नया नाम
राजीव आवास योजना	2009-10	स्लमुक्ति से सम्बन्धित
प्रधानमंत्री आदर्श ग्राम	2009-10	अनुसूचित जाति बहुल ग्राम विकास

योजना		योजना।
महिला किसान सशक्ति करण योजना	2010-11	ग्रामीण किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु
महात्मागांधी नेशनल रूरल एम्प्ल्वायमेंट गारन्टी प्रोग्राम (मनरेगा)	2अक्टूबर 2009 मूलतः 2.2.2006	ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार का अधिकार देना

5.8 गरीबी निवारण के उपाय

गरीबी निवारण हेतु सरकारी कार्यक्रमोंए नीतियों में सुधार और सामाजिक जागरूपता लाना अतिआवश्याक है। इसको उपरोक्त तथ्यों के अन्र्गीत रख सकते है -

1. कृषि का आधुनिक रूप में विकास करना दृ भारतीय कृषि व्यगवस्था अभी भी पुरानी एवं परम्प रागत साधनों और मौसम की अनुकूलता पर निर्भर है। कृषि में नवीन तकनीक को लागू कर इसका तीव्र विकास कर ही गरीब पर कठोर प्रहार संभव हैए क्योंवकि सर्वाधिक लोगों की निर्भरता इसी पर है।
2. भूमि का पुनर्वितरण दृ भूमि का वितरण बहुत ही असमान हैए जिस तरफ ध्या न देने की आवश्यपकता हैए बेकारए परतीए असर और चकबन्दी ा के अन्तअर्गत अधिग्रहण की गई भूमि को वंचित वर्ग को दी जानी चाहिए।
3. अद्योसंरचना के संसाधनों का विकास दृ सामाजिक एवं आर्थिक अद्योसंरचना के किसी क्षेत्र का पूर्ण देश के सभी क्षेत्रों में प्राथमिकता के आधार पर किया जाना चाहिए। क्यों ंकि बिना अद्योसंरचना के किसी क्षेत्र का विकास संभव नहीं है ।
4. छोटे तथा कुटीर उद्योगो का विकास दृ छोटे तथा कुटीर उद्योग अधिक श्रम प्रधान एवं स्थान्ीय संसाधनों के लिए उपयोगी होते है जिनकों बढ़ावा देकर स्वा ालम्बथन एवं क्षेत्रीय रोजगार में तीव्र वृद्धि संभव है।
5. रोजगार परक शिक्षा का विकास एवं जोर देना दृ गरीबी के एक प्रमुख कारण शिक्षित बेरोजगारी है। जिस पर नियंत्रण रोजगार परक शिक्षा के पाठ्यक्रम को लागू कर उद्योगक्षेत्र की आवश्य्कता की पूर्ति के साथ गरीबी एवं बेरोजगारी पर नियंत्रण पाया जा सकता है।

6. सामाजिक सहायता कार्यक्रमों का तत्पारता से लागू करना दृ देश में लागू सामाजिक सहायता कार्यक्रमों की बात लोगों तक पहुँच को जबाव देहयता के साथ सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
7. परिवार नियोजन दृ जनसंख्या नियंत्रण हेतु परिवार नियोजन को प्रभावी बनाना होगा जिसे पंचायत एवं निकाय प्रतिनिधि चुनाव के साथ सरकारी रोजगार से भी जोड़ा जाना चाहिए।
8. न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित कर प्रवाही रूप से लागू करना दृ देश में न्यूननतम मजदूरी का सभी जगह अनुपालन न किया जाना एक गंभीर दोष है। इसे प्रभावी रूप से लागू कर गरीबी में वृद्धि दर को अवमंदित किया जा सकता है।
9. आवास सुविधा का विकास करना दृ हमारे देश में आवास की व्यरवस्थाध न होना एक प्रमुख समस्या है। लोग कर्ज लेकर आवास की व्यनवस्थाव करते है या आय का एक बड़ा भाग आवास किराये में व्यरय कर देतेहै। अतरू आवास सुविधापरक कार्यक्रमों को बढ़ावा देकर गरीबी में कमी एवं नियंत्रण किया जा सकता है।

इसके साथ गरीबी निवारण के लिए हमारे अनुसार निम्नम आर्थिक उपाय भी आवश्यीक प्रतीत होते है।

- केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा राजकोषीय नियंत्रण रखना
- आन्तिरक एवं वाह्य ऋण को सीमित रखना
- घाटे वाले सार्वजनिक उपक्रमों में यदि पुनरउत्थादन की संभावना नहीं है तो उन्हें बेच दिया जाए
- निर्यात प्रोत्सानहन परक कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी रूप् से लागू करना निर्यात को बढ़ावा प्रदान करें
- विदेशी संस्थाृगत पूँजी को बढ़ावा देना
- सुधारात्म्क कर व्यीवस्थो लागू करना
- श्रम कानूनों को उद्योगपतियों एवं श्रमिकों के सामंजस्यी के रूप में लागू करना
- बैंकिग क्षेत्र का और अधिक विस्ता र कर अधिक से अधिक लोगों को जोड़ना

ग्रामीण एवं सामाजिक विकास से संबंधित सभी कार्यक्रमों को एकीकृत करके उन्हें स्थान्नीय आवश्यसकता और साधनों के आधार पर विकेन्द्री कृत व्यमवस्थार के अन्तर्गत पंचायती संस्थारओं द्वारा प्रभावी रूप में सफल बनाना होगा।

इन उपायों के अतिरिक्तन भूमि का पुनर्वितरणए औद्योगिक एकाधिकार की समापितए सार्वजनिक उद्यमों का कुशल एवं लोकतांत्रिक रूप में संचालन प्रबन्ध्न करनाए राष्ट्री य उपव्यकय में कमीए सामाजिकएवं ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के व्यपय में वृद्धिए ऊँचे रक्षा व्यिय में कमी आदि कार्यक्रमों को ही लागू कर हम 21वीं शताब्दी की चुनौतियों को पूरा करने एवं गरीबी को कम करने में सहभागी कर सकते है।

5.9 गरीबी निवारण की रणनीति का आलोचनात्मक मूल्यांकन

भारतीय योजनाकारों की आरम्भ से ही यह धारणा थी कि आर्थिक विकास प्रक्रिया के द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी जिसका प्रभाव रिसाव द्वारा नीचे तक स्वंय ही पहुँच जायेगा। जिसके साथ प्रगितिशील करारोपण तथा सार्वजनिक व्यय का कल्याणकारी स्वरूप गरीबी में कमी लायेगा। परन्तु गरीबी निवारण की ष्ह धारणा सफल न हो सकी। इस सन्दर्भ में गरीबी निवारण कार्यक्रम का पूरा ध्यान अतिरिक्त आय के सृजन पर केन्द्रित रहा है। परिवार कल्याण, पैष्टिक आहार, सामाजिक सुरक्षा तथा न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की ओर ध्यान नहीं दिया गया है।इन कार्यक्रमों में अपाहिज, बीमार तथा उत्पादक रूप से काम करने के अयोग्य लोगों के लिए कुछ नहीं किया गया है।जनसंख्या के लगातार छोटा होता जा रहा है, स्वरोजगार उद्यमों पर या मजदूरों के रोजगार कार्यक्रमों पर निर्भरता सही नहीं है।

वर्ष 1965-66 के बाद नई कृषि क्रान्ति के आने से गुणात्मक परिवर्तन हुआ। अब कृषि उत्पादन में वृद्धि और अधिक भूमि के कारण नहीं बल्कि गहन खेती के कारण होने लगी। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था में ऐसे परिर्वतन हुए जो गरीबों के लिए हितकर नहीं थे। जैसे मशीनों द्वारा श्रम का प्रतिस्थापन फलस्वरूप रोजगार के अवसर नहीं बढ़ सके। बड़े भूस्वामियों ने छोटे-छोटे काश्तकारों से बटाँई खेती लेकर स्वय कृषि कार्य करना शुरू कर दिया। बड़े कृषकों की आय बढ़ने एवं मँहगी कृषि

आगत से साधन-विहीन सीमांत व छोटे कृषकों की आय घटने से स्थानीय दस्तकारों व कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुओं की माँग गिरी और लोग ज्यादा गरीब हो गए।

जबकि आवश्यकता इस बात पर ध्यान देने की है कि गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे विभिन्न लोगों के आय स्तरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है।

अभ्यास प्रश्न 2

1.गरीबी का परिमाण से क्या आशय है।

2.भारत में गरीबी के परिमाण का अनुमान किस विधि से करते है।

3.सापेक्ष एवे निरपेक्ष गरीबी किसे कहते है?

4.राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना अधिनियम की प्रमुख दो विशेषता बताइए।

5.10 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी है। 1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ तो उसे विरासत में मिली एक पंगु अर्थव्यवस्था जिसमें गरीबी की जड़े बरगद के वृक्ष के समान पनप चुकी थी। अर्थव्यवस्था को गरीबी के जाल से निकाला जाय तथा देश में तीव्र तथा आत्मनिर्भर आर्थिक विकास लाया जाए नियोजन काल में मिश्रित आर्थिक प्रणाली को चुना।गरीबी की माप के लिए सामान्यतः दो प्रतिमानों सापेक्षित प्रतिमान और निरपेक्ष प्रतिमान का प्रयोग किया जाता है।7वें वित्त आयोग ने एक नयी वर्द्धित गरीबी रेखा की अवधारणा की संकल्पना का प्रतिपादन किया।योजना आयोग द्वारा गरीबी रेखा निर्धारण के सम्बन्ध एक वैकल्पिक परिभाषा स्वीकार की जिसमें आहार सम्बन्धी जरुरतों को ध्यान में रखा गया है। इस अवधारणा के अनुसार जिनको ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्र में 2100 कैलोरी प्रतिदिन के हिसाब से पोषक शक्ति नहीं प्राप्त होती है उनको गरीबी रेखा से नीचे माना जाता है। गरीबी को समाप्त करने के लिए सरकार अनेक गरीबी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए है जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न् ा योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर

करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या गरीबी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

5.11 शब्दावली

बी0पी0एल0- गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगो को कहते है।

गरीबी का दुश्चक्र- अल्प विकसित देशों के आर्थिक विकास में व्यवधान डालने वाली उन समस्यओं एवं बाधाओं से है जो इन देशों के गरीबी के 'कारण व परिणाम के रूप में' वृत्ताकार आकार में घटित होती रहती है।

प्रति व्यक्ति आय - राष्ट्रीय आय में कुल जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति आय प्राप्त होती है।

मानव विकास सूचकांक - विकास के तुलनात्मक अध्ययन हेतु मानव विकास रिपोर्ट में संयुक्त राष्ट्र के विकास कार्यक्रम द्वारा (यू.एन.डी.पी.) द्वारा मानव विकास सूचकांक का निर्माण किया गया। इस सूचकांक को जीवन प्रत्याशा, शैक्षिक योग्यता तथा क्रय शक्ति आधारित प्रति व्यक्ति आय को शामिल करके निर्मित किया गया है एवं वर्तमान समय में यह विकास का महत्वपूर्ण पैमाना है।

महिला सशक्तिकरण - महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं यके आर्थिक सामाजिक उत्थान के साथ-साथ राजनैतिक चेतना के ऐसे विकास है जहां महिला समाज के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता तथा समाना पूर्वक योगदान कर सके एवं प्रत्येक स्तर पर निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी निभा सके।

ग्रामीण विकास - ग्रामीण स्तर पर सभी को बुनियादी सुविधायें उपलब्ध कराते हुये ग्रामीण जीवन स्तर सुधार करने की प्रक्रिया को ग्रामीण विकास कहते है।

क्रय शक्ति - खरीदने की क्षमता को कहते है।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1. 39.6 2. प्रो0 सुरेश तेन्दुलकर 3. दो प्रतिमानों 4.1999 5. योजना आयोग 6.औद्योगिक श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 7. कृषि श्रमिको के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक 8. निरपेक्ष

5.13 संदर्भ ग्रन्थ

1. आहूजा,राम(2010),सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन,नई दिल्ली।पृ030–70
2. वर्मा,रामनाथ एवं शर्मा,राजेन्द्र कुमार(2010),भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें,एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लिमिटेड नई दिल्ली। पृ0241–253
3. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0, नई दिल्ली।
4. लाल एस.एन. एवं एस.के. लाल (2010) भारतीय अर्थ व्यवस्था - सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिवम् पब्लिशर्स, इलाहाबाद।
5. Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.
6. Datt Ruddar (1997) Economic Reforms in India (A Unit).
7. Kapila, Uma (2008-09), Indian Economy,Academic Foundation
8. Mishra, S.K. and V.K. Puri (2010) Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House.

5.14 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

- अर्थव्यवस्था अवलोकन (मई 2011), धनकड़ पब्लिकेशंस, मेरठ
- कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
- योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

5.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. भारत में गरीबी की समस्या का स्वरूप है? नियोजन काल में लागू किए गये प्रमुख कार्यक्रमों के आधार पर विश्लेषण कीजिए।
2. गरीबी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

3. गरीबी किसी भी समाज के लिए अभिशाप है?इस समस्या को हल करने के लिए आप नियोजन में परिवर्तन हेतु क्या सुझाव देगें।
4. किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?इसे कैसे दूर कर सकते है।
5 .किसी देश के अविकसित रहने के लिए गरीबी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।

इकाई 6

बेरोजगारी
Unemployment

इकाई की संरचना

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 बेरोजगारी की अवधारणा

6.3 बेरोजगारी के प्रकार

6.4 बेरोजगारी के कारण

6.5 बेरोजगारी के परिणाम

6.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी के आकार का विश्लेषण

6.7 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव

6.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम

6.9 संराश

6.10 शब्दावली

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.13 सहायक/उपयोग पाठ्य सामग्री

6.14 निबन्धात्मक प्रश्न

6.0 *उद्देश्य*

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ❖ बेरोजगारी आशय परिदृश्य एवं परिमाण को जान सकेंगें ।
- ❖ भारत एवं राज्यों के सम्बन्ध में बेरोजगारी के परिदृश्य का वर्णन कर सकेंगे।
- ❖ भारत बेरोजगारी के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों का वर्णन कर सकेंगे।

- ❖ सरकार द्धारा बेरोजगारी निवारण के लिए अपनायी गई नीतियों एवं कार्यक्रमों को जान सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

भारतीय सामाजिक समस्या पाठयक्रम से सम्बन्धित यह आठवी इकाई है। इससे पहले की इकाइयों में आप भारतीय सामाजिक समस्या के अत्यंत महत्वपूर्ण कारक गरीबी पर जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

कोई भी देश जो विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्वादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप बेरोजगारी को सामान्य दृष्टि से समझा सकेंगे। आप यह भी समझा सकेंगे कि बेरोजगारी का क्या आशय, उसके कारण, इसके प्रमुख प्रकार एवं इसके दोष और बेरोजगारी निवारण की नीति का विश्लेषण कर सकेगें। आप इससे जुड़ी नीतियों एवं कार्यक्रमों को भी जान सकेंगे।

6.2 बेरोजगारी का आशय

कोई भी देश चाहे विकसित हो अथवा अल्प विकसित बेरोजगारी एक सामान्य बात है। बेरोजगारी कुशल एवं अकुशल दोनो श्रेणी के श्रमिकों के मध्य पाई जाती है। आर्थिक दृष्टि से देखे तो यह उत्पादन के एक महत्वपूर्ण संसाधन की बर्वादी है। बेराजगारी ऐसी स्थिति का निर्माण करती है जहाँ व्यक्ति का सर्वाधिक नैतिक पतन हो जाता है।

बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है जिसकी जड़ गहरी पहुंच चुकी है। आज इसका स्परूप दीर्धता की ओर बढ़ता चला जा रहा है। भारत में ही बेकारी नहीं अपितु बेकारी की समस्या विश्वव्यापी है। सामान्यतया जब एक व्यक्ति को अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई कार्य नहीं मिलता है तो उस व्यक्ति को बेरोजगार और इस समस्या को बेराजगारी कहते है। दूसरे शब्दों में जब कोई व्यक्ति कार्य करने का इच्छुक है और वह शारीरिक रुप से कार्य करने में समर्थ भी है लेकिन कोई कार्य नहीं मिलता जिससे की वह अपनी जीविका का निर्वाहन कर सके तो इस प्रकार की समस्या बेरोजगारी की

समस्या कहलाती है। हम बेरोजगार जनसंख्या के उस बढ़े भाग को नहीं कहते हैं जो काम के लिए नहीं मिलते जैसे विधार्थी बढ़े उम्र के व्यक्ति घरेलू कार्यो में लगी महिलायें आदि। जैसा **प्रो0 पीगू** ने कहा है **"एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता है। जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो।"**

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के मुताबिक बेरोजगार शब्द में वे सब व्यक्ति शामिल किये जाने चाहिये जो एक दिये हुए दिन में काम की तलाश में और रोजगार में नहीं लगे हुए हैं किन्तु यदि कोई रोजगार दिया जाय तो काम में लग सकतें है।

समस्या को परिभाषित करने के लिए यह आवश्यक है कि आवश्यकता और साधन के बारे में विस्तृत विवेचन किया जाये। **बेरोजगारी के सन्दर्भ में जब हम दृश्टिपात करते है तो पाते है कि रोजगार के अवसरों और रोजगार के साधनों के संख्यात्मक मान में भी बहुत बढ़ा अन्तर है यही अन्तर बेरोजगारी चिन्तन के लिए हमें विवश करता है।**

बेरोजगारी मूलरुप से गलत आर्थिक नियोजन का परिणाम है। व्यक्ति जहां संसार में एक मुंह के साथ आता है वही श्रम हेतु दो हाथ भी लाता है। जब तक इन हाथों को श्रम के साधन प्राप्त नहीं होते तब तक अर्थव्यवस्था को पूर्ण नियोजित अर्थव्यवस्था नहीं माना जा सकता है।

गाँधी जी का इस संन्दर्भ में विचार सम्पत्ति व्यक्तिगत नहीं होनी चाहिए उत्पत्ति के साधनों पर नियंत्रण होना चाहिए समाज में उपस्थित विभिन्न आर्थिक तत्व को नियोजित ढ़ंग से कुटीर और लघु उद्योगो को प्रश्रय देना चाहिए।

एक बेरोजगार व्यक्ति वह है जिसमें कमाने की अन्तर्निहित क्षमता और इच्छा दोनों है फिर भी उसे वैतनिक काम नहीं मिल पाता।

बेरोजगारी के तीन तत्व है :

1) व्यक्ति में काम करने की क्षमता होनी चाहिए
2) व्यक्ति में कामन की इच्छा होनी चाहिए
3) व्यक्ति को काम ढूँढ़ने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

6.3 बेरोजगारी के प्रकार

भारत में बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं, जो निम्नवत है –

- **प्रच्छन्न बेरोजगारी,** बेरोजगारी का वह स्वरूप है जो प्रत्यक्ष रूप में दिखायी नहीं देता और छुपा रहता है भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी कृषि में पायी जाती हैं। जिसमें आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे हुए हैं। यदि इनमें से कुछ व्यक्तियों को खेती के कार्यों से अलग कर दिया जाता है तो उत्पादन में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं। इसका अर्थ यही है कि इस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा उत्पादन में कोई योगदान नहीं दिया जाता है। ऐसे व्यक्ति प्रच्छन्न बेरोजगारी के अर्न्तगत आते हैं।

- जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार कार्य नहीं मिलता है या पूरा कार्य नहीं मिलता है। तो इसे **अल्प रोजगार** कहते हैं। जैसे एक इंजीनियरिग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति लिपिक या श्रमिक के रूप में कार्य करता हैं तो इसे अल्प रोजगार कहते हैं ऐसे व्यक्ति कार्य करता हुआ दिखायी तो देता परन्तु इसकी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं होता है।

- जब व्यक्ति कार्य के योग्य है और वह कार्य करना चाहते है लेकिन उन्हें कार्य नहीं मिलता है तो ऐसी स्थिति को **खुली बेरोजगारी** कहते है। भारत में इस प्रकार की बेरोजगारी व्याप्त है यहाँ लाखों व्यक्ति ऐसे है जो शिक्षित है तकनीकी योग्यता प्राप्त है लेकिन उनको काम करने का अवसर नहीं मिल रहा हैं।

- **मौसमी बेरोजगारी** इस प्रकार की बेरोजगारी वर्ष के कुछ समय में ही होती है भारत में यह कृषि में पायी जाती हैं। जब खेती की जुताई एवं बुआई का मौसम होता है तो कृषि उद्योग में दिन रात कार्य होता है। इसी प्रकार जब कटाई का समय होता है तो फिर कृषि में कार्य होता है। लेकिन बीच के समय में इतना काम नहीं होता है। अत; इस प्रकार के समय में श्रमिकों को काम नहीं मिलता है। इस बेरोजगारी को **मौसमी बेरोजगारी** कहते है।

- शिक्षित बेरोजगारी खुली बेरोजगारी का ही एक रूप है। इसमें शिक्षित व्यक्ति बेरोजगार होते हैं। शिक्षित बेरोजगारी में कुछ व्यक्ति अल्प रोजगार की स्थिति

में होते है। जिन्हें रोजगार मिला हुआ होता है लेकिन वह उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं होता है। भारत में भी इस प्रकार की बेरोजगारी भी पायी जाती है।

बेरोजगारी का स्वरूप देश के शहरी तथा ग्रामीण दोनो क्षेत्रो में विद्यमान है। शहरी बेरोजगारी दो प्रकार की है प्रथम शिक्षित लोगो की बेरोजगारी तथा द्वितीय औद्योगिक मजदूरों और शारीरिक श्रम करने वाले लोगो की बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी मुख्य रुप से तीन प्रकार की है प्रथम मौसमी बेरोजगारी, द्वितीय प्रच्छन्न या छिपी हुई बेरोजगारी और तृतीय प्रत्यक्ष बेरोजगारी।

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के तीन परिकल्पनाएँ की जाती है–

- **चिरकालिक बेरोजगारी या सामान्य स्थिति** : यह बेरोजगार व्यक्तियो की संख्या के रुप में माप है जो पूरे वर्ष के दौरान बेरोजगार हो। इसी कारण इस बेरोजगारी को खुली बेरोजगारी के रुप में जाना जाता है।
- **साप्ताहिक स्थिति बेरोजगारी** : इसे भी व्यक्तियों की संख्या के आधार पर मापन किया जाता है अर्थात ऐसे व्यक्ति जिन्हे सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान एक घंटे का भी रोजगार नहीं मिला हो।
- **दैनिक स्थिति बेरोजगारी** : इसे व्यक्ति दिनों या व्यक्ति वर्षो के रुप में मापन करते है। अर्थात वे व्यक्ति जिन्हें सर्वेक्षण सप्ताह के दौरान या एक दिन या कुछ दिन रोजगार प्राप्त न हुआ हो। यह बेरोजगारी की व्यापक माप है। जिसमें सामान्य स्थिति बेरोजगारी और अल्परोजगार दोनो शामिल होते है।

6.4 बेरोजगारी के कारण

देश में बेरोजगारी के लिए बहुत से कारण जिम्मेंवार होते है इन्हें हम आन्तरिक और बाहरी कारणों में बाँट सकते आन्तरिक कारण श्रमिकों के स्वभाव, शारीरिक, मानसिक व नैतिक कमियों से सम्बन्धित होते है। प्राय; एक व्यक्ति अपनी इच्छा के बावजूद अपनी शारीरिक मानसिक कमजोरियों दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण काम पाने में असमर्थ रहता है। इन परिस्थितियों में बेरोजगारी आन्तरिक कारणों का नतीजा होती है। बेरोजगारी के बाहरी कारण भी बहुत से होते हैं। श्रम बाजार में चक्रीय उतार चढ़ाव

हो रहा है। मंदी के दिनों में व्यावसायिक क्रियायें एक न्यूनतम स्तर पर होती है और बेरोजगारी बढ़ती है। किन्तु दूसरी ओर तेजी के दौरान व्यावसायिक क्रियाओं का विस्तार होता है और इस समय बेकारी की मात्रा घटने लगती हैं। मंदी और तेजी की ऐसी अवधियॉ विभिन्न कारणों से होती है जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्धारा स्पष्ट किया जाता हैं। उद्योग में विवेकीकरण की योजनाओं को अपनाया जाना बेरोजगारी को उत्पन्न करता है। इसके अलावा कुछ व्यवसाय व आर्थिक क्रियायें स्वभाव से मौसमी होती है। जैसे बिल्डिंग निर्माण या कृषि। अन्त में आकस्मिक श्रम पद्धति भी जिसके अर्न्तगत श्रमिकों को कुछ कार्यों पर सिर्फ व्यवसायिक व्यवस्था के समय ही स्थाई रूप में लगाया जाता है दूसरे समय ऐसे श्रमिकों के लिए बेकारी पैदा कर दी जाती है।

मोटे तौर से बेरोजगारी के कारणों की व्याख्या के संबंन्ध में तीन सैद्धान्तिक विचारधाराएँ पायी जाती है।

1. पहली विचारधारा के मुताबिक बेकारी निर्बाध सिद्धान्त अर्थात स्वतंत्र प्रतियोगिता तथा स्वतंत्र व्यापार से डिग जाने का दण्ड होती है।
2. दूसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी व्यापार चक्रों के कारणों की जटिलताओं के कारण पैदा होती है.। इसे चक्रीये बेकारी के रूप में देखा जाता है।
3. तीसरी विचारधारा के मुताबिक बेकारी प्रभावी मांग की कमी उपभोग पर किये जाने वाले पूँजीगत व्यय की कमी या निवेश की कमी या दोनों ही के कारण पैदा होती है।

बेरोजगारी के दोष बहुत अधिक है। राष्ट्र के लिए बेरोजगारी समस्या एक गम्भीर समस्या है क्योंकि खाली मस्तिष्क शैतान का घर हैं। काल मार्क्स के मुताबिक कार्य मानवीय अस्तित्व के लिए मूल शर्त है। व्यापक बेरोजगारी एक ऐसी बुराई है जो गम्भीर आर्थिक सामाजिक एवं राजनैतिक खतरों से भरी है। तकलीफ निराशा और असंतोष पैदा करके बेरोजगारी राजनीति और सामाजिक जीवन को कडुवा बनाती है तथा सुरक्षा को ठेस पहुंचाती है। पेट की आग को बुझाने के लिए व्यक्ति कुछ भी कार्य कर सकता है। यदि उनको सही रूप से व्यवसाय नहीं मिलेगा जिससे वह अपने अनुकूल जीवन यापन कर सके तो निश्चित रूप से ही वह गलत कार्यों को करने के लिए प्रेरित होगें जिन्हें करना वह स्वंय भी उचित नहीं समझते किन्तु करना पड़ता है क्योंकि मरता क्या न करता।

बेरोजगारी से व्यक्ति में यह भावना आती है कि वह समाज के लिए गैर जरूरी है। वह परिवार में अपने को बोझ समझने लगता है। इसी कारण से वह अपराधी तक बन सकता है। किसी देश में निष्क्रिय मानव व्यक्ति का मतलब उत्पादन एवं आय का उस स्तर से नीचा होना है जिस पर कि वे सभी श्रमिकों को काम पर नहीं लगा सकते है। मानवीय दृष्टिकोण से इस बेरोजगारी का गम्भीर परिणाम व्यक्ति का स्वंय का नुकसान है। इसमें धीरे–धीरे व्यक्ति की कार्य क्षमता ह्रास होता है। उसकी इस शक्ति को यदि उचित रूप में काम में लिया जाये तो यह राष्ट्र के लिए उन्नति समृद्धि एवं सम्पन्नता का साधन बन सकती है।

जिस देश में बेरोजगारी होती है उस देश में नयी–नयी सामाजिक समस्यायें जैसे चोरी, डकैती, बेईमानी, अनैतिकता, शराबखोरी, जुआ–बाजी आदि पैदा हो जाती है। जिससे सामाजिक सुरक्षा को खतरा पैदा हो जाता है शांति और सुरक्षा की समस्या उत्पन्न हो जाती है जिस पर सरकार को भारी व्यय करना पड़ता है। वर्तमान आतंकवाद की समस्या भी मेंरी समझ में किसी न किसी रूप में बेरोजगारी का ही एक परिणाम है।

बेरोजगारी की समस्या देश में राजनीतिक अस्थिरता पैदा करती है। क्योंकि बेकार व्यक्ति हर समय राजनीति उखाड़–पछाड़ में लगे रहते हैं। आज राजनीति से जुड़े हुए बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो किसी न किसी रूप में समाज में अपराधी रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी योग्यता के आधार पर नहीं बल्कि दबाव और शक्ति से कानून को अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

देश में व्याप्त दीर्घस्थायी बेरोजगारी और अल्प–रोजगार की समस्या के लिए निम्न घटक उत्तरदायी है–

जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि दर फलस्वरूप श्रम शक्ति में तीव्र वृद्धि दर– जनांकिकीय दृष्टि से हम इतनी तेजी से आगे बढ़ रहे है कि प्रगति और परिवर्तनों के बावजूद हम आर्थिक दृश्टि से ठहरे हुए जान पड़ते है। नियोजन काल में राज्य की जनसंख्या तथा इसके फलस्वरूप श्रम–शक्ति कई गुना बढ गयी है। बढ़ती हुई श्रम–शक्ति के लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर उपलब्ध न कराये जाने के कारण बेराजगारी की मात्रा बढ़ती गई है।

अनुप्रयुक्त शिक्षा प्रणाली एवं कार्य के प्रति संकुचित दृष्टिकोण– देश में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के कारण शिक्षित युवक नौकरी पाने की इच्छा रखते हुए भी शारीरिक श्रम वाले रोजगार से दूर भागते है। सरकार अभी तक शिक्षा प्रणाली को आर्थिक

विकास की आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं ढाल सकी है परिणामस्वरूप करोड़ों शिक्षित युवक और युवतियां रोजगार की तालाश में घूमते–फिर रहे है।

कुटीर उद्योगों का पतन– श्रम गहन होने के कारण इन उद्योगों का रोजगार की दृष्टि से विशेष महत्व है। आर्थिक नियोजन के अन्तर्गत पूंजी गहन बड़े उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिये जाने के कारण कुटीर और लघु उद्योगों का वांछनीय विकास नहीं हो पाया है। फलतः राज्य में गरीबी और बेरोजगारी की समस्या निरन्तर गम्भीर होती चली गई है।

कृषि की मानसून पर अधिक निर्भरता एवं सिचाई साधनों का अभाव – निर्धनता के उन्मूलन, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में स्थायित्व तथा घरेलू बाजार के विस्तार की दृश्टि से कृषि के महत्व को जानते हुए तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार की आवश्यकता बार–बार स्वीकार करते हुए भी नियोजन काल में कृषि क्षेत्र को कुल निवेश योग्य साधनों में से उचित हिस्सा नहीं दिया गया है। फलतः गांवों से शहरों की ओर श्रम शक्ति के पलायन की प्रवृत्ति जोर पकड़ती गई तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या गहन होती चली गई।

उत्पादन साधनों का असमान वितरण – भूमि और पूंजी जैसे उत्पादन साधनों का अत्यधिक असमान वितरण, आर्थिक विषमता और बेरोजगारी की समस्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से उत्तरादायी है। 20 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या खेतिहर श्रमिकों के रूप में निर्धनता, शोषण, कुपोषण और अल्प रोजगार से ग्रस्त है। उत्तराखण्ड में 70 प्रतिशत किसानों की जोतें अनार्थिक आकार (एक हेक्टेयर से कम) की हैं जिन्हें सम्पूर्ण वर्ष में 5–6 महीने निष्क्रिय रहना पड़ता है। दूसरी ओर बहुत थोड़ी पूंजी वाले इस राज्य में उपलब्ध पूंजी गिने–चुने हाथों में केन्द्रित है। साधन सम्पन्न व्यक्तियों की स्वार्थी प्रवृत्ति के कारण विभिन्न व्यवसायों में श्रम की बचत करने वाल गहन तकनीक का उपयोग किया जा रहा है।

अविकसित सामाजिक दशाएं– देश की दोषपूर्ण सामाजिक संस्थाएं (जाति–प्रथा, संयुक्त परिवार प्रणाली, छुआछूत, बाल–विवाह, प्रदा पर्था आदि) बेरोजगारी की समस्या को उग्र बनाने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहायक हुई है। जनसाधारण की निरक्षरता, अन्धविश्वास और भाग्यवादिता ने भी युवकों को निष्क्रिय बनाये रखने में सहयोग दिया है। श्रम शक्ति का असन्तुलित व्यावसायिक वितरण, व्यावसायिक शिक्षण एवं शिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता, श्रम शक्ति में गतिशीलता का अभाव आदि कारणों ने भी बेरोजगारी और बेरोजगार की समस्या को गम्भीर बना दिया है।

पर्याप्त तकनीकी प्रशिक्षण सुविधाओं का अभाव – आज अधिकांश शिक्षा ऐसी दी जाती है कि केवल सैद्धान्तिक ज्ञान तक ही सीमित है और जिसका जीवन में अधिक उपयोग नहीं है। बी0ए0, एम0ए0 करने के बाद भी लड़को को यह भी पता नही हो पता है कि अब उसे क्या करना है। तकनीकी शिक्षा के पूर्ण अभाव के कारण वह अपना कोई छोटा–मोटा व्यवसाय भी नहीं कर सकता।

पूंजी निर्माण की धीमी गति – बेरोजगारी में वृद्धि होने के कारण प्रतिव्यक्ति आय बहुत कम होती जा रही है, परिणामस्वरूप बचत एवं विनियोग की दर में भी कमी हो रही है। इससे पूंजी निर्माण की गति बहुत धीमी हो गयी है जिसका प्रभाव उद्योग, व्यापार एवं अन्य सेवाओं पर पड़ रहा है और उनका विस्तार नही हो पा रहा है। इस चक्र के प्रभाव से बेरोजगारी की संख्या में और अधिक वृद्धि हो रही है।

स्वरोजगार के प्रति उपेक्षा – देश में शिक्षित बेरोजगारी बढ़ने के मूल में यह कारण निहित है कि प्रत्येक युवा अपनी शिक्षा समाप्त करने के बाद नौकरी की तालाश में जुट जाता है। उसमें स्वयं का व्यवसाय करने की भावना का अभाव रहता है, परिणामस्वरूप बेरोजगारों की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है।

अन्य कारण– बड़ी संख्या में शरणार्थी आगमन, समयबद्ध रोजगार नीति एवं कार्यक्रमों का अभाव, लघु एवं कुटीर उद्योगों का पतन और उनके पुर्नविकास की धीमी गति और आर्थिक सुधारों नीतियों का रोजगार पर प्रतिकूल प्रभाव।

बेरोजगारी के खराब असर बराबर बढ़ते जा रहे हैं। इसीलिए **विलयम बेवरिज ने लिखा है कि बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकार वापस भरने के लिए नियुक्त करना ज्यादा अच्छा है।**

सार रुप में हमारे देश की बेरोजगारी का कारण उसकी संरचनात्मक अवस्था में निहित है। जो कृषि के अल्प विकास उद्योगो का असंतुलित विकास सेवा क्षेत्र के संकुचित आकार के श्रम की माँग में है जो और रोजगार के अवसर सीमित कर देते है। लोग विद्यमान मजदूरी दर पर कार्य करने को तत्पर है परन्तु फिर भी कार्य की अनुउपलब्धता के कारण वह बेरोजगार है।

6.5 बेरोजगारी के परिणाम

बेरोजगारी उस बेरोजगार व्यक्ति के साथ उसके परिवार और समाज को प्रभावित करती है। इस प्रकार हम बेरोजगारी के परिणाम को वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन और सामाजिक विघटन के रूप में देखते है।

वैयक्तिक विघटन -:

एक बेरोजगार व्यक्ति के अन्दर वैयक्तिक विघटन को हम बहुत ही सरलता से देख सकते है। बेरोजगार व्यक्ति का मोहभंग हो जाता है, वह अपनी रचनात्मक ऊर्जा को चोर, डकैती, हत्सा और तस्करी जैसे कार्यों की तरफ आसानी से चले जाते है। ऐसा प्राय देखा जाता है कि असामाजिक गतिविधियां अनुशासनहीन और दुर्दान्त युवाओं को जीविका ऐंठने का अवसर प्रदान करती है।

पारिवारिक विघटन -:

बेरोजगारी व्यक्तिगत एकता को प्रभावित करती ही है, वह उसके पारिवारिक एकता को नष्ट कर देती है। बेरोजगारी में व्यक्ति जिस मानसिक अशान्ति में रहता है, वहाँ तनाव के कारण पति और उसकी पत्नी के बीच ही झगड़े न होकर, अपितु मातापिता-, साससुर-, चाचाचाची और - में बंधक ढ़ीवादी मूल्योंयहां वह और अधिक पारंपरिक और रू में भी झगड़े होने लगते है।बच्चों बनता चला जाता है।

सामाजिक विघटन -:

बेरोजगारी के परिणामस्वरूप सामाजिक विघटन का मापन अत्यन्त कठिन है। सामाजिक विघटन सामाजिक विश्वास का टूटना है, जिसमें वह अपने पुराने स्वरूप और आपसी सौहार्द को नष्ट कर देता है जिसके द्वारा एक समूह के सदस्यों के सामाजिक संबंध टूट जाते है। बेरोजगारों की गतिविधियां में विराम लग जाता है उनके विचार अत्यन्त कटु हो जाते है कि वे कार्य करने की इच्छा ही खो देते है जिसका भयंकर परिणाम उनकी दक्षता में ह्रास के रूप में परिणत होता है। :

अभ्यास प्रश्न 1

100 शब्दों में टिप्पणी लिखिए

- **बेरोजगारी से क्या आशय है?**
- **बेरोजगारी के प्रमुख प्रकार बताइए।**
- **बेरोजगारी के क्या कारण है?**
- बेरोजगारी में **वैयक्तिक विघटन के परिणाम** बताइए।

6.6 भारत में रोजगार और बेरोजगारी का विश्लेशण

देश में रोजगार और बेरोजगारी के संबध में अनुमान लगाने के लिए अधिकांशत वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार का प्रयोग किया गया है। दैनिक स्थिति पर आधारित अनुमान बेरोजगारी की समेंकित दर है जिसमें समीक्षा वर्ष के दौरान एक दिन के आधार पर बेरोजगारी का औसत स्तर का उल्लेख किया गया है। दैनिक स्थिति के आधार पर रोजगार और बेरोजगारी के अनुमान दर्शाते है जैसा कि तालिका 1 में दिया गया है कि वर्ष 1883–1883 के काल में लगभग 74.50 मिलियन कार्य

रोजगार और बेरोजगारी मिलियन मानव वर्शो में

(वर्ष 1882 से 2004–05)

(दैनिक स्थिति के आधार के अनुसार)

	मिलियन में			वृद्धि प्रतिवर्श (प्रतिशत)		
	1882	**1883–84**	**2004–05**	**1883 से 1883–84**	**1883–84 1888–00**	**1888–00 2004–05**
जनसंख्या	718.10	883.68	1082.83	2.11	1.88	1.68
श्रमबल	263.82	334.20	418.65	2.28	1.47	2.84
कार्यबल	238.48	313.83	384.81	2.61	1.25	2.62
बेरोजगारी दर (प्रतिशत)	8.22	6.06	8.28			
बेरोजगारो की संख्या	24.34	20.27	34.74			

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

रोजगार और बेरोजगारों की संख्या (वर्ष 1882 से 2004–05)दैनिक स्थिति के आधार पर

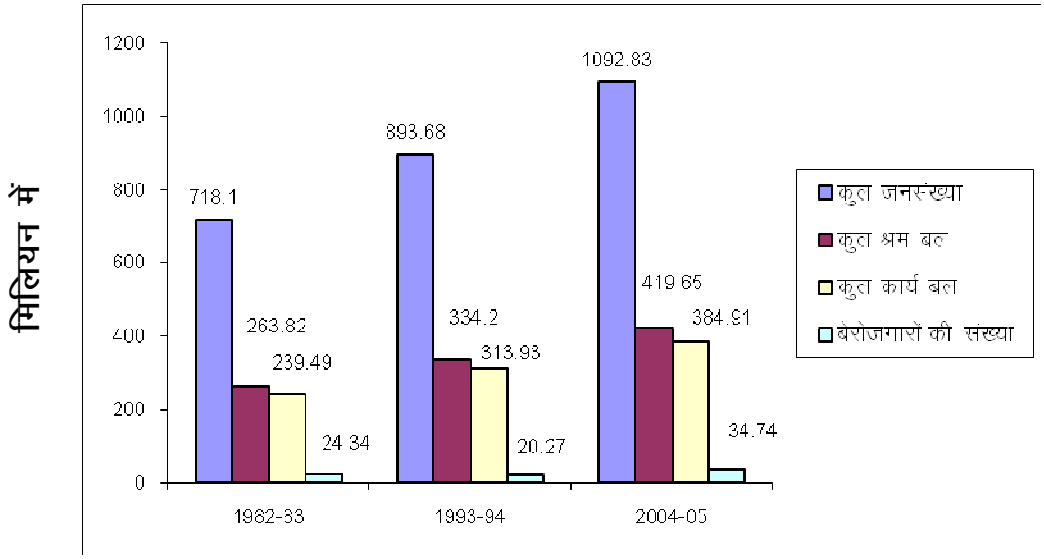

के अवसरों का सृजन हुआ वही वर्ष में 1883 से 2004–05 में लगभग 71 मिलियन कार्य के अवसरों का सृजन हुआ वह भी 1888–2000 से 2004–05 में 46 मिलियन कार्य के अवसरो का सृजन हुआ। रोजगार में वृद्धि इन्हीं वर्षो में 1.25 प्रतिशत प्रतिवर्ष से बढ़कर 2.62 प्रतिशत प्रतिवर्ष प्राप्त हुई। परन्तु बेरोजगारी दर 1883 के 8.22 प्रतिशत से गिरकर 1883–84 में 6.06 प्रतिशत हुई थी। वह 2004–05 में बढकर 8.28 प्रतिशत हो गई परन्तु बेरोजगारों की संख्या इन्हीं वर्षो में 24.34 मिलियन से गिरकर 20.27 मिलियन थी वह भी बढ़कर 34.74 मिलियन हो गई जबकि जनसंख्या वृद्धि दर 1883 से 1883–84 के दौरान 2.11 प्रतिशत से घटकर 1883–2000 में 1.88 प्रतिशत एवं 1888–2004–05 में 1.68 प्रतिशत ही रह गई।

तालिका 2 क्षेत्रीय रोजगार में हिस्सेदारी (वर्ष 1883 से 2004–05)
(वर्तमान दैनिक स्थिति के आधार पर मिलियनो में)

क्षेत्र	**1883**		**1883–84**		**2004–05**	
कृषि	65.42	207.1	61.03	238.5	52.06	258.8
खनन एवं उत्खनन	0.66	1.8	0.78	2.7	0.63	2.5
विनिर्माण	11.27	32.3	11.10	38.8	12.80	55.8

बिजली, जल आदि	0.34	0.8	0.41	1.4	0.35	1.2
निर्माण	2.56	6.8	3.63	12.1	5.57	26.0
व्यापार, होटल और रेस्तरां	6.88	18.1	8.26	28.4	12.62	48.6
परिवहन, भण्डार और संचार	2.88	7.5	3.22	10.7	4.61	18.6
वित्त, बीमा, स्थावर संपदा और कारोबारी सेवाएँ	0.78	1.88	1.08	3.8	2.00	5.2
सामुदायिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ	8.10	14.72	10.50	35.8	8.24	40.2
कुल	100.00	302.3	100.00	374.3	100.00	458.0

स्रोत : राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण एवं योजना आयोग

एक अन्य विश्लेषण तालिका 2 के आधार पर करते है कि वर्ष 1883 से पहले रोजगार में प्राथमिक क्षेत्र की जो सर्वोच्च स्थित थी वह लगातार बनी हुई है, इनके हिस्सेदारी में बहुत ही नाममात्र का परिवर्तन हुआ है कृषि क्षेत्र की हिस्सेदारी जो 1883 में 65.42 प्रतिशत थी वह 1883–84 में 61.03 प्रतिशत और आर्थिक सुधार काल में 2004–05 में 52.06 प्रतिशत पहुँच गई परन्तु इन्हीं वर्षो में संख्या 238.8 मिलियन से बढ़कर 258.8 मिलियन हो गई अर्थात हिस्सेदारी में 8.87 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 21.3 मिलियन की वृद्धि हुई। जबकि खनन एवं उत्खनन सेवाओं में आर्थिक सुधारों के काल (1883–2005) में हिस्सेदारी में 0.15 प्रतिशत और संख्या में 0.2 मिलियन की कमी हुई। इसी प्रकार बिजली जल आदि के क्षेत्र में भी 0.06 प्रतिशत के साथ 0.2 मिलियन की कमी हुई। बल्कि सामुदायिक सामाजिक एवं वैयक्तिक सेवाएँ की हिस्सेदारी 1.26 प्रतिशत की कमी के साथ संख्या में 4.3 मिलियन की वृद्धि हुई।

तालिका 3 संगठित क्षेत्र में रोजगार की वृद्धि दर (वर्ष 1883 से 2004)

	1883–1884	**1884–2004**
सार्वजनिक क्षेत्र	1.53	–0.70
निजी क्षेत्र	0.44	0.58
कुल संगठित क्षेत्र	1.20	–0.31

स्रोत : लोक उद्यम सर्वेक्षण वर्ष 2008–09

संगठित क्षेत्र के संन्दर्भ में बडा आश्चर्यजनक जानकारी तालिका 8.3 से मिलती है कि 1883 से 84 के समय में सार्वजनिक क्षेत्र की रोजगार वृद्धि दर जो 1.53 प्रतिशत वार्षिक थी वह आर्थिक सुधारो के काल में (1884–2004) ऋणात्मक रुप में 0.70

प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई अर्थात आर्थिक सुधारों के कारण सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार में कटौती हो गई। इसी प्रकार निजी क्षेत्र में 1883 से 84 के काल में 0.44 प्रतिशत वार्षिक रोजगार वृद्धि दर बढ़कर 1884–2004 के समय में 0.58 प्रतिशत वार्षिक पर पहुँच गई। जबकि सम्मिलित रुप में संगठित क्षेत्र की रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 1.20 से घटकर सुधार काल में ऋृणात्मक रुप में –0.31 प्रतिशत वार्षिक दर्ज हुई।

6.7 बेरोजगारी दूर करने के सुझाव

तेजी से बढ़ रही बेरोजगारी के प्रति अर्थशास्त्री, राजनेता, चिन्तक और विद्वान सभी चिन्तित है। बेरोजगारी की इस गम्भीर समस्या ने अनेक ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जिनका समाधान खोज पाना अत्यधिक दुश्कर हो गया है। यदि समय रहते सुरसा की भांति मुँह बाये खड़ी बेरोजगारी के समाधान की दिशा में सार्थक प्रयास नही किये जा सके तो देश एवं समाज का विघटन अवश्यम्भावी है। बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए कुछ सुझाव निम्नानुसार हैः–

तेजी से बढ़ती जनसंख्या पर नियंत्रण– बेरोजगारी की गम्भीर समस्या के हल के लिए सर्वप्रथम राज्य में तेजी से बढ़ रही जनसंख्या की गति को नियन्त्रित किया जाना अति आवश्यक है। जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण किये बिना बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव नही है।

छोटे उद्योग धन्धो का विकास– बेरोजगारी दूर करने के लिए छोटे–छोटे उद्योग धन्धों का विकास किया जाना चाहिए। इसके लिए आवश्यक यह होगा कि सरकार द्वारा बेरोजगार युवकों को अत्यधिक सुविधाजनक शर्तों पर ऋण उपलब्ध करायें जायें और बेरोजगारों द्वारा स्थापित उद्योगों के उत्पादन की बिक्री की समुचित व्यवस्था की जाये।

कृशि से सम्बद्ध उद्योगों का विकास– देश की अर्थव्यवस्था में कृषि को प्रधानता प्राप्त है किन्तु अभी भी कृषि व्यवसाय मात्र ऋतुपरक या मौसमी रोजगार उपलब्ध कराता है। वर्ष के मात्र छः–सात माह के लिए कृषक और कृषि श्रमिक के पास रोजगार की व्यवस्था रहती है। शेष समय में कृषक और श्रमिक बेरोजगार रहते है, अतः इस खाली समय के उपयोग के लिए कृषि से सम्बद्ध सहायक उद्योगों की स्थापना की जानी चाहिए; जैसे– दूध का व्यवसाय, मुर्गीपालन, पशुपालन आदि।

ग्रामों में रोजगार उन्मुख योजनाओं का क्रियान्वयन– देश में सर्वाधिक बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में है, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की सम्भावनायें भी बहुत अधिक है। सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी योजनाएं तैयार कराना चाहिए जो ग्रामीणों को

रोजगार उपलब्ध कराने में सहायाक सिद्ध हो सकें। इन योजनाओं का क्रियान्वयन भी अत्यधिक प्रभावी ढंग से किया जाना चाहिए।

रोजगार उन्मुख ि◻ाक्षा प्रणाली– देश की प्रचलित वर्तमान शिक्षा प्रणाली पूरी तरह सैद्धान्तिक है। यह शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों को रोजगार उपलब्ध कराने में सहायता नहीं करती। अतः सरकार को रोजगारोन्मुख शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि युवक स्कूल और कॉलेज की शिक्षा पूर्ण होने के बाद स्वयं का कोई व्यवसाय या रोजगार स्थापित करने में समर्थ व सक्षम हो सके।

उद्योगों की पूर्ण क्षमता का उपयोग– देश में यद्यपि उद्योग तुलनात्मक रूप से कम लगे हुए है तथा उनका पूर्ण दोहन भी नहीं हो पा रहा है और आवश्यकता इस बात की है कि सिर्फ उद्योगों की संख्या को ही न बढ़ाया जाये बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता का भी पूर्ण उपयोग होना चाहिए।

विनियोग ढ़ांचे में परिवर्तन– आधारिक संरचना को मजबूत बनाकर विनियोग को प्रेरित किया जा सकता है जिससे रोजगार में बढ़ोत्तरी होगी तथा अनिवार्य उपभोक्ता वस्तु उद्योगों का विस्तार भी होगा।

तकनीकी को प्रोत्साहन– नई तकनीकी का इस प्रकार से प्रयोग होना चाहिए जिससे रोजगार पर कोई विशेष फर्क न पड़ते हुए उत्पादन क्षमता में बढ़ोत्तरी हो।

जन◻ाक्ति नियोजन– देश में बेरोजगारी की स्थिति को देखते हुए इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि जनशक्ति का वैज्ञानिक ढंग से नियोजन होना चाहिए। जिससे जनशक्ति का गुणात्मक पक्ष मजबूत होगा और इसके लिए भौतिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा संगठनात्मक पहलुओं स्वस्थ आधारों पर विकसित किया जाये। जनशक्ति का व्यवसाय वितरण, व्यवसायिक ढ़ाचा, रोजगार की सम्भावनाओं की स्थिति तथा जन–वृद्धि में होने वाले परिवर्तन आदि के बारे में विस्तृत एंव पूर्ण सूचनायें एकत्रित की जाये।

अन्य सुझाव– भारत सरकार द्वारा गठित राष्ट्रीय श्रम ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान हेतु अनेक सुझाव दिये है; जैसे– देश में रोजगार के लिए एक राष्ट्रीय नीति सुनिश्चित की जाये, अखिल भारतीय स्तर पर मानव शक्ति सेवा का गठन किया जाये, शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये और उसे रोजगारोन्मुख बनाया जाये, औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ता प्रदान की जाये तथा देश के प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में कम से कम एक रोजगार कार्यालय की स्थापना की जाये।

उत्पादक गतिविधियों की पुर्नसंरचना द्वारा उत्पादन में वृद्धि लाकर सरकार द्वारा रोजगार सृजन की प्रक्रिया तो जारी है ही, किन्तु साथ ही सरकार प्रत्यक्ष रूप से युवाओं एवं अन्य बेरोजगारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध करवाने के लिए विशेष कार्यक्रम भी चला रही है।

6.8 बेरोजगारी को दूर करने के सरकारी कार्यक्रम

काम के बदले अनाज कार्यक्रम– 14 नवम्बर 2004 को बस कार्यक्रम को देश के 150 सर्वाधिक पिछड़े जिलों में शुरू किया गया जिसका प्रमुख उद्देश्य पूरक रोजगार सृजन करना था। यह योजना लोगों को खाद्य सुरक्षा देने से भी सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक परिवार के कम से कम एक शारीरिक रूप से समर्थ व्यक्ति को 100 दिन का रोजगार दिया जा सकेगा। यह कार्यक्रम 100 प्रतिशत केन्द्रिय प्रायोजित योजना के रूप में कार्यन्वित किया जा रहा है।

ग्रामीण रोजगार सृजन कार्यक्रम *(REGI)*– यह कार्यक्रम 1885 में ग्रामीण क्षेत्रों तथा छोटे शहरों से शुरू किया गया। यह कार्यक्रम खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है। इसके अन्तर्गत 25 लाख रुपये की लागत वाली परियोजनाओं के लिए उद्यमी खादी ग्रामेद्योग और बैंक ऋणों प्राप्त मार्जिन धन सहायता का लाभ उठाकर ग्राम स्थापित कर सकते है।

इन्दिरा आवास योजना *(IAY)*– यह एक केन्द्र प्रायोजित योजना है जिसका वित्तपोषण केन्द्र एवं राज्यों के बीच 75.25 (केन्द्र शासित प्रदेश100) के अनुपात में किया जाता है। 1888–2000 से प्रारम्भ की गयी इन्दिरा भवन आवास योजना गांवो में गरीबो के लिए मुफ्त में मकानो के निर्माण की प्रमुख योजना है।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना *(JGSY)* – इस योजना को अप्रैल 1888 से प्रारम्भ किया गया जो चली आ रही जवाहर रोजगार योजना *(JRY)* को ही पुनर्गठित तथा कारगार स्वरूप प्रदान करके किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य अधिक मांग वाले ग्रामीण आधारभूत संरचना जिसमें ग्रामीण स्तर पर टिकाउ परिसम्पत्तियाँ सम्मिलित हैं, को विकसित करना है।

रोजगार आश्वासनकार्यक्रम *(EAS)* – इस याजना का प्रारम्भ 2 अक्टूबर 1883 को सूखा प्रवण, रेगिस्तान बहुल तथा पर्वतीय क्षेत्रों के चुने गये 1772 पिछड़े ब्लाकों में

किया गया था। इसी योजना को एकल मजदूरी रोजगार कार्यक्रम के रूप में 1 अप्रैल 1888 को पुनः तैयार किया गया है।

सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना *(SGRY)* –इस योजना को पहले से चल रही जवाहर ग्रामीण समृद्धि योजना *(JGSY)* तथा एम्पलामेंट एश्योरेंस स्कीम *(EAS)* को मिलाकर 25 सितम्बर 2001 को चलाया गया। सह अपने लक्ष्य स्वयं निर्धारित करने वाली याजना है। इसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त खाद्यान सुरक्षा प्रदान करना है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाउ सामुदायिक सामाजिक तथा आर्थिक अवस्थापना सृजित करना है।

शहरी रोजगार एवं गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम– शिक्षित बेरोजगारों को स्वरोजगार प्रदान करने के लिए प्रधानमंत्री रोजगार योजना *(PMRY)* को 1883–84 में शहरी क्षेत्रों में चलाया गया।

स्वर्ण जयन्ती शहरी रोजगार योजना *(SJSRY)* –यह योजना दिसम्बर 1887 में लागू हुई जिसमें तीन शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों–नेहरू रोजगार *(NRY)*, शहरी गरीबों के लिए बुनियादी सेवाये योजना *(UBSP)* तथा प्रधानमंत्री एकीकृत शहरी गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम *(PMIUPEP)* को एक में मिला दिया गया । इसका उद्देश्य स्वरोजगार उद्यमों की स्थापना को प्रोत्साहन देना या मजदूरी रोजगार के सृजन के द्वारा गरीबी रेखा के नीचे नवीं दर्जा तक शिक्षित शहरी बेरोजगारों या अर्धरोजगारों को रोजगार प्रदान करना है।

स्वशक्ति प्रोजेक्टर– यह प्रोजेक्टर अक्टूबर 1888 में ग्रामीण महिला विकास तथा सशक्तिकरण प्रोजेक्टर के रूप में केन्द्र द्वारा बिहार, छत्तीसगढ़, गुजरात, हरियाणा, झारखण्ड, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश में चलाया गया। यह प्रोजेक्टर वर्ल्ड बैंक तथा इन्टरनेशनल फण्ड फार एग्रीकल्चरल डेवेलपमेण्ट द्वारा संयुक्त रूप से प्राप्त सहायता से चल रही है।

इन्दिरा महिला योजना *(IMY)*'का उद्देश्य महिलाओं की अधिकारिता प्रदान करना है।इस योजना को 1885–86 के दौरान 200 विकास खण्डों में चलाया गया था। योजना आयोग के एक अध्ययन दल की संस्तुति पर आई0 एम0 वाई0 को पुर्नगठित करके इसकी कमियो को दूर करके संशोधित रूप में अनुमोदित कर दिया गया है। महिला समृद्धि योजना को आई0 एम0 वाई0 के साथ जोड़ दिया गया है।

बालिका समृद्धि योजना *(BSY)* को 1887 में बालिकाओं के प्रति समाज के दृष्टिकोण में परिर्वतन लाने के विशेष उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया था।

एकिकृत बाल विकास तथा सेवा स्कीम *(ICDS)*-1875 में शुरू इस स्कीम का उद्देश्य 6 वर्ष तक के उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं और स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एकीकृत पैकेज प्रदान करना है, आँगन वाड़ी, भवनो, सीडीपीओ कार्यलयों एवं गोदामों के निर्माण के लिए ऋण प्रदान करना है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना *(PMGY)* जिसका प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण लोगों की आवश्यक आवश्यकताओं *(critical needs)* को निर्धारित समयावधि में पूरा करना है।

प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना– 25 दिसम्बर, 2000 को लागू की गयी। 60 हजार करोड़ रुपये की इस योजना का उद्देश्य 500 से अधिक जनसंख्या वाले गांवों को 2007 तक हर मौसमी सड़क से जोड़ना है। यह एक 100 प्रतिशत केन्द्र प्रायोजित योजना है। इसका वित्तपोषण डीजल पर उपकर से होता है।

अन्नपूर्णा योजना– 1888–2000 की बजट में घोशित अन्नपूर्णा योजना का आरम्भ गाजियाबाद के सिखोड़ा ग्राम से हुआ। ज्ञातव्य है कि इस योजना को उद्देश्य देश के अत्यन्त निर्धन लागों के रोटी की व्यवस्था करनी है।

शिक्षा सहयोग योजना– यह योजना 1 अप्रैल 2001 से लागू, 2001–02 के बजट में प्रस्तावित योजना है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे के बच्चों के माता–पिता को 100 रुपये प्रतिमाह शैक्षिक भत्ता प्रदान किया जायेगा जिससे वे 8 से 12 वीं कक्षा तक की शिक्षा के व्यय को पूरा कर सके।

अन्तोदय अन्न योजना– यह योजना दिसम्बर 2000 में चालू की गयी। इसके तहत लक्ष्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत पहचान किये गये बी.पी. एल. परिवारों में से 1 करोड़ निर्धनतम परिवारों को चुना जाता है। शुरू में इसके अन्तर्गत प्रत्येक अर्ह परिवारों को 25 किलोग्राम अन्न 2 रुपया प्रति किलो गेहूं तथा 3 रुपया प्रति किलों ग्राम चावल दिया जाता था। अप्रैल 2002 से 25 किलोग्राम को बड़ाकर 35 किलो ग्राम कर दिया गया।

दीन दयाल स्वालम्बन योजना– केन्द्रीय युवा मामलें व खेल मंत्रालय द्वारा ग्रामीण युवकों को स्वयं सहायता समूहों के रूप में संगठित कर उनमें स्वरोजगार के जरिये आय अर्जित करने के लिए क्रियान्वित।

प्रधानमन्त्री आद□र्श ग्राम योजना– 2008–10 बजट में प्रस्तावित नयी योजना है जो उन 44000 गांवों के समन्वित विकास से सम्बन्धित है जिनकी जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 50प्रतिशत से अधिक है।

प्राइम मिनिस्टर एम्प्ल्वायमेंट जनरे□ान प्रोग्रैम *(PMEGP)*–15 अगस्त 2008 से प्रारम्भ प्रधानमंत्री रोजगार सृजन कार्यक्रम *(PMEGP)* अपने ढंग का एक नया प्रयास है जिसका प्रमुख उद्देश्य सब्सिडि पर कराये गये ऋण के माध्यम से शहरी तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में माइक्रो इन्टरप्राइज़ेज़ की स्थापना के द्वारा रोजगार के अवसर सृजित करना है। पहले से चली आ रही दो रोजगार योजनाओं *PMRY* तथा *REGP* को इसमें मिला दिया गया है।

राश्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा फण्ड– असंगठित क्षेत्रीय कामगारों सामाजिक सुरक्षा अधिनियम 2008 के अनुपालन में इस फण्ड को 1000 करोड़ रुपये के व्याय के साथ 2010 –11 बजट से चालू किया गया हैं। यह फण्ड धुनियों, रिक्सा चालकों, बीड़ी कागरों आदि से सम्बन्धित स्कीमों को सहायता देगा।

स्वावलम्बन–2010–11 से शुरू यह स्कीम नयी पेंशन स्कीम में असंगठित लोगों की भागीदारी को प्रोत्साहन करने से सम्बन्धित है। ऐसे लोग जो न्यूनतम 1000 रु. तथा अधिकतम 12000 रु. से इस स्कीम को अपना खाता खोलकर ज्वाइन करेंगे उसमें 1000 रु. सरकार अंशदान के रूप में देगी। यह तीन वर्ष तक उपलब्ध होगी।

महिला किसान स□ाक्तीकरण परियोजना– 2010–11 से शुरू परियोजना है जो किसान महिलाओं की विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित है। यह राष्ट्रीय ग्रामीण लिवलीहुड मिशन के एक उप भाग के रूप में 100 करोड़ रुपया से शुरू की गयी है।

महात्मा गांधी राश्ट्रीय ग्रामीण योजना गारन्टी एक्ट 2004 (मनरेगा) तथा राश्ट्रीय रोजगार गारण्टी कार्यक्रम–नेशनल रूरल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी एक्ट *(NREGA)* नरेगा सितम्बर 2005 को पारित हुआ तथा 2 फरवरी, 2006 को इसकी शुरूआत प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह द्वारा आन्ध्र प्रदेश के बन्दापाली से की गयी। **2 अक्टूबर 2008 इसका नाम बदलकर महात्मागांधी राश्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारण्टी ऐक्ट कर दिया गया।**

2 फरवरी को सरकार ने रोजगार दिवस के रूप में घोषित कर दिया। शुरू में यह योजना 200 जिलों में लागू की गयी पर 2007–08 बजट में इसे बढ़ाकर 330 जिलों में

कर दिया गया।इस समय यह देश के सभी 614 जिलों में लागू है। रोजगार सृजन करने वाली यह पहली योजना है और इस दृष्टि से यह सभी स्कीमों से भिन्न है, जो पार्लियामेंट द्वारा पारित एक्ट के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या को रोजगार प्राप्त करने की गारण्टी के साथ कानून द्वारा अधिकार प्रदान करती है।

(1) प्रत्येक ग्रामीण परिवार के कम से कम एक प्रौढ़ सदस्य को वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारण्टी रोजगार प्रदान की जिम्मेदारी होगी, जिसमें कम से कम 1/3 स्त्रियां होंगी।

(2) इसके तहत दिया गया रोजगार अकुशल शारीरिक श्रम रोजगार होगा जिसके लिए वैधानिक न्यूनतम मजदूरी देय होगी तथा जिसका भुकतान कार्य किये जाने के 7 दिन के भीतर देय होगी।

(3) रोजगार दिये ताने के सम्बन्ध में आवेदन के 15 दिन के भीतर रोजगार प्रदान किया जायेगा तथा रोजगार श्रमिक के निवास से 5 किलोमीटर दूरी के भीतर होगा। इससे बाहर काम दियं जाने पर श्रमिका को 10प्रतिशत अतिरिक्त मजदूरी दी जायेगी। जॉब कार्ड प्राप्त होने के 15 दिन तक काम न पाने पर वह बेरोजगारी भत्ता प्राप्त करेगा। जॉब कार्ड 5 वर्ष तक वैध रहेगा।

(4) यदि इस समय सीमा के भीतर रोजगार नहीं प्रदान किया गया तो आवेदन को बेराजगारी भत्ता देय होगा जो न्यूनतम वैधानिक मजदूरी के 1/3 से कम नहीं होगा।

(5) सम्पूर्ण ग्राम राजगार योजना *(SGRY)* तथा कार्य के लिए राष्ट्रीय अनाज योजना का इसमें विलय।

(6) सेन्ट्रल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी कौन्सिल तथा प्रत्येक राज्य द्वारा स्टेट कौंसिल की स्थापना जो इससे सम्बन्धित काग्र सम्पादित कर सके।

(7) जिला स्तर पर पंचायत अपने सदस्यों की स्टैन्डिंग कमैटी बनायेगी जो जिला के भीतर कार्यक्रमों की देखरेख, मानीटरिंग तथा क्रियान्वयन देखेगी।

(8) इस स्कीम के क्रियान्वयन के लिए राज्य सरकार प्रत्येक ब्लाक के लिए प्रौग्रैम आफीसर की नियुक्ति करेगी।

(8) ग्राम पंचायत परियोजनाओं की पहचान, क्रियान्वयन तथा देखरेख के लिए जिम्मेदारी होगी।

(10) केन्द्र सरकार इसकी फन्डिग की व्यवस्था के लिए नेशनल एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी फण्ड तथा राज्य सरकार स्टेट एम्प्ल्वायमेंट गारण्टी फण्ड की स्थापन करेगी।

(11) पूरी स्कीम इस अर्थ में स्वचयनात्मक *(Self selecting)* होगी कि गरीबों में जो लोग न्यूनतम मजदूरी पर कार्य करने के इच्छुक हैं वे स्वयं इस स्कीम में कार्य के लिए आयेगें।

(12) सी प्रस्तावित है कि परियोजना से सम्बन्धित मजदूरी भाग का भुगतान (जो कुल लागत की लगभग 80 होगी) केन्द्र सरकार करेगी जबकि उसमें लगने वाली सामग्री *(materials)* की लागत का 75 प्रतिशत तथा प्रशासनिक लागत का कुछ भाग केन्द्र सरकार वहन करेगी तथा शेष राज्य सरकार वहन करेगी। इसमें होने वाले व्यय को केन्द्र तथा राज्य सरकार 80:10 में वहन करती हैं।

(13) ग्राम पंचायत इस स्कीम की क्रियान्वयन इकाई है तथा परिवार लाभ प्राप्तकर्ता इकाई है।इस योजना के अन्तर्गत जल सम्भरण, वाटरशेड मैनजमेन्ट, बाढ़ तथा सूखा संरक्षण, फोरेस्ट्री, भूमि विकास, गांवों को सड़क के द्वारा जोड़ना, मरूस्थल विकास आदि से सम्बन्धित परियोजनाओं में रोजगार प्रदान किया जायेगा, इस प्रकार रोजगार के द्वारा अर्थव्यवस्था में सम्पत्ति सृजन होगा।

उल्लेखनीय है कि इस योजना के अन्तर्गत मजदूरी का भुगतान 'एकाउन्टपेयी चेक' या पोस्ट आफिस में खाते के द्वारा ही होना है जिससे मध्यस्थों या विचोलियों से मुक्ति मिल सके।

निःसन्देह राष्ट्रीय रोजगार गारण्टी योजना सर्वथा अलग योजना है। अन्य रोजगार सृजन कार्यक्रमों की तरह इसकी सफलता इसके क्रियान्वयन तथा उसके साथ जुड़े हुए भ्रष्टाचार घूसखोर, फर्जीहाजिरी, जबावदेही आदि के स्तर पर निर्भर करेगी। रोजगार सृजन की यह योजना सार्वजनिक वस्तुओं को विकसित करने के लिए मजदूरी की व्यवस्था करती है। चूंकि सार्वजनिक वस्तु किसी की अपनी नहीं होती है, इसीलिए इसके सृजन में होने वाले हर सम्भव दुरूपयोग सम्भव हैं। आवश्यकता इसकी है कि पूरी योजना इस प्रकार से नियोजन हो कि जहां एक ओर यह गरीबों को अधिक से अधिक लाभप्रद रोजगार प्रदान करे वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था में तीव्र आर्थिक विकास सुनिश्चित हो।

अभ्यास प्रश्न 2

टिप्पणी लिखिए

1. प्रच्छन्न बेरोजगारी और खुली से आप क्या समझते है ?

2. बेरोजगारी के प्रमुख कारण क्या है ?
3. बेरोजगारी के दुष्प्रभावों को संक्षेप में बताइए ?
4. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अनुसार बेराजगारी के विभिन्न स्वरूप को बताइए ?
5. बेरोजगारी को दूर करने के प्रमुख कार्यक्रम क्या है ?

6.9 सांराश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् यह जान चुके हैं कि सामाजिक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या बेरोजगारी है। बेरोजगारी भारत की एक ज्वलन्त समस्या है एक व्यक्ति तभी ही बेरोजगार कहलाता हैं,जबकि उसके पास कार्य नहीं हो और वह रोजगार पाने का इच्छुक हो। इस बेरोजगारी की समस्या ने कई रूप ले लिया हैं,सरकार ने अनेक बेरोजगारी निवारक कार्यक्रम चलाये हुए हैं, जिससे लोगो की आय का सृजन हो। यद्यपि सरकार विभिन्न योजनाओं के माध्यम से रोजगार के नवीन अवसर पैदा करने तथा युवाओं की आय में सकारात्मक वृद्धि करने के प्रयास कर रही है। तथापि इन समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार को अभी और गम्भीरता से अपने प्रयासों को लागू करना होगा। इस इकाई के अध्ययन से आप आर्थिक समस्याओं में सर्वाधिक प्रमुख समस्या बेरोजगारी के कारणों,निवारण के उपाय एवं उसके प्रभाव की व्याख्या कर सकेंगे।

6.10 शब्दावली

$$\text{बेरोजगरी की दर} = \frac{\text{बेरोजगारों की संख्या}}{\text{कुल श्रम शक्ति}} \times 100$$

माइग्रेशन – एक जगह से दूसरी जगह जाकर रहने लगना।

अदृश्य बेरोजगारी – खेतों पर से यदि अतिरिक्त लोगों को हटा लिया जाय और उत्पादन में कमी न आये।

कुशलतम प्रयोग – न्यूनतम नुकसान पर अधिकतम इस्तेमाल द्वारा उत्पादन करना।

6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1– 1.देखिए 8.3, 2. देखिए 8.4, 3. देखिए 8.5 देखिए 8.6।

अभ्यास प्रश्न 2– 1–देखिए 8.4, 2–देखिए 8.8,3–देखिए 8.8, 4–देखिए 8.4.5–देखिए 8.11।

6.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आहूजा,राम(2010),सामाजिक समस्यायें, रावत पब्लिकेशन,नई दिल्ली।पृ071–88
2. वर्मा,रामनाथ एवं शर्मा,राजेन्द्र कुमार(2010),भारत में सामाजिक परिवर्तन एवं सामाजिक समस्यायें,एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा0)लिमिटेड नई दिल्ली।
3. दत्त, रूद्र एवं के.पी.एम. सुन्दरम (2010), भारतीय अर्थ व्यवस्था, एस. चन्द एण्ड कम्पनी लि0,नई दिल्ली।
4. *Misra and Puri, Indian Economy (2010) Himalaya Publishing House.*
5. Kapila, Uma (2008-08), Indian Economy,Academic Foundation.

6.13 सहायक / उपयोग पाठ्य सामग्री

1. *www.ibef.org/economy/agriculture.aspx*
2. *www.economywatch.com/database/agriculture.*
3. *business.gov.in/indian_economy/agriculture*
4. आर्थिक सर्वेक्षण(विभिन्न अंक),वित मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली।
5. कुरूक्षेत्र (विभिन्न अंक), ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
6. योजना (विभिन्न अंक) योजना आयोग, नई दिल्ली।

6.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. किसी देश के अविकसित रहने के लिए बेरोजगारी किस रूप में जिम्मेदार है?क्या इस दिशा में मानवीय नियोजन प्रभावी भूमिका निभा सकता है।
2. बेरोजगारी की प्रकृति एवं कारणों की व्याख्या कीजिए तथा इसके निदान के उपाय बताइए।

इकाई 7

भ्रष्टाचार
Corruption

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 भ्रष्टाचार का अर्थ एवं परिभाषाएँ

7.3 भ्रष्टाचार का समाजभाास्त्र

7.4 भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान

7.5 भ्रष्टाचार के स्वरूप

7.6 भ्रष्टाचार के क्षेत्र

7.7 भ्रष्टाचार के कारण

7.8 भ्रष्टाचार के परिणाम

7.9 भ्रष्टाचार के विरूद्ध अपनायें गयें उपाय

7.10 भ्रष्टाचार के निरोध के लिए सुझाव

7.11 शब्दावली

7.12 अभ्यास प्रश्न

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

7.0 उद्देश्य

विश्व के सभी समाज लोक जीवन में भ्रष्टाचार की समस्या से पीड़ित हैं। सम्भवत: आधुनिक सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ भ्रष्टाचार भी बढ़ा है। वन्य समाज में व्यक्ति 'सच्चा शरीफ इंसान' था, परन्तु सभ्य मानव तो आचरण के अनेक दोषों से युक्त है। रोमन साम्राज्य के ह्रास व पतन पर प्रसिद्ध इतिहासकार गिब्बन *(Gibbon)* ने लिखा था कि ''भ्रष्टाचार संवैधानिक स्वतन्त्रता का सबसे अटल लक्षण है।'' वास्तव में, सर्वाधिकारी व्यवस्थाएँ भी इसके प्रभाव से

मुक्त नहीं हैं। स्टेटस *(States)* के अनुसार साम्यवादी रूस में भी घूस, राजकीय कोष के दुरुपयोग, नियुक्तियों के पक्षपात आदि के गम्भीर मामले घटित होते रहते हैं। सुप्रसिद्ध समाजशास्त्री प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार ऐतिहासिक दृष्टि से भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी एक ऐसी व्यवस्था में पनपती है, जहाँ आर्थिक संसाधनों से सम्पन्न एवं सशक्त वर्ग के लोग काम करते हैं, जो कानूनी व नैतिक नियमों-आदर्शों के प्रतिकूल व्यवहार करते हैं। इस वर्ग में नौकरशाही, राजसत्ता एवं उद्योग से जुड़े लोग सम्मिलित हैं। उपहार, सुविधा शुल्क, पैसे आदि से सशक्त वर्ग से सम्पर्क करने का प्रयास भी भ्रष्टाचार का ही एक रूप है जो भारत में अंग्रेजों के जमाने से चला आ रहा है।

7.1 प्रस्तावना

1999 ई० में 'ट्रांसपरेंसी इण्टरनेशलन संस्था' द्वारा *99* देशों में किए गए सर्वेक्षण के अनुसार यह तथ्य सामने आया है कि विश्व का कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ भ्रष्टाचार बिलकुल न हो। यह और बात है कि यह कहीं ज्यादा है तथा कहीं कम। भारत दुनिया के सबसे अधिक भ्रष्टाचार युक्त देशों में सम्मिलित है। भ्रष्टाचार के मामले में भारत से ऊपर सिर्फ पाकिस्तान था। वर्ष *2000* में यह सर्वेक्षण *90* देशों में किया गया। फौजी शासन के कारण पाकिस्तान में यह सर्वे नहीं हो पाया। *1999* की तुलना में *2000* में भारत का ग्राफ थोड़ा नीचे जरूर आया है लेकिन अब उसे दुनिया के भ्रष्टतम की श्रेणी में ही रखा गया है। यहाँ सर्वेक्षणकर्त्ताओं ने स्कैन्डिनोवियाई और अन्य कई देशों को ईमानदारी के लिए *10* में से *10* अथवा *8-9* अंक प्रदान किए, वहीं भारत को मात्र *2·8* अंक प्राप्त हुए। चीन की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है। उसे भारत से थोड़ा ही ज्यादा *3·1* अंक मिले। भ्रष्टाचार के मामले में सबसे ऊपर नाइजीरिया का स्थान है। इसके बाद यूगोस्लाविया, उक्रेन, अजरबैजान, इण्डोनेशिया, अंगोला, कैमरून, रूस, केन्या, मोजाम्बिक, युगांडा, उजबेकिस्तान, वियतनाम, तंजानिया, आर्मेनिया, माल्डोवा, इक्वाडोर, वेनेजुएला, कोटि डी आइवरी, बोलीविया, फिलीपीन्स, भारत, रोमानिया, जिम्बाब्वे तथा कजाकिस्तान का स्थान है। सर्वेक्षण में यह तथ्य भी सामने आया कि न्यूजीलैण्ड, डेनमार्क, सिंगापुर, फिनलैण्ड, कनाडा, स्वीडन, ऑस्ट्रेलिया, स्विटजरलैण्ड, हॉलैण्ड, नार्वे, आयरलैण्ड, ब्रिटेन, जर्मनी और चिली के मुकाबले अमेरिका में भ्रष्टाचार कहीं ज्यादा है।

भारत में लोक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार एक गम्भीर समस्या है। सरकारीतन्त्र और राजनेताओं के भ्रष्ट कारनामे सामान्य जनता को आश्चर्य चकित कर देते हैं। वास्तव में, जनता का विश्वास उनके ऊपर से इन्हीं कारनामों के कारण उठता जा रहा है। आज धारणा यही है कि सब अपनी-अपनी तिजोरियों को भरने में लगे हुए हैं, किसी को जनता के दु:ख-दर्द सुनने या दूर करने में रुचि नहीं है। चोरी हो जाने पर भी क्षतिग्रस्त व्यक्ति प्राय: पुलिस में रिपोर्ट करने से हिचकता है, क्योंकि वह जानता है कि इसमें कोई लाभ नहीं होगा वरन् उलटा परेशान होना पड़ेगा।

7.2 भ्रष्टाचार का अर्थ एवं परिभाषाएँ

हम भ्रष्टाचार शब्द का प्रयोग दैनिक जीवन में करते हैं परन्तु उसकी ठोस परिभाषा करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है। एक बात बिलकुल स्पष्ट है कि भ्रष्टाचार, व्यक्ति की किसी मनोवृत्ति, चिन्तन या गुण का नाम नहीं है, अपितु यह तो एक विशेष प्रकार के आचरण का परिचायक है जो भ्रष्ट माना जाता है। शाब्दिक दृष्टि से 'भ्रष्टाचार' व्यक्ति के उस आचरण को कहते हैं जो सामाजिक रूप से उसके अपेक्षित व्यवहार प्रतिमानों से हटकर है। अंग्रेजी भाषा में इसे *'Corruption'* कहा जाता है जिसकी उप्त्पत्ति लैटिन भाषा के *'Corrutus'* से है, जिसका आशय है तौर-तरीके और नैतिकता में आदर्शों का टूट जाना, घूस आदि लेना। समाजशास्त्रीय अर्थ में भ्रष्टाचार लोक जीवन में प्रतिष्ठित व्यक्ति का वह आचरण है जिसके द्वारा वह अपने निजी स्वार्थ या लाभ के लिए अपने पद या सत्ता का दुरुपयोग करता है। इलियट एवं मैरिल *(Elliott and Merrill)* के अनुसार, ''अपने अथवा अपने सगे सम्बन्धियों, परिवार वालों और मित्रों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ उठाना भ्रष्टाचार है।'' इन्होंने राजनीतिक भ्रष्टाचार की परिभाषा करते हुए लिखा कि, ''राजनीतिक भ्रष्टाचार, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत लाभ करने के लिए किसी निर्दिष्ट कर्त्तव्य का जानबूझकर पालन न करना है।'' इसी भाँति, रोबर्ट ब्रुक्स *(Robert Brooks)* के अनुसार, ''इसमें किसी मूर्त या अमूर्त लाभ के लिए किए जाने वाले गैर-कानूनी कार्य भी सम्मिलित होते हैं।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि भ्रष्टाचार अपने या अपनों के अथवा अपने राजनीतिक दल के लिए, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किया गया अपनी सत्ता का अनुचित व गैर-कानूनी

प्रयोग है। अत: सामान्य शब्दों में व्यक्तिगत या पारिवारिक हित के लिए अपने कर्त्तव्यों की अवहेलना, अनैतिक व गैर-कानूनी कार्य करना भ्रष्टाचार है। इसके अन्तर्गत गैर-कानूनी ढंग से कमाई करना, बेईमानी, छल-कपट, विश्वासघात, जालसाजी, अनैतिकता, पक्षपात, रिश्वत लेना, चोरी करना या करवाना, असत्य का आचरण करना आदि विविध बातों को सम्मिलित किया जाता है।

आजकल समाजशास्त्रीय व कानूनी क्षेत्र में भ्रष्टाचार के स्थान पर एक और व्यापक अर्थ वाला शब्द प्रयोग होने लगा है वह शब्द है 'अवचार' अथवा 'दुराचार' *(Misconduct)*। दुराचार अपने में भ्रष्टाचार को तो सम्मिलित करता ही है वरन् उन सब आचरणों को भी सम्मिलित करता है जो उस पद से अपेक्षित आदर्शों से गिरे हुए हैं। इस भाँति, दुराचार आचरण के सड़े *(Rotten)*, दुर्गन्धयुक्त *(Putrid)*, अशोभनीय *(Improper)*, अशुद्ध *(Impure)* रूप को प्रकट करता है। राजनीतिक भ्रष्टाचार भी दुराचार का ही एक रूप है।

7.3 भ्रष्टाचार का समाजशास्त्र

प्रो० योगेन्द्र सिंह ने भारतीय सन्दर्भ में 'भ्रष्टाचार के समाजशास्त्र' से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का उल्लेख किया है। इनके अनुसार स्वतन्त्रता पूर्व भारत में भ्रष्टाचार बहुत कम था क्योंकि उस समय मध्य वर्ग बहुत छोटा था। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत में भ्रष्टाचार का तेजी से विस्तार हुआ है। स्वतन्त्रता के पश्चात् राजसत्ता में प्रत्यक्ष नियोजन, पूँजी लागत की प्रक्रिया आदि के द्वारा नौकरशाही, प्रशासन, व्यापार एवं प्रबन्धन के क्षेत्र में ऐसे वर्गों का विकास हुआ जिनमें भ्रष्टाचार एवं रिश्वतखोरी की सम्भावना अधिक थी। स्वतन्त्रता के दो दशक बाद तक भारत में नौकरशाही एवं राजनीतिक नेतृत्व ईमानदारी को प्रोत्साहन देते थे परन्तु *1970* के दशक के बाद भारत में भ्रष्टाचार में जबरदस्त उछाल आया है। राजनीतिक पार्टियों के विघटन, नवीन पार्टियों के जन्म, क्षेत्रवाद, जातिवाद, भाषावाद एवं सम्प्रदायवाद के राजनीति में घोलमेल से लोक जीवन में भी भ्रष्टाचार फैलने लगा। बार-बार होने वाले राजसत्ता में परिवर्तनों तथा कुछ राजनीतिक नेताओं की अत्यधिक उच्च व व्यक्तिगत महत्त्वकांक्षाओं ने राजनीति में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया। इनके अनुसार भारत में खुली प्रतियोगिता पर आधारित अर्थव्यवस्था के स्थान पर बन्द अर्थव्यवस्था ने नौकरशाही, औद्योगिक घरानों एवं राजनीतिक प्रतिष्ठानों की

जेबें भरने का कार्य किया है। पूँजी की खरीद फरोत में भी बिचौलियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका हो गई है।

प्रो० योगेन्द्र सिंह के अनुसार भ्रष्टाचार के लिए सार्वजनिक संस्थाएँ एवं व्यवस्था दोषी है। इन संस्थाओं के विकास के साथ भ्रष्टाचार पर निगरानी एवं नियन्त्रण करने वाली संस्थाओं का विकास नहीं हो पाया है। लोकायुक्त एवं लोकपाल विधेयक पर सभी राजनीतिक दल गम्भीर नहीं हैं। गोपनीयता के नाम पर सूचना के अधिकार से लोगों को वंचित रखा जाता है, जबकि गोपनीयता का कानून अंग्रेजों ने अपना स्वार्थ साधने के लिए बनाया था। भारत में भ्रष्टाचार फैलाने में मध्य वर्ग की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है क्योंकि यह वर्ग छोटे-छोटे स्वार्थों में इस कदर लिप्त है कि भ्रष्टाचार की घटनाओं को रोकने के बजाय उसे नजर अन्दाज करता रहा है। यद्यपि मध्य वर्ग भ्रष्टाचार को बुरा मानता है पर उसमें अपनी भागीदारी उसे बुरी नहीं लगती। इस 'समझौता परस्त मानसिकता' ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया है।

7.4 भ्रष्टाचार का मनोविज्ञान

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अरुणा ब्रूटा ने भ्रष्टाचार के मनोविज्ञान को बड़े रोचक ढंग से समझाया है। इनके अनुसार भ्रष्टाचार का प्रमुख कारण मूल्यों में होने वाला ह्रास तथा समाज के प्रति हमारी प्रतिबद्धता में आने वाली कमी है। प्रतिबद्धता में कमी होते ही व्यक्ति का आत्म विश्वास डगमगाने लगता है और जहाँ भी उसे थोड़ा-बहुत फायदा दिखाई देता है वह उसी तरफ झुकने लगता है। प्रत्येक व्यक्ति अवसर मिलने पर भ्रष्टाचार करने से नहीं चूकता। किसी कार्यालय में कार्य करने वाला एक क्लर्क यदि दफ्तर की स्टेशनरी, लिफाफे इत्यादि का प्रयोग अपने निजी कार्यों हेतु करता है, यदि एक शिक्षक विद्यालय में नहीं पढ़ाता, यदि व्यापारी कम तौलता है या मिलावट करता है या फिर एक ऑटो रिक्शा चलाक अन्जान व्यक्ति से अधिक किराया वसूलता है तो क्या यह भ्रष्टाचार की परिधि में नहीं आता? इनका कहना है कि राजनेताओं के गलत आचरण पर हमें गुस्सा इसलिए आता है क्योंकि हम राजनीति को केवल राजनीति की दृष्टि से देखते हैं एक व्यवसाय या कैरियर के रूप में नहीं। यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह जनता की सेवा करने के लिए राजनीति में आया है तो वह गलत कहता है। उसके दिलोदिमाग में ताकत की एक अतृप्त भूख है। इसीलिए जिसमें 'ताकत की चाहत' अधिक होती है वही

राजनीति में सक्रिय होता है। आज अनेक कलाकार अपनी फण्डिंग अण्डरवर्ल्ड से करा रहे हैं, खिलाड़ी 'मैच फिक्सिंग' कर रहे हैं, डॉक्टर फार्मास्युटिकल कम्पनियों के हाथों में खेल रहे हैं, इसलिए भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज कौन उठाएगा। जब तक समाज एवं व्यवस्था के प्रति प्रतिबद्धता विकसित नहीं होगी भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना सम्भव नहीं है।

7.5 भ्रष्टाचार के स्वरूप

भ्रष्टाचार कोई एक आचरण या दुराचरण नहीं है वरन् उसके अनेक तरीके प्रचलित हैं। घूसखोरी, झूठी रिपोर्ट तैयार करना, लोक-पद का दुरुपयोग व कुप्रयोग, गैर-कानूनी क्रियाओं का संरक्षण, लोक-धन का दुरुपयोग, भाई-भतीजावाद, राजनीति अपराधों का संरक्षण, चुनाव में अपनाए जाने वाले अनैतिक हथकण्डे आदि भ्रष्टाचार में सम्मिलित हैं। संक्षेप में भ्रष्ट क्रियाओं का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है—

***1.* घूसखोरी तथा अनुचित लाभ**—घूसखोरी सामाजिक जीवन में व्याप्त एक असाध्य रोग है। सरकारीतन्त्र के पदाधिकारी और लोकनेता यदि किसी भी व्यक्ति या समूह से उसके हित में कार्य करने या उसके विरुद्ध वैध कार्यवाही करने के लिए धनराशि स्वीकर करते हैं तो यह घूस या रिश्वत कहलाती है। भारत का अपराधी कानून इसे अवैध घोषित करता है और घूस से सम्बन्धित पक्षों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जाती है। परन्तु जब कोई कानून की पकड़ में आए तभी तो उसके विरुद्ध कार्यवाही होगी, और जब दोनों ही पक्ष (घूस लेने वाला और घूस देने वाला) इसकी गोपनीयता में रुचि रखते हों तो घूस का उन्मूलन कठिन कार्य बन जाता है।

***2.* संरक्षण**—संरक्षण भ्रष्टाचार का सबसे सरल रूप है। इसके द्वारा लोक नेता अपने समर्थकों को नौकरियाँ, लाइसेंस, अनुदान, ऋण आदि दिलवाते हैं। इस भाँति, संरक्षण भी मोटे तौर पर दो प्रकार का हो सकता है—भाई-भतीजावाद *(Nepotism)* तथा पक्षपात *(Favourtism)*। यदि लोक जीवन में प्रभावी पदों पर आसीन व्यक्ति अपने बेटों, पोतों, नातेदारों को नौकरी या व्यवसाय में लाभ पहुँचाते हैं तो यह भाई-भतीजावाद कहलाता है और, यदि वे इस प्रकार के कार्य अपने समर्थकों, चमचों व दल के लोगों के लिए करते हैं तो यह पक्षपात कहलाता है। भारतीय समाज में संरक्षण दोनों ही रूपों में भयंकर रूप से व्याप्त है।

***3.* राजनीति-अपराधी गठबन्धन**—राजनेताओं की निगाहें तो सदा अपने चुनाव पर रहती हैं अत: वे अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए अनुचित लाभ या संरक्षण का ही सहारा नहीं लेते

वरन् अपराधियों का भी सहारा लेने में नहीं हिचकते। यही कारण है कि भ्रष्ट राजनेता या अधिकारी अपराधियों को संरक्षण दिए रहते हैं। कई बार तो विरोधियों की 'राजनीतिक हत्या' भी करा दी जाती है। ये अपराधी चुनाव के समय लोगों को आतंकित करने, झूठी वोट डलवाने या मत-पेटियों को बदलने आदि के काम आते हैं। राजनेताओं के संरक्षण के कारण वे कानून की पकड़ से बाहर रहते हैं। एफ० एम० थ्रेशर *(F. M. Thrasher)* ने इस विषय पर बहुत सूचनादायक सामग्री दी है और इस बात के प्रमाण पेश किए हैं कि राजनीतिक अपराधी गिरोह किस तरह सक्रिय होते हैं।

***4.* प्रतिवेदनों को फर्जी या झूठा बनाना**—बहुत से मामलों में लोक-ऑफीसरों या नेताओं की रिपोर्ट माँगी जाती है। वे उसमें अपने या अपनों के हित में मिथ्या तथ्य दे देते हैं और स्वार्थसिद्धि कर लेते हैं। तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर पेश किया जाता है। यह भी भ्रष्टाचार का ही एक रूप है।

***5.* लोक कोषों व सम्पत्ति का दुरुपयोग**—सरकारी धन या सम्पत्ति का निजी या दल की स्वार्थसिद्धि के लिए दुरुपयोग किया जाता है। भ्रष्टाचार का यह स्वरूप भी आम रूप से प्रचलित है।

***6.* कानून के क्रियान्वयन को जनबूझकर रुकवाना**—जो लोग नेताओं को और उनके दलों को बड़ी रकम प्रदान करते हैं अनेक बार कानूनों का उल्लंघन करने पर दण्ड से बच जाते हैं। आयकर, बिजली उपभोग सम्बन्धी भुगतान आदि अनेक व्यक्तियों के पिछले पड़े रहते हैं ओर वे अन्त में इनसे माफी पा जाते हैं।

***7.* भ्रष्टाचार का संस्थाकरण**—सार्वजनिक जीवन के अनेक क्षेत्रों में नजराना, दस्तूरी, कमीशन आदि के रूप में भ्रष्ट क्रियाओं ने एक नियमित रूप ले लिया है। समाज की स्वीकृति न होते हुए भी ये क्रियाएँ परोक्ष रूप से स्वीकृत ही हो गई हैं। ठेकेदारी व्यवसाय लोक अधिकारियों को अवैध कमीशन देने पर टिका हुआ है। कचहरी में आवाज लगाने वाले चपरासी से लेकर अन्य सभी कर्मचारी अपना-अपना हक या दस्तूरी माँगते हैं। यह सब न्याय-मूर्तियों की नाक के नीचे ही घटित होता रहता है। यातायात कार्यालयों, आबकारी विभागों और पुलिस विभागों में व्याप्त भ्रष्टाचार दैनिक जीवन की सामान्य अनुभूतियाँ बन गई हैं।

अत: भ्रष्टाचार के अनेक रूप हैं। इस दिशा में लगे व्यक्तियों के मस्तिष्क बड़े प्रतिभावान होते हैं। अपने सम्पर्कों के माध्यम से सरकारी अफसरों एवं लोक नेताओं को सन्तुष्ट रखने के लिए बड़े आलीशान बंगलों या होटलों में सब तरह का प्रबन्ध रखा जाता है। स्वर्ण, सुरा और सुन्दरी के मोह जाल से कोई विरला ही अपना दामन बचाए रह सकता है। प्रश्न उठता है कि आखिर भ्रष्टाचार की जड़ें इतनी गहरी व मजबूत क्यों हैं? उसके विरुद्ध अभियान सफल क्यों नहीं हो पाता? इसलिए अब हम भ्रष्टाचार के क्षेत्रों एवं कारणों पर प्रकाश डालेंगे।

7.6 भ्रष्टाचार के क्षेत्र

सरकार के प्राय: सभी विभागों में भ्रष्टाचार बहुत बुरी तरह से पनप रहा है। राजस्व, आबकारी, आयात-निर्यात, आयकर, तटकर, कृषि, रेलवे आदि विभागों में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा हुआ है और छोटे-बड़े उद्योग एवं व्यापार-वाणिज्य के ठेकों, लाइसेंस, परमिट, ऋण अनुदान आदि में यह तीव्रता से फैलता जा रहा है। कचहरी तथा परिवहन विभाग में यह खुले आम संस्थागत रूप लेता जा रहा है और सेना, शिक्षा व स्वास्थ्य विभाग भी आज इससे अछूते नहीं रहे हैं। सन्थानम कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार कचहरी में पहले भ्रष्टाचार केवल निम्न स्तर पर ही व्याप्त था परन्तु अब यह उच्च स्तर पर फैल गया है। सन्थानम कमेटी ने भ्रष्टाचार की शिकायतों वाले विभागों की निम्न तालिका दी है—

1. उद्योग वाणिज्य विभाग,

2. सामुदायिक विकास और सहकारिता विभाग,

3. सुरक्षा सेना विभाग,

4. शिक्षा विभाग,

5. परराष्ट्र विभाग,

6. अर्थ-आबकारी, तटकर सुरक्षा, आर्थिक विकास, व्यय, आय-कर तथा राजस्व विभाग,

7. खाद्य और कृषि विभाग,

8. स्वास्थ्य विभाग,

9. गृह विभाग,

10. सूचना एवं प्रसारण विभाग,

11. सिंचाई और विद्युत विभाग,

12. श्रम व रोजगार विभाग,

13. न्याय विभाग,

14. खान विभाग,

15. रेलवे विभाग,

16. वैज्ञानिक शोध और संस्कृति विभाग,

17. इस्पात व भारी उद्योग विभाग,

18. यातायात व संचार विभाग,

19. डाक-तार विभाग,

20. पुनर्वास विभाग,

21. तामीरात विभाग,

22. राष्ट्रपति का सचिवालय,

23. प्रधानमन्त्री का सचिवालय,

24. योजना आयोग, तथा

25. संघीय सार्वजनिक सेवा आयोग।

7.7 भ्रष्टाचार के कारण

किसी भी अन्य समस्या की तरह भ्रष्टाचार के भी अनेक प्रमुख कारण होते हैं। ये कारण व्यक्तिगत भी हो सकते हैं अथवा समाज की विभिन्न परिस्थितियों एवं पक्षों से भी सम्बन्धित हो सकते हैं। सरलता की दृष्टि से भ्रष्टाचार के कारणों को निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में बाँटकर अध्ययन किया जा सकता है—

(अ) भ्रष्टाचार के व्यक्तिगत कारण—कभी-कभी व्यक्ति के जीवन में कुछ ऐसी विषम परिस्थितियाँ आ जाती हैं जिनका सामना वह सामान्य संवैधानिक तरीकों से नहीं कर पाता। कहा भी जाता है 'बुभुक्षित किं न करोति पापम्' अर्थात् भूखा व्यक्ति कौन सा पाप नहीं करता? अपनी बहनों, बेटियों के लिए दहेज के प्रबन्ध या नौकरी ढूँढने पर भी काम का न मिलना, या ऐसे काम का मिलना जिसमें दो समय का पर्याप्त भोजन भी न मिले व्यक्ति को भ्रष्टाचार के

मार्ग पर आगे बढ़ा सकता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में पीड़ित व्यक्ति भ्रष्टाचार के हाथों बड़ी सरलता से बिक सकता है।

(ब) भ्रष्टाचार के आर्थिक कारण—भ्रष्टाचार के लिए आर्थिक पृष्ठभूमि भी उपजाऊ बन जाती है। ऐसा निम्न कारणों की वजह से हो रहा है—

***1.* प्रतिस्पर्द्धात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन**—आधुनिकीकरण व औद्योगीकरण के साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धात्मक भौतिकवादी जीवन-दर्शन भी बढ़ा है। आज हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा प्रतिस्पर्द्धा के आधार पर होती है। हमें सिखाया जाता है कि हर क्षेत्र में सफलता ही प्राप्त नहीं करनी है वरन् उस कार्य-क्षेत्र में लगे अन्य व्यक्तियों से आगे भी निकलना है। अत: व्यक्ति केवल धनवान ही नहीं बनना चाहता वरन् अपने पड़ोसियों व रिश्तेदारों से अधिक धनवान बनना चाहता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में ईमानदारी से ओत-प्रोत साधन बड़े कठिन श्रम, धैर्य व तपस्या की माँग करते हैं। परन्तु प्रतिस्पर्द्धात्मक जीवन में इतनी प्रतीक्षा या धीरज के लिए स्थान कहाँ है? अत: व्यक्ति जल्दी ही, चाहे जैसे हो, सफलताएँ प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि वह जानता है कि सफलता से बड़ी अन्य कोई उपलब्धि नहीं होती। यदि एक बार वह शीर्ष स्थान प्राप्त कर ले तो फिर कोई नहीं पूछता कि यह स्थान उसने कैसे प्राप्त किया है। अधिक से अधिक सम्पत्ति के संग्रहण पर आधारित भौतिक जीवन-दर्शन भ्रष्टाचार को अनिवार्य-सा बना देता है।

***2.* नव समृद्धों का आदर्श–**आजादी के बाद देश में विकास की अनेक योजनाएँ लागू हो गईं। ठेके और लाइसेंसों का बोलबाला हुआ। जटिल व्यापारिक क्रिया में हेरा-फेरी का साहस कर सकने वाले अनेक व्यक्ति शून्य से लखपति बन बैठे हैं। इन नव-अमीरों का रहन-सहन भी बड़ा चमक-दमक वाला होता है। ये लोग अन्य व्यक्तियों के लिए सन्दर्भ समूह बन जाते हैं। अनेक अन्य व्यक्ति भी उनका अनुकरण कर समाज के प्रतिष्ठित वर्ग में सम्मिलित होने के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त हथकण्डे अपनाने को प्रेरित हो जाते हैं।

***3.* महत्त्वाकांक्षा-स्तर का सतत वृद्धिरत स्वरूप**—विकासोन्मुख समाजों में यह एक तीव्र समस्या है। चुनाव के समय हर राजनीतिक दल वोट प्राप्त करने के लिए जन-सामान्य की महत्त्वाकांक्षाओं की अग्नि को हवा देता है; चुनाव के बाद एक ऐसे दैवीय नगर की स्थापना का वायदा करता है जिसमें गरीबी, बेकारी आदि का नाम भी शेष नहीं रहेगा। यह भी देखा

गया है कि जब तक व्यक्ति कष्टमय आर्थिक व्यवस्था *(Pain economy)* में रह रहा है, वह जो कुछ है उसी में सन्तुष्ट रहता है परन्तु तनिक भी व्यक्ति इस स्तर से ऊपर उठा कि उसके दिन-प्रतिदिन नए स्वप्न विकसित हो जाते हैं, उसकी नई माँगें होती हैं। विकासोन्मुख समाजों में इतने बढ़ते हुए महत्त्वाकांक्षा-स्तर की माँगों की पूर्ति के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव होता है। इससे व्यक्ति निराश होता है और उसके नैतिक बन्धन ढीले होने लगते हैं। वह महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भ्रष्ट मार्ग अपनाने के लिए तैयार हो जाता है।

***4.* लाइसेंस, परमिट, कोटा व कण्ट्रोल तथा जटिल कर-प्रणाली पर आधारित आर्थिक व्यवस्था**—यह सच है कि विकासशील देशों में साधनों की कमी है जिसके कारण कुछ वस्तुओं के नियन्त्रण के लिए 'लाइसेंस' व 'कोटा सिस्टम' होता है, परन्तु जहाँ कहीं भी ऐसी व्यवस्था होती है वहाँ भ्रष्टाचार पनपने के अवसर अधिक होते हैं। अफसरों व राजनेताओं के पास अपने विशेषाधिकार के आधार पर बाँटने को बहुत कुछ होता है और इन अनुग्रहों के वितरण में कुछ उनका भी भला हो जाए तो इसमें क्या बुराई है? और जब मियाँ-बीवी राजी तो बेचारा काजी क्या कर सकता है? दोनों ही पक्ष गुप-चुप अपने-अपने स्वार्थ पूरे करने में लगे रहते हैं। साथ ही यह भी कहा जाता है कि भारत में कर-प्रणाली बड़ी जटिल व भारी है। व्यापारियों का तो यह कहना है कि यदि वे सभी कर दें और नम्बर दो का व्यवसाय न करें तो भूखों मरने लगेंगे। आमतौर पर यह देखा भी जाता है कि जिस वस्तु पर 'कण्ट्रोल' घोषित हुआ वही बाजार से गायब हुई।

***5.* राजनीतिक-व्यापारी-अपराधी सहजीवता**—भ्रष्टाचार का एक कुचक्र राजनेता, व्यापारी व अपराधी के पराश्रयी सहजीवता के रूप में स्थापित हो चुका है। राजनेता को चुनाव के लिए बहुत बड़ी धनराशि चाहिए जो उसके पास प्राय: नहीं होती, उसकी पार्टी भी कोई व्यापार तो कर नहीं रही होती। इसलिए उसे भी चन्दा व अन्य साधन चाहिए। इतना ही नहीं चुनाव चक्रव्यूह में उसे शारीरिक बल की भी आवश्यकता होती है ताकि वह विरोधियों के पशु-बल का जवाब दे सके और उन्हें आतंकित भी कर सके। अत: उसे व्यापारी व समाज विरोधी अपराधी तत्त्वों के सहयोग की आवश्यकता होती है। व्यापारी को लाइसेंस व परमिट चाहिए, अपने हितों के संरक्षण वाली राजनीतिक नीतियाँ चाहिए, संसद या विधानसभा में व्यापारी हितों की रक्षा के लिए आवश्यक आवाज चाहिए, गैर-कानूनी ढंग से इधर-उधर से माल लाने वाले

चाहिए तथा अपने मार्ग के रोड़ों को हटाने के लिए इस्पात का हाथ चाहिए। अत: व्यापारी को राजनेता व अपराधी की आवश्यकता होती है। अपराधी को अपनी अवैध कार्यवाहियों को चलाते रहने के लिए संरक्षण चाहिए, माल खपाने के लिए व्यापारी चाहिए। अत: व्यापारी राजनेता व अपराधी पर आश्रित है। इसी सहजीवता की स्थिति में ऊपर से परस्पर विरोधी दिखाई देने वाले तीनों पक्ष भ्रष्टाचार के शक्तिशाली स्तम्भ बन जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप तस्करी, मदिरालय, रंगीन रात्रि क्लब, जुआघर, वेश्यालय चलते रहते हैं और भ्रष्टाचार का अक्षय वट-वृक्ष फूलता-फलता रहता है।

(स) भ्रष्टाचार के पारिस्थितिकीय कारण—भ्रष्टाचार का पारिस्थितिकीय विज्ञान की दृष्टि से भी अध्ययन किया गया है। लासवैल *(Lasswell)* के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाली जनसंख्या के राजनीतिक व सामाजिक मामलों पर दृष्टिकोण भी भिन्न-भिन्न हैं। गरीब व गन्दी (मलिन) बस्तियों में रहने वाले व्यक्ति राजनीतिक स्थिति की व्याख्या प्राय: दो दृष्टियों से करते हैं—एक तो उन्हें नागरिक संगठनों से रोजगार मिलता रहे, और दूसरे उन्हें अवैध इच्छाओं को (जैसे शराब या वेश्यागमन) पूर्ति के लिए सरल सुविधाएँ मिलती रहें। इसलिए वे नागरिक-प्रशासन के भ्रष्ट रूप को बनाए रखने में रुचि रखते हैं क्योंकि उनकी रोजी-रोटी का सवाल इससे जुड़ा है। प्राय: देखा गया है कि भ्रष्टाचार घनी बस्तियों और समवर्ती क्षेत्रों में अधिक होता है। कुछ लोक नेता इसके विरुद्ध आवाज उठाते हैं परन्तु वे इतने अल्पसंख्यक व असंगठित हैं कि संगठित भ्रष्टाचार के विरुद्ध शक्तिहीन हो जाते हैं।

(द) भ्रष्टाचार के प्रशासकीय कारण—भारतीय प्रशासकीय संरचना निम्नलिखित रूप में भ्रष्टाचार के उद्‌गम का कारण बन जाती है—

***1.* कानूनों का खोखलापन व कानूनी विधियों की जटिलता**—भारत में कानून इतने जटिल और कानूनी-प्रक्रिया इतनी लम्बी, औपचारिक व दुरूह है कि सामान्य व्यक्ति के लिए उसका समझ सकना जटिल है। हमारी अधिकांश जनसंख्या अब भी अशिक्षित है अत: जब भी उसका कानून से कुछ वास्ता पड़ता है वे भ्रष्ट तत्त्वों से मदद लेने के लिए मजबूर हो जाते हैं और कदम-कदम पर ठगे जाते हैं। पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी कानूनी-औपचारिकता के झंझटों व परेशानी से बचने के लिए भ्रष्ट तरीकों का सहारा लेने को प्रेरित हो जाता है। कानूनों का

खोखलापन भी भ्रष्टाचार का कारण है। कानून बनते हैं एक उद्देश्य से, परन्तु अमल में आते समय उनका दूसरा ही रूप दिखाई पड़ता है।

***2.* कर्मचारीतन्त्र की लाल फीताशाही**—मध्यम और निम्न श्रेणी के कर्मचारीतन्त्र के पास पहले ही अनैतिक लूट के लिए हथियार होते हैं। पुराने कागज ढूँढ़ना, केस का अध्ययन करना आदि अनेक ऐसे हथकण्डे हैं जिनके द्वारा किसी केस की फाइल प्रस्तुत करने में मनचाही देर लगाई जा सकती है। फाइलों का लाल फीता बड़ा मजबूत होता है, खुलता ही नहीं और उसकी चाल बड़ी धीमी होती है, परन्तु घूस की चिकनाई लगते ही फीता फिसल जाता है और फाइल के पंख उग आते हैं। वास्तव में, कर्मचारीतन्त्र की औपचारिक आवश्यकताएँ इतनी अधिक हैं कि भ्रष्टाचार के लिए अनगिनत रास्ते खुल जाते हैं।

***3.* प्रशासकों की विस्तृत विवेकाधिकारी सत्ता व शक्ति**—प्राय: प्रशासन के कानून अंग्रेजों द्वारा बनाए गए थे। उन्होंने अपने अधिकार में लिए एक उपनिवेशिक देश पर शासन करना था तथा एक विदेशी कौम को गुलाम बनाए रखना था। स्वाभाविक ही उसके पास विस्तृत विवेकाधिकारी शक्ति का होना आवश्यक था। परन्तु अब भी वही अधिकार चले आ रहे हैं। अपराधों के लिए न्यायाधीशों के पास भी विस्तृत विवेकाधिकार हैं। प्राय: अधिकतम दण्ड की सीमा निर्धारित है। एक अपराध में, उदाहरणार्थ, *5000* रुपये तक जुर्माना हो सकता है और ऑफीसर के विवेकाधिकार की बात है कि चाहे तो मात्र *5* रुपये जुर्माना कर दे। इस विवेकाधिकारी शक्ति ने भी प्रशासकों के भ्रष्टाचार के क्षेत्र बढ़ा दिए हैं क्योंकि प्रशासन व प्रार्थी पारस्परिक लाभ के सौदे तय करने में समर्थ हो जाते है।

***4.* ईमानदार ऑफीसर की दुर्दशा**—भ्रष्ट प्रशासनतन्त्र में यदि कहीं कोई ईमानदार ऑफीसर फँस जाता है तो उसके अधीन व्यक्तियों और कुछ सीमा तक उसके ज्येष्ठ अधिकारियों को उससे कष्ट होने लगता है। वे उसे अवांछनीय तत्त्व समझने लगते हैं और भ्रष्ट राजनेताओं की सहायता से उसका उत्पीड़न प्रारम्भ हो जाता है, उनकी पदोन्नति, स्थानान्तरण सभी कुछ प्रभावित होता है। अब धीरे-धीरे उसके सामने तीन मार्ग रह जाते हैं—प्रथम, वह भी भ्रष्टाचार की बृहद् मशीन का एक पुर्जा बन जाए, द्वितीय, वह स्वयं अपना दामन दागों से बचाए रखे और अपने सहकर्मियों के भ्रष्टाचार की ओर से आँखें मूँदे रखे और जब-तब उनकी सिफारिश भी मानता रहे और जैसे कटे अपना जीवन काटे तथा तृतीय, वह नौकरी छोड़ दे। स्पष्ट है कि

निराश व सताया हुआ व्यक्ति प्राय: पहला ही मार्ग अपनाने की सोचेगा क्योंकि दूसरा मार्ग कठिन है और तीसरा तो इस बेरोजगारी के जमाने में आत्मघात है ही। इस भाँति, ईमानदार पदाधिकारी भी धीरे-धीरे कुण्ठित व उदासीन हो जाते हैं।

(क) भ्रष्टाचार के राजनीतिक कारण—लोक जीवन में भ्रष्टाचार राजनीतिक कारणों के परिणामस्वरूप ही सबसे अधिक प्रचलित है। प्रमुख रूप से निम्न राजनीतिक कारण इसके लिए जिम्मेदार हैं—

***1.* सत्ता की राजनीति**—राजनीति का लक्ष्य केवल 'शक्ति' प्राप्त करके इसे बनाए रखना और उसका अपने और अपने दल के हित के लिए प्रयोग करना है। 'सत्ता की राजनीति' में नैतिक आदर्शों और राष्ट्रीय हितों के लिए कम ही स्थान रह पाता है। 'सत्ता' प्राप्त करने के लिए खुलकर धन व अन्य हथकण्डों का प्रयोग होता है। जब राजनेता ही भ्रष्ट हैं तो सामाजिक जीवन कैसे स्वच्छ रह सकता है।

***2.* खर्चीली व दोषपूर्ण चुनाव प्रणाली**—प्रजातान्त्रिक प्रणाली में चुनाव भी एक बड़ा हास्यास्पद चित्र प्रस्तुत करते हैं। एक एम० एल० ए० या एम० पी० के चुनाव में कम-से-कम *15* लाख से लेकर *20* लाख रुपया तक खर्च होता है। कैसा मजाक लगता है कि एक उम्मीदवार मतदाता से हाथ जोड़कर 'सेवा करने का हक' माँग रहे हैं, मानो किसी ने उन्हें सेवा करने से रोक रखा था। चुनाव क्षेत्र के लिए वे जब चाहें सामाजिक कार्य कर सकते हैं, परन्तु नहीं! अब वे सामाजिक सेवा करने के लिए जनता से हक माँग रहे हैं और उसके लिए लाखों रुपया खर्च कर रहे हैं, वह भी पाँच साल के लिए (कहीं मध्यावधि चुनाव हो जाएँ तो और भी कम समय के लिए)। वास्तव में, चुनाव में ये इतना खर्च तो विनियोग है, जिससे फिर लाभांश कमाना है। राजनीतिक दल कैसे-कैसे हथकण्डों से धन इकट्ठा करते हैं यह तो अब आम चर्चा का विषय है।

***3.* उच्च राष्ट्रीय नेताओं की प्रारम्भिक उदासीनता**—आजादी के बाद भ्रष्टाचार का जो व्यापक प्रसार हुआ उसमें हमारे शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं की इस ओर उदासीनता भी एक प्रमुख कारण कही जाती है। यदि शुरू में ही कड़ी कार्यवाही की जाती तथा इसकी रोकथाम के लिए प्रबन्ध किए जाते तो भ्रष्टाचार का नाम इतना बहुमुखी और विशालकाय न होता।

***4.* शक्तिशाली प्रचारतन्त्र**—प्राय: राजनेताओं और व्यापारियों का प्रचारतन्त्र जैसे प्रेस, रेडियो, टेलीविज़न आदि पर काफी प्रभाव होता है। पत्रकार उनके आगे पीछे घूमते हैं। अत: वे अपनी छवि सही बनाए रखने के लिए और अपने कालिमामय कृत्यों को छिपाने के लिए प्रचारतन्त्र के द्वारा जनता में अनेक भ्रामक तथ्य भी फैलाते रहते हैं।

***5.* निष्पक्ष व प्रभावी जाँच-तन्त्र का अभाव**—अभी तक ऐसी कोई निष्पक्ष, तटस्थ व शक्तिशाली संस्था विकसित नहीं हो सकती है जो लोक जीवन में लोक नेताओं के कुआचरण व भ्रष्टाचार के विरुद्ध शिकायत पर स्वतन्त्र रूप से जाँच कराती हो तथा निर्णय लेती हो। पिछले कुछ वर्षों में जो जाँच-आयोग बैठे वे सलाहकारी प्रकृति के रहे। अत: लोक जीवन में भ्रष्टाचार का घोड़ा बेलगाम उछलता-कूदता दौड़ता रहा।

(ख) भ्रष्टाचार के सांस्कृतिक कारण—भ्रष्टाचार के लिए हमारी समकालीन सांस्कृतिक परिस्थितियाँ भी उत्तरदायी हैं, क्योंकि इसके दो निम्नलिखित लक्षण भ्रष्टाचार के लिए सहयोगी कारण बन जाते हैं—

***1.* सांस्कृतिक मूल्यों में उभयभाविता व संघर्ष**—परम्परा व आधुनिकता के बीच पला व्यक्ति सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति उभयभावी हो जाता है। वह एक 'मूल्य' के प्रति आकर्षण व घृणा दोनों ही दृष्टि रखने लगता है। इसी प्रकार अनेक क्षेत्रों में परम्परागत और आधुनिक मूल्यों में संघर्ष की स्थिति होती है। आधुनिक मूल्य उपलब्धि, भौतिक वस्तुओं के संग्रह, उपभोग के प्रतिमान से व्यक्ति की सफलता का मापदण्ड करते हैं और साधनों की शुद्धता पर अधिक जोर नहीं दिया जाता। परम्परागत मूल्य ईमानदार और शुद्ध साधनों को भी आवश्यक बताते हैं परन्तु सामाजिक संरचना व वातावरण ने ईमानदार व्यक्ति के लिए कोई प्रतिष्ठित पद छोड़े नहीं तो फिर व्यक्ति क्या करें? ऐसे मूल्य संघर्ष की सीमा पर खड़े व्यक्ति जरा भी बाधक परिस्थिति आने पर आदर्श की लक्ष्मण-रेखा पार कर भ्रष्टाचार के रावण के साथ चल पड़ते हैं।

***2.* चरित्र का संकट**—वास्तव में, आज हमारे समाज में 'चरित्र' का संकट है। चरित्र के विकास की परम्परागत संस्थाएँ—कठोर पारिवारिक अनुशासन, गुरुकुल पद्धति, संस्कारों पर आधारित जीवन-यात्रा—समाप्त हो गई हैं। आधुनिक संस्थाएँ 'चरित्र-निर्माण' पर आधारित नहीं हैं, अत: भारतीय राष्ट्रीय चरित्र गिरता ही चला गया है। ईमानदारी, सन्तोष, वचन पालन तो

मध्य युग के पिछड़े गुण लगते हैं। आज तो अवसरवादिता, छीना-झपटी ही चरित्र का आधार बन गए हैं। कमजोर चरित्र भ्रष्टाचार के लिए उर्वर भूमि है।

(ग) भ्रष्टाचार के ऐतिहासिक कारण—भ्रष्टाचार के कारणों में इसकी ऐतिहासिकता को भी गिनाया जा सकता है। अंग्रेजी शासनकाल में प्रमुख अधिकारी अंग्रेज थे। वे देशी भाषाएँ नहीं जानते थे। इसीलिए हर काम के लिए बिचौलियों, एजेन्टों व ठेकेदारों की प्रणाली विकसित हो गई। अंग्रेज अफसरों के यहाँ डाली, नजराना आदि पहुँचाया जाने लगा तथा दफ्तरों में कर्मचारियों की कमीशन और दस्तूरी तय होने लगी। अंग्रेज तो गए पर देशी अफसर व कर्मचारियों ने विरासत में मिले भ्रष्टाचार को और व्यापक व संगठित रूप से फैलाया है। अत: भ्रष्टाचार समाज में अवैध एवं अस्वीकृति, परन्तु फिर भी यह एक सामूहिक आचार बन गया है।

इस भाँति, भ्रष्टाचार के कारणों का विस्तृत अध्ययन हमें बताता है कि भारत में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत मजबूत हैं और इसका प्रभाव भारतीय समाज के हर क्षेत्र में व्याप्त है। शिक्षा के प्रांगण और देवालय व गिरजाघर भी इससे अछूते नहीं है। सच तो यह है कि स्वयं भ्रष्टाचार और आगे भ्रष्टाचार में वृद्धि का एक कारण है।

7.8 भ्रष्टाचार के परिणाम

भ्रष्टाचार के परिणामों का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—

(अ) व्यक्ति की दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम—व्यक्ति की दृष्टि से भ्रष्टाचार निम्न प्रभाव डालता है—

1. **चारित्रिक पतन**—भ्रष्टाचार के परिणामस्वरूप व्यक्तियों का चारित्रिक पतन होता है। जो व्यक्ति इसमें लिप्त हैं उनसे किसी नैतिक या मानवीय आदर्श की आशा करना ही व्यर्थ है क्योंकि 'सत्ता', 'उपलब्धि या 'धन' ही उनके जीवन के मार्गदर्शक मूल्य बन जाते हैं। साधनों की शुद्धता का सवाल उठाना ही असंगत हो जाता है। चरित्र की दृष्टि से पतित ऐसे व्यक्ति न अच्छे प्रशासक हो सकते हैं और न राजनेता ही। काम चलता रहे या 'कुर्सी सुरक्षित रहे' ये ही उनके मूल मन्त्र हो जाते हैं। बाहर से वे भरे-पूरे रहते हैं परन्तु अन्दर से खोखले, क्योंकि अन्त: करण में तो वे अपराधी या हीन ही हैं। हर समय स्वयं के असली रूप को छिपाये रखने की उनकी चोर वृत्ति उनसे चारित्रिक अथवा नैतिक दृढ़ता छीन लेती है जोकि जीवन में सच्ची

सफलता की कुंजी है। नैतिक पतन उन्हें जुआ, शराब, स्त्री-सहवास जैसी बुराइयों की ओर ले जाता है जिससे और आगे नैतिक पतन होता है।

***2.* व्यक्ति में निराशाओं व कुण्ठाओं का विकास**—सदाचारी व्यक्ति भ्रष्टाचार के दैत्य के सम्मुख बौने बन जाते हैं। उनमें गुण और क्षमता होते हुए भी वे उनके विकास के अवसर नहीं पा सकते। अत: इनमें सापेक्षिक व बलात् अपने न्यायोचित स्थान से वंचित रह जाने की भावना निराशा भर देती है। वे स्वयं को उदासीन व शक्तिहीन महसूस करते हैं।

***3.* व्यक्ति का अलगावग्रस्त, सनकी व चिड़चिड़ा होना**—सदाचारी निराश व कुण्ठित होने से और भ्रष्ट व्यक्ति अपनी शक्ति व सत्ता के मद में सनकी और चिड़चिड़े हो जाते हैं। वे पलायनवाद, एकाकीपन, आदर्शविहीनता की भावनाओं पर आधारित अलगाव के शिकार हो जाते हैं और भावात्मक दृष्टि से तनाव व उत्तेजित अवस्था में रहते हैं।

***4.* भ्रष्ट व्यक्ति की अनन्त हविश का विकास**—भ्रष्टाचार की बीमारी का शिकार व्यक्ति कभी न मिटने वाली भूख—तन की भी धन की भी—विकसित कर लेता है और तृप्ति की तलाश में भटकता रहता है जोकि मृग-मरीचिका सी उससे दूर भागती रहती है।

(ब) समाज की दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम–इलियट एवं मैरिल ने बहुत उचित लिखा है कि राजनीतिक विघटन व भ्रष्टाचार, एक ही समय, सामाजिक विघटन का परिणाम व सहायक कारक हैं। वास्तव में, भ्रष्टाचार सामाजिक विघटन को उत्पन्न करता है। भ्रष्टाचार के सामाजिक कुपरिणाम निम्नलिखित हैं—

***1.* सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को बढ़ावा**—भ्रष्टाचार, सामाजिक विघटन को बढ़ाता है क्योंकि इसी के संरक्षण में जुआघर, वेश्यालय आदि चलते हैं। पुलिस अधिकारियों के क्षेत्र में ये अपराधी-संगठन, संरक्षण के लिए नियमित 'सुरक्षाधन' *(Protection money)* क्षेत्र के इन्चार्ज को देते हैं और उसका बँटवारा श्रेणी के अनुसार कर्मचारियों को मिलता है। व्यक्तियों का नैतिक पतन उन्हें अपराध की ओर ले जाता है। जब व्यक्ति के पास काला धन आता है वह उसे सीधे कार्यों या सम्पत्ति आदि में तो दिखा नहीं सकता, इसे तो वह सुरा व सुन्दरी पर व्यय करता है। व्यक्तिगत विघटन से पारिवारिक विघटन को भी बल मिलता है।

***2.* सामाजिक असमानता में वृद्धि**—भ्रष्टाचार के द्वारा धन कुछ ही हाथों में केन्द्रित होता जाता है। स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा के द्वार बन्द होते हैं और गरीब व अमीर के बीच खाई बढ़ती ही चली जाती है। जीविका के लिए गरीब भ्रष्ट कार्यों में दास की भाँति कार्य करते हैं। इस असमानता से असन्तोष व दोष बढ़ते हैं।

***3.* अलगावग्रस्त जनसमूह आन्दोलन के लिए तत्पर**—असन्तोष से घिरे जनसमूह आन्दोलनों के लिए चारा बन जाते हैं। चालाक राजनेता या स्वार्थी समूह ऐसे जनसमूहों की भावनाओं को उभारकर कभी भड़का देते हैं और इसी कारण आए दिन तोड़-फोड़ की घटनाएँ होती रहती हैं।

***4.* दूषित राजनीतिक वातावरण का निर्धारण**—भ्रष्टाचार के परिणामस्वरूप राजनीतिक व्यवस्था पूर्णत: दूषित हो जाती है। भ्रष्टाचार राजनीति द्वारा पोषित होकर राजनीतिक विघटन का कारण भी बन जाता है। राजनीतिक दृष्टि से भ्रष्टाचार के परिणाम निम्न हैं—

(i) राजनीतिक पार्टियों का नेतृत्व अवांछनीय तत्त्वों के हाथ में चला जाता है और पार्टी का सर्वांगीण पतन होता है।

(ii) राजनेताओं व प्रशासन पर से जनता का विश्वास उठ जाता है और जनता में असुरक्षा की भावना बढ़ती है।

(iii) कानून व्यवस्था भंग होने लगती है।

(iv) राजनेताओं की जनता को सही दिशा देने की क्षमता क्षीण हो जाती है, क्योंकि उनके वाक्य जनता को थोथे लगते हैं।

5. **आजादी का अर्थहीन होना**—एच० वी० कामथ ने सही कहा है कि भ्रष्टाचार की दुर्गन्ध स्वतन्त्रता की सुगन्ध को भी नष्ट कर देती है। भ्रष्ट परिस्थितियों में स्वतन्त्रता अर्थपूर्ण कैसे रह सकती है, जबकि व्यक्ति आतंकित, बाधित व असहाय महसूस करता हो।

***6.* सामाजिक सुधार व प्रगति में बाधा**—भ्रष्टाचार से निहित स्वार्थ समाज सुधार के कार्यों में बाधा बन जाते हैं, क्योंकि सुधार द्वारा उनके हितों को चोट पहुँचती है। सरकार कानून भी नहीं बना पाती और यदि बना भी ले तो उसको क्रियान्वित नहीं कर पाती। विकास कार्यों में बाधा पड़ती है क्योंकि योजना-व्यय का बहुत बड़ा भाग विकास कार्य से हटकर भ्रष्टता की नीतियों से बहता हुआ व्यर्थ ही चला जाता है।

***7.* राष्ट्र-निर्माण में व्यवधान**—भ्रष्टाचार राष्ट्र-निर्माण की गति को धीमा कर देता है। राष्ट्र-निर्माण बाँध बनाने से, बड़े-बड़े कारखाने लगाने से ही नहीं होता वरन् उत्तरदायी नागरिकों के निर्माण से होता है। अन्ततोगत्वा राष्ट्र के नागरिक ही हर विकास कार्य के हेतु हैं। यदि नागरिक ही चरित्र की दृष्टि से पतित हैं तो राष्ट्र का ह्रास भी अनिवार्य है। भ्रष्टाचार के इतने गम्भीर परिणाम होते हुए भी क्या किसी राष्ट्रीय नेता का इधर ध्यान नहीं गया? क्या राज्य ने इसके विरुद्ध कुछ नहीं किया? ऐसा नहीं है, भ्रष्टाचार के निरोध के लिए कुछ कदम भी उठाए गए हैं, यद्यपि उसके माध्यम से अभी तक अधिक सफलता नहीं मिल पाई है।

7.9 भ्रष्टाचार के विरुद्ध अपनाए गए उपाय

स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान ही महात्मा गांधी ने भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस दिशा में कुछ विशेष कदम उठाए गए हैं, जिन्हें प्रमुख रूप से इस प्रकार गिनाया जा सकता है—

1. *1947* ई० में भ्रष्टाचार निरोध-अधिनियम पारित किया गया जिसने भ्रष्टाचार की क्रियाओं की परिभाषा दी और दण्ड निर्धारित किए।

2. योजना आयोग ने श्री ए० डी० गोरवाला को प्रशासन के सुधार के लिए जाँच व सुझाव देने के लिए नियुक्त किया। *30* अप्रैल *1951* ई० को श्री गोरवाला ने लोक-प्रशासन पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसमें उन्होंने स्पष्ट दिखाया कि अनेक राजनेता भी दुराचरण में लिप्त हैं और यथा राजा तथा प्रजा कहावत को दोहराते हुए इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्र के नेताओं को लोक जीवन में आदर्श व स्वच्छ आचरण रखना चाहिए।

3. लगभग इसी समय (*9* अप्रैल *1951* ई०) श्री आयंगर की अध्यक्षता में नियुक्त कांग्रेस संसदीय दल की एक उप-समिति ने स्वर्गीय श्री बी० के० कृष्णमेनन के दुराचरण से सम्बन्धित जीप केस पर प्रतिवेदन प्रस्तुत किया जिसमें भ्रष्टाचार के स्पष्ट उदाहरण थे। परन्तु खेद की बात यह है कि तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री जवाहरलाल नेहरू ने केस दबा दिया। इस सम्बन्ध में सर्वश्री द्विवेदी व भार्गव ने लिखा है, ''यदि श्री कृष्णमेनन द्वारा स्वीकार की गई भूलों के कारण कोई सरकारी अधिकारी अपराधी पाया जाता है तो उस पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए परन्तु श्री मेनन के केस में न केवल उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही ही की गई वरन् उन्हें मन्त्रिमण्डल में भी ले लिया गया। वे वहाँ तब तक सुरक्षित रहे, जब तक कि *1952* ई० में

जनरोष की बाढ़ ने उन्हें लोक जीवन से बाहर कर लिया।'' अत: राजनेताओं द्वारा भ्रष्टाचार का ऐसा संरक्षण भी घातकसिद्ध होता है।

4. *1952* ई० में जाँच आयोग अधिनियम पारित किया गया जिसके अनुसार लोकपाल के पद की भी व्यवस्था की गई।

5. दिसम्बर *1957* ई० को लोकसभा में 'मुन्धरा केस' में तत्कालीन वित्त मन्त्री टी० टी० कृष्णमाचारी के आचरण को लेकर जोरदार बहस हुई और सरकार ने श्री एम० सी० छागला, जो उस समय बम्बई हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश थे, को जाँच आयोग के अध्यक्ष पद पर *17* जनवरी *1958* ई० को नियुक्त किया। श्री छागला ने *10* फरवरी *1958* ई० को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें श्री कृष्णमाचारी के आचरण को संदिग्ध पाया गया। टी० टी० कृष्णमाचारी ने मन्त्री पद से त्याग पत्र दे दिया। श्री नेहरू ने फिर उनकी प्रशस्ति की और थोड़े दिनों के बाद *1962* ई० में पुन: मन्त्रिमण्डल में वापस बुला लिया।

6. *1962* ई० में के० सन्थानम *(K. Santhanam)* की अध्यक्षता में भ्रष्टाचार निरोध पर एक कमेटी नियुक्त की जिसने अपनी रिपोर्ट *31* मार्च *1964* ई० को दी। वास्तव में, राजनेताओं और मन्त्रियों में भूतपूर्व गृहमन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा को यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने भ्रष्टाचार की समस्या को गम्भीरता से लिया और इसके उन्मूलन को अपना लक्ष्य बनाया। सन्थानम कमेटी की रिपोर्ट भी इस विषय पर बहुमूल्य सामग्री प्रस्तुत करती है।

7. *29* अक्तूबर *1964* ई० को केन्द्रीय एवं राज्य मन्त्रियों की आचरण संहिता भारतीय सरकार ने प्रकाशित की, जिसके अनुसार केन्द्रीय मन्त्रियों द्वारा आचरण-संहिता के पालन का दायित्व प्रधानमन्त्री का, मुख्यमन्त्रियों द्वारा पालन का दायित्व केन्द्रीय गृहमन्त्री का और राज्य के मन्त्रियों पर आचरण-संहिता लागू करने का दायित्व केन्द्रीय गृहमन्त्री तथा सम्बन्धित मुख्यमन्त्री का है। वे ही किसी मन्त्री द्वारा संहिता के उल्लंघन के विरुद्ध कार्यवाही का तरीका तय कर सकेंगे।

8. *1971* ई० में श्रीमती इन्दिरा गांधी की सरकार ने लोक-आयुक्त बिल पेश किया जिस पर पूरी कार्यवाही न हो सकी।

9. *1977* ई० में जनता सरकार बनी। कांग्रेस का तीस वर्ष का शासन अपनी उपलब्धियों व असफलताओं की मीठी-खट्टी यादें छोड़ता हुआ समाप्त हुआ। प्रधानमन्त्री व गृहमन्त्री के पद

पर क्रमशः श्री मोरारजी देसाई व श्री चरणसिंह आसीन हुए, जो अपने स्वच्छ व ईमानदार लोक जीवन के लिए प्रसिद्ध थे। श्री चरणसिंह भ्रष्टाचार के पुराने कट्टर शत्रु रहे हैं। उनका दृढ़ विश्वास था कि भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है, अतएव शीर्षस्थ नेताओं और प्रशासकों में व्याप्त भ्रष्टाचार को पहले समाप्त करना होगा तभी नीचे तक लोक जीवन स्वच्छ हो सकेगा। परन्तु न तो प्रशासक वर्ग का उन्हें सहयोग मिला और न दलगत राजनीति की दल-दल में फँसे राजनीतिज्ञों का, बल्कि उनसे गृहमन्त्री पद से इस्तीफा माँग लिया गया तथा जनता पार्टी आपसी फूट के कारण केवल *30* महीनों की अल्प अवधि में ही सत्ता से हाथ धो बैठी।

10. *22* जुलाई *1977* ई० को लोकसभा में भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष के लिए एक तटस्थ तन्त्र स्थापित करने के लिए लोकपाल बिल रखा गया। यह बड़ा व्यापक व दूरगामी प्रभाव डालने वाला प्रभावी अधिनियम है। इसमें लोक नायकों के दुराचार की परिभाषा दी गई है, लोक नायकों में कौन-कौन सम्मिलित होंगे वह बताया गया है और, उनके विरुद्ध कैसे तटस्थ, निष्पक्ष व प्रभावी जाँच किसके द्वारा होगी यह भी तय कर दिया गया। लगभग एक वर्ष के बाद कमेटी ने इस पर अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर दीं। इन सिफारिशों से, जोकि मान ली गईं मूल बिल की भ्रष्टाचार की व्याख्या व आत्मा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा इसीलिए लोकपाल बिल भी अधिक प्रभावशाली नहीं रहा है।

11. पिछले पाँच दशकों में राजनेताओं तथा मन्त्रियों के बेटे, भाई-भतीजों एवं अपने स्वयं के दुराचार की जाँच के लिए अनेक आयोग बैठे हैं। *1977* का वर्ष तो आयोगों का वर्ष कहा जा सकता है। संघीय तथा राजकीय दोनों ही स्तरों पर अनेक आयोग बिठाए गए थे। शाह आयोग तो बच्चे-बच्चे की जुबान पर रहा है। इन सभी की रिपोर्टों का अध्ययन ही अपने आप में शोध का विषय है। करोड़ों रुपया व्यय कर इन आयोगों द्वारा कम से कम यह तो निर्विवाद सिद्ध हो गया कि भारतीय समाज गहरे तथा संगठित भ्रष्टाचार से पीड़ित है। इस रोग का निदान खोजना ही होगा अन्यथा भारतीय समाज रसातल में चला जाएगा।

इन उपर्युक्त प्रयासों का अध्ययन हमें अग्रलिखित निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए बाध्य करता है—

(i) अभी तक भ्रष्टाचार विरोधी अभियान में आधे दिल से कार्य किया गया है। इसीलिए कोई प्रभावी कदम नहीं उठाया जा सका है,

(ii) भ्रष्टाचार के दोषी पाए गए राजनेता भी दण्ड से साफ बच निकले हैं और आज भी लोक जीवन में सक्रिय हैं,

(iii) भ्रष्टाचार को प्रमाणित करना बहुत कठिन है, क्योंकि इसमें रत सभी पक्ष सत्ता में होते हैं, शक्तिशाली होते हैं और बड़ी चालाकी से भ्रष्ट कृत्य किया जाता है,

(iv) जाँच आयोग बिठाकर भ्रष्टाचार के किसी मामले के तथ्य मालूम कर लेने से कुछ नहीं होगा जब तक कि दोषी व्यक्तियों के विरुद्ध कड़ी व दूसरों को सबक देने वाली कार्यवाही न की जाए,

(v) देश के विभिन्न राज्यों में प्रशासकीय भ्रष्टाचार के विरुद्ध अभियान के लिए स्थापित सतर्कता अधिष्ठान भी इसे समाप्त करने में विफल रहे हैं यद्यपि उसका कार्यभार बढ़ता जा रहा है, जैसे उत्तर प्रदेश में ही इसकी स्थापना के प्रथम वर्ष *1964–65* में केवल *76* शिकायतों की जाँच की गई थी, यह संख्या *1977–78* में *740* हो गई थी परन्तु भ्रष्टाचार तो कम नहीं हुआ।

केवल आयोग बैठा देना भ्रष्टाचार के निरासन का उपाय नहीं है। उसके लिए सामाजिक और सार्वजनिक जीवन की बुनियादों को बदलना आवश्यक है। लोक नायक जयप्रकाश नारायण के ये विचार ध्यान में रखने योग्य हैं कि जो भ्रष्टता स्वयं सिद्ध हो उसको कानूनी दृष्टि से प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती।

7.10 भ्रष्टाचार के निरोध के लिए सुझाव

भ्रष्टाचार के निरोध के लिए प्रमुख सुझाव निम्नलिखित हैं—

1. भारत के अधिकतर कानून बहुत पुराने हैं। आजकल समाज की समस्याओं, भविष्य की महत्त्वकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए उनको नए सिरे से बनाया जाना चाहिए। सामाजिक हितों के विरुद्ध होने वाले अपराधों व दुराचारों को गम्भीर श्रेणी में रखा जाना चाहिए और उनके लिए कड़ी सजा की व्यवस्था होनी चाहिए।

2. प्रशासनिक ढाँचे और नियमों को सरल बनाया जाना चाहिए ताकि काम अविलम्ब और न्यायपूर्ण ढंग से हो सके।

3. प्रशासनिक अधिकारियों की विवेकाधिकारी शक्तियों का क्षेत्र स्पष्ट परिभाषित किया जाए और उसे संकुचित भी किया जाए।

4. कर-प्रणाली सीधी व सरल हो तथा कर-वसूलने के स्रोत भी निश्चित हों।

5. चुनाव प्रणाली में आमूल संशोधन हो। पिछले आम चुनावों का ढेर सारा अनुभव हमारे सामने मौजूद है। चुनाव की भ्रष्टता खत्म हो और चुनावों में धन की शक्ति का प्रभाव समाप्त किया जाए। स्वच्छ और योग्य व्यक्ति भी चुनाव लड़ सकें, ऐसी व्यवस्था की जाए।

6. सभी प्रकार की लाइसेंस व परमिट प्रणाली को समाप्त किया जाए।

7. प्रशासनिक ढाँचे में सुधार के साथ-साथ कर्मचारियों के वेतन-क्रम भी सुधारे जाएँ। नीचे वेतन-क्रम रखकर शायद सरकार खुद ही मानकर चलती है कि उसके विशिष्ट विभागों के कर्मचारी अपनी ऊपर की आमदनी से अपना काम चलाएँगे, यह गलत है। वेतन-क्रम ऐसे हों कि प्रत्येक पद के कर्मचारी अपने जीवन के उचित व सम्मानपूर्ण स्तर को बनाए रख सकें, तभी वे भ्रष्टाचार की ओर प्रेरित होने से बच पाएँगे।

8. भ्रष्टाचार के दोषियों की जाँच शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए और अपराध की गम्भीरता के अनुसार व्यक्ति को शीघ्र व कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसे प्रशासनिक व न्यायिक निर्णय का व्यापक प्रचार भी किया जाना चाहिए।

9. लोकपालों की नियुक्ति अविलम्ब होनी चाहिए और उन्हें जाँच सम्बन्धी तथा न्यायिक अधिकार दिए जाने चाहिए।

10. आने वाले पीढ़ियों के चरित्र-निर्माण की विशिष्ट संस्थाएँ विकसित की जानी चाहिए। इसमें शिक्षा-प्रणाली को सुधारना होगा।

11. सांस्कृतिक क्षेत्रों के मूल्यों में स्पष्टता लानी होगी। यह कार्य समाज सेवी संस्थाएँ अनुशासन व प्रचार द्वारा करें।

12. शीर्षस्थ राजनेताओं और अफसरों को अपने आचरण को सभी सन्देहों से ऊपर सिद्ध करना होगा। प्रो० गुन्नार मिर्डल (का मत सही है कि भ्रष्टाचार से लड़ाई बिलकुल निराशाजनक है, यदि शीर्ष स्तरों पर उच्च पैमाने पर ईमानदारी और सत्यनिष्ठा नहीं है।

एट्जियोनी ने विकासोन्मुख समाजों में भ्रष्टाचार-निरोध की समस्या पर विचार व्यक्त करते हुए बड़ी सही बात लिखी है। उनके मतानुसार, ''बुराइयों के स्रोत को, सहभागियों की शिक्षा व

संस्कृति के परिवर्तन द्वारा और इस भाँति उनकी मनोवैज्ञानिक संरचना को बदलकर ही समाप्त किया जा सकता है जो एक लम्बी प्रक्रिया है।''

7.11 शब्दावली

भ्रष्टाचार—अपने अथवा अपने सगे सम्बन्धियों, परिवार वालों और मित्रों के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई आर्थिक अथवा अन्य लाभ उठाना भ्रष्टाचार कहलाता है।

7.12 अभ्यास प्रश्न

1. भ्रष्टाचार को परिभाषित कीजिए तथा इसके कारणों एवं परिणामों को समझाइए।

2. भ्रष्टाचार को रोकने के उपाय लिखें।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Brooks, Robert C., **Corruption in American Politics and Life**, New York : Dodd, Mead and Company, 1910.
2. Burt, C., **The Young Delinquent**, London : University of London Press, 1938.
3. Dwivedy, S. and G. S. Bhargava, **Political Corruption in India**, New Delhi : Popular Book Service, 1968.
4. Elliott, M. A. and F. E. Merrill, **Social Disorganization**, New York : Harper and Brothers, 1941.
5. Etzioni, Amitai, **Modern Organizations**, New Delhi : Prentice Hall of India (Pvt.) Ltd., 1965.
6. Ghurye, G. S., **Caste, Class and Occupation**, Bombay : Popular Book Depot, 1961.
7. Gillin, J. L. and J. P. Gillin, **Cultural Sociology**, New York : The Macmillan Company, 1948.
8. Gist, N. P. and L. A. Halbert, **Urban Sociology**, New York : Crowell, 1933.
9. Giselher Wirsing, **The Indian Experiment : Key to Asia's Future**, New Delhi : Orient Longman, 1972.
10. Haikerwal, B. S., **Economic and Social Aspects of Crime in India**, London : Allen and Unwin, 1934.
11. Landis Paul H. and Judson T. Landis, **Social Living : Principles and Problems in. Introductory Sociology**, Boston : Ginn & Co., 1938.
12. Majumdar, D. N., **Races and Cultures of India**, Bombay : Asia Publishing House, 1961.
13. Michael, J. and M. J. Adler, **Crime, Law and Social Science**, London : Kegan Paul, 1933.

14. Monteiro, J. B., **Corruption Control of Maladministration**, Bombay : Manaktalas, 1966.
15. Neumeyer, Martin H., **Juvenile Delinquency in Modern Society**, New York : D. Van Nostrand Co. Inc., 1956.
16. Panikkar, K. M., **Hindu Society at Cross Roads**, Bombay : Asia Publishing House, 1967.
17. Puneker, S. D. and Kamla Rao, **A Study of Prostitutes in Bombay**, Bombay : Albed Publishers, Ltd., 1962.
18. Quinn, James A., **Human Ecology**, New York : Prentice-Hall, 1950.
19. Sellin, T., **Culture, Conflict and Crime**, New York : Social Science Research Council, 1938.
20. Sethna, M. J., **Society and the Criminal**, Bombay : Leaders Press Ltd., 1952.
21. States, S. J., **Corruption in the Soviet System and Problems of Communism**, Vol. 28, No. 1, January-February, 1972, U. S. A. Washington.
22. Sutherland, E. H., **White Collar Crime**, New York : Dyrden, 1949.
23. Sutherland, E. H., "White Collar Criminality" in **American Sociological Review**, Vol. 5. No. 1 1940.
24. Tappan, P. W., Crime, **Justice and Correction**, New York : McGraw-Hill, 1960.
25. योगेन्द्र सिंह, ''भ्रष्टाचार का समाजशास्त्र'', **राष्ट्रीय सहारा** (हस्तक्षेप), 31 मार्च, 2001, पृष्ठ 3

इकाई– 8

सामाजिक विचलन – अर्थ, परिभाषा और प्रकार

Social Deviance

8.0 इकाई का उद्देश्य

8.1 परिचय

8.1.1 सामाजिक विचलन की अवधारणा

8.1.2 सामाजिक विचलन का अर्थ एवं परिभाषा

8.1.3 सामाजिक विचलन की विशेषतायें

8.1.4 सामाजिक विचलन के कारण

8.1.5 विचलित व्यवहार का समाजशास्त्र

8.2 सार संक्षेप

8.3 पारिभाषिक शब्दाबली

अभ्यास प्रश्न – लघु विस्तृत

8.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

8.0 इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक विचलन के बारे में प्रकाश डाला गया है जिसमें सामाजिक विचलन की अवधारणा के साथ–साथ सामाजिक विचलन की परिभाषायें प्रस्तुत की गई है। जिसमें बताया गया है कि विचलन एक आवरणपूर्ण शब्द है जो प्रतिभा तथा साधुता से लेकर अपराध एवं पागलपन, विद्रोह तथा सनकीपन सभी कुछ को आच्छादित कर लेता है। वास्तव में कोई भी व्यवहार जो सामाजिक प्रत्याशाओं का उल्घंन करता है विचलित

व्यवहार के रूप में चिन्हित किया जाता है। प्रस्तुत इकाई में विचलन की प्रमुख विशेषतायें विचलन के कारण एवं विचलित व्यवहार का समाज शास्त्र पर एक वृहद चर्चा प्रस्तुत करता है।

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित को जान सकेगें –

1. सामाजिक विचलन की अवधारणा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
2. सामाजिक विचलन का अर्थ एवं परिभाषा को लिख सकेगें।
3. सामाजिक विचलन की प्रमुख विशेषताओं के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
4. सामाजिक विचलन के कारणों को लिख सकेगें।
5. विचलित व्यवहार के समाज शास्त्र पर प्रकाश डाल सकेगें।

8.1 परिचय

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक विचलन के बारे में बताया गया है जिसमें बताया गया है कि समाज में ऐसे व्यक्ति और समूह विद्यमान होते हैं जो सामाजिक आदर्शों का अनुपालन ही नहीं करते तथा जो सामाजिक मानदण्डों के खिलाफ कार्य करते हैं। उन्हें ही सामाजिक विचलन की श्रेणी में रखते हैं। फैशन या नई शैली के नाम पर अनेक ऐसे व्यवहार भी होते हैं जो समाज के प्रचलित आदर्शों के अनुरूप नहीं होते है लेकिन फिर भी समाज उन्हें अपराध की संज्ञान नहीं देता बल्कि अपनी अप्रत्यक्ष सहमति से बने रहने देता है। इस प्रकार सामाजिक विचलन तब पैदा होता है जब वह स्वीकृत आदर्शों से हटा हुआ होता है और एक ऐसा कार्य हो जिसके बारे में समुदाय उग्र महसूस करता है। इतना उग्र की ऐसी प्रतिक्रियायें करता है कि उस विचलित व्यवहार को होने ही न दिया जाये या फिर नियंत्रित कर दिया जाये। अतः हम कह सकते हैं कि वे व्यवहार जो समाज द्वारा सहमति से अनुपालित न होते हों सामाजिक विचलन की श्रेणी में आते हैं। इसी को

ध्यान में रखते हुए सामाजिक विचलन के विभिन्न आयामों की चर्चा प्रस्तुत इकाई में की गई है।

8.1.1 सामाजिक विचलन की अवधारणा

प्रत्येक समाज में ऐसे व्यक्ति और समूह विद्यमान होते हैं जो सामाजिक आदर्शों का अनुपालन ही नहीं करते। भारत में सरकार द्वारा प्रतिवर्ष चोरी, डकैती, आत्महत्या, नशाखोरी, जुआ, बलात्कार आदि के सम्बन्ध में आँकड़े प्रकाशित किए जाते हैं। ऐसा सभी समाजों में होता है। फैशन या नई जीवन शैली के नाम पर अनेक ऐसे व्यवहार भी होते हैं जो समाज के प्रचलित आदर्शों के अनुरूप नहीं होते। समाज भी उन्हें अपराध की संज्ञा नहीं देता वरन् अपनी अप्रत्यक्ष सहमति से बने रहने देता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विचलन के प्रति समाज की प्रतिक्रियाएँ भिन्न–भिन्न हो सकती है। स्वाभाविक प्रश्न उठते हैं कि विचलन कौन सा व्यवहार है ? वह क्यों होता है ? उसके समाज के लिए क्या परिणाम होते हैं ? अब हम इन्हीं मुख्य प्रश्नों पर विचार करेंगे।

8.1.2 सामाजिक विचलन का अर्थ एवं परिभाषा

विचलन उतना ही पुराना है जितना कि मानव समाज। प्रत्येक युग में विचलन होता रहा है और समाज उसके रोकथाम की व्यवस्था करता रहा है। इस व्यवस्था के होते हुए भी यदि किसी ने विचलन किया तो समाज ने उसे दण्डित किया। उदाहरणार्थ, रामायण के नायक राम के युग में एक ऐसी घटना आती है कि शम्बूक नामक शूद्र वेद–मंत्रों के उच्चारण सहित घोर तपस्या कर रहा था। उसका यह व्यवहार वर्ण धर्म के अनुकूल नहीं था क्योंकि शूद्रों को इस प्रकार से तपस्या करने का अधिकार नहीं था। शम्बूक अपराधी घोषित किया गया, वह विचलन का दोषी था। महाराजा राम ने उसे प्राण दण्ड दिया। इससे यह भी सिद्ध होता है कि विभिन्न कालों में विचलन

कहे जाने वाले व्यवहारों की स्थिति बदल भी सकती है। जैसे आधुनिक युग में कोई निम्न जाति का व्यक्ति इस प्रकार तपस्या करता है तो वह कदापि विचलनकर्ता नहीं कहा जाएगा। इस भाँति, किसी भी व्यक्ति या समूह का कोई भी व्यवहार, जिसे करने की समाज उनसे आशा नहीं करता, सामाजिक विचलन कहा जाता है। प्रमुख विद्वानों ने इसे निम्नांकित शब्दों में परिभाषित किया है – इंकलिस के अनुसार, ''सामाजिक विचलन तब पैदा होता है जब वह स्वीकृत आदर्शों से हटा हुआ हो और एक ऐसा कार्य हो जिसके बारे में समुदाय उग्र महसूस करता है, इतना उग्र कि ऐसी प्रतिक्रियाएँ करता है कि उस विचलित व्यवहार को होने ही न दिया जाए या फिर नियन्त्रित कर दिया जाए।'' इस भाँति, इंकलिस के अनुसार सामाजिक विचलन वही व्यवहार कहा जाएगा जो समाज की कड़ी प्रतिक्रिया का विषय बन जाए और समाज इसे रोकने या नियन्त्रित करने के लिए तत्पर हो उठे। दूसरे शब्दों में, यह व्यवहार समाज के प्रमुख मूल्यों की दृष्टि से हटकर ही नहीं है वरन् अपकारी भी है।

फैडरिको के अनुसार, ''समाजशास्त्री इस शब्द का प्रयोग किसी भी उस व्यवहार के लिए करते हैं जो समाज की प्रत्याशाओं का उल्लंघन करता है।'' इस परिभाषा में वे सभी व्यवहार सम्मिलित है जो समाज के अन्य सदस्यों द्वारा असाधारण, अप्राकृतिक, अप्रचलित व अनैतिक हैं या सीधे और साफ नहीं समझे जाते। फैडरिको जैसे विद्वानों ने सामाजिक विचलन को व्यापक अर्थों में परिभाषित किया है। उनके अनुसार प्रत्येक विचलन समाज की कड़ी प्रतिक्रिया भी आमन्त्रित करता है। लाईट तथा कैलर के अनुसार, ''विचलन एक आवरणपूर्ण शब्द है जो प्रतिभा तथा साधुता से लेकर अपराध एवं पागलपन, विद्रोह तथा सनकीपन सभी कुछ को आच्छादित कर लेता है। वास्तव में, कोई भी व्यवहार जो सामाजिक प्रत्याशाओं का उल्लंघन करता है, विचलित व्यवहार के रूप में चिन्हित किया जा सकता है।''

अतः स्पष्ट है कि विचलन की परिभाषा समाज विशेष के सन्दर्भ में ही की जा सकती है। विचलन वह व्यवहार है जो उस समय के अधिसंख्यक सदस्यों द्वारा अस्वीकृत है व जिसके विरूद्ध कार्यवाही की जानी चाहिए।

8.1.3 सामाजिक विचलन की विशेषतायें

विचलन की उपर्युक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर इसकी निम्नांकित विशेषताएं स्पष्ट होती हैं –

1. **अर्थ की व्यापकता** – यह एक व्यापक अर्थ वाला शब्द है जिसमें एक नहीं अनेक प्रकार के व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है। किसी भी समाज में विचलित व्यवहार की सूची बना देना कठिन ही नहीं प्रायः असम्भव भी है।

2. **सामाजिक आदर्शों द्वारा परिभाशित** – कोई भी व्यवहार अपने में विचलन नहीं होता अपितु वह तो सामाजिक आदर्शों की कसौटी पर ही विचलन अथवा अनुपालन कहा जाएगा। उदाहरणार्थ, सिपाही भी दंगाइयों पर गोली चलाता है और उससे मानव–वध भी होता है, परन्तु उसे हत्या करने का अपराधी नहीं माना जा सकता है जबकि अन्य व्यक्तियों द्वारा किया जाने वाला ऐसा व्यवहार निश्चित ही विचलन व हत्या कहा जाएगा।

3. **परिभाशा की परिवर्तनशीलता** – विचलन की परिभाषा समयानुसार बदलती रहती है। उदाहरणार्थ, कभी सती होने वाली स्त्री देवी के रूप में प्रतिष्ठित थी तो आज कोई भी स्त्री यदि अपने मृत पति के शव के साथ जलने का प्रयास करेगी तो आत्महत्या की दोषी मानी जायेगी और दण्डनीय होगी।

4. **सांस्कृतिक विभिन्नताएँ** – विचलन की परिभाषा एक ही समाज में दो भिन्न कालों में या उसके दो विभिन्न वर्गों में ही भिन्न–भिन्न नहीं

होती वरन् विभिन्न संस्कृतियों में भी एक ही कार्य के प्रति विभिन्न दृष्टिकोण हो सकते हैं। उदाहरणार्थ, कुछ अरब देशों में पुरूष समलैंगिक व्यवहार विचलन नहीं माना जाता, जबकि हमारे देश में यह अप्राकृतिक मैथुन माना जाता है जोकि दण्डनीय अपराध है। कनाडा में तो समलैंगिक विवाह को भी सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है।

5. **स्पष्टीकरण भी परिवर्तनशील** – विचलन की परिभाषा ही नहीं बदलती, बल्कि विचलित व्यवहार के स्पष्टीकरण भी बदलते रहते हैं। उदाहरणार्थ, लाइट तथा कैलर ने अमेरिकी समाज में समलैंगिकता के स्पष्टीकरण की परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में लिखा है कि कभी इसे प्रकृति के विरुद्ध अपराध, पाप या भ्रष्टता माना जाता था जिसका आशय था कि दोषी व्यक्ति नैतिक रूप से सज्जन व्यक्तियों के बीच जीने के लिए अनुपयुक्त है। बाद में इसे मानसिक रोग माना जाने लगा जो ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण बाध्यता पैदा कर देता है कि व्यक्ति ऐसा कार्य कर बैठता है परन्तु मनोचिकित्सा से इसका उपचार किया जा सकता है। परन्तु सन् 1974 में अमेरिकी मनोचिकित्सा संघ ने यह घोषित किया कि यह कोई मानसिक रोग नहीं है, बल्कि मनुष्य की लैंगिक अभिरूचि में गड़बड़ी है।

6. **सम्बन्धित व्यक्ति की प्रस्थिति से प्रभावित** – विचलन के निर्धारण में ऐसे व्यवहार करने वाले व्यक्तियों की सामाजिक प्रस्थिति भी प्रभाव डालती है। उदाहरणार्थ, अमीरों के लिए भोजन से पहले मदिरा का सेवन करना एक सामाजिक परम्परा का विषय है, अमीरों का शोक है, परन्तु गरीबों के लिए यही काम व्यवहार का दोष है और उसे शराबी कहा जाता है। सच तो यह है कि विचलन का निर्धारण आंशिक रूप से सामाजिक शक्ति का विषय भी है। जो लोग शक्ति की स्थिति में होते हैं और अपने निर्णयों को लागू कर सकते

हैं, वे ही इस बात को तय करते हैं कि किस आचरण को उचित कहा जाए और किस आचरण को विचलन।

8.1.4 सामाजिक विचलन के कारण

व्यक्ति विचलन क्यों करता है ? विचलन के कारणों को लेकर विभिन्न मद प्रस्तुत किये गये है। विचलन के कारणों को तीन प्रमुख श्रेणियों में बाँटा गया है जो अग्रलिखित है –

1. **जैविकीय कारण** – जैविकीय कारणों में हम उन सभी कारणों को सम्मिलित कर सकते हैं जो व्यक्ति ने जन्मजात शारीरिक लक्षणों या दोषों को विचलन के लिए उत्तरदायी होते हैं। वास्तव में जैविकीय कारकों में अपराधियों में स्पष्ट शारीरिक लक्षण होते हैं। उनके विकास में ही त्रुटि होती है। जैसे ज्यादातर अपराधियों की गालों की हड्डियां उभरी हुई होती है, जब्र चौड़े होते हैं, खोपड़ी चौड़ी होती है, नतुथने फुले हुये होते है, ये लोग पीढ़ा से अप्रभावित होते हैं। इनमें इच्छा प्रबल होती है कि अपने शिकार न केवल अंग–भंग किया जाये बल्कि उनके प्राण भी हरण कर लिये जाये।

2. **मनोवैज्ञानिक कारण** – मनो विश्लेषण बादियों ने फ्रायड का अनुकरण करते हुये विचलन का मनोवैज्ञानिक कारण प्रस्तुत किया है। उनके मतानुसार विचलित व्यवहार दमित इच्छाओं और कुण्ठाओं का परिणाम है। वह व्यक्ति जो अपने शैशव काल में अपने को उपेक्षित महसूस करता है या माता–पिता द्वारा दुर्व्यवहार का शिकार महसूस करता है, बड़े होकर अन्य व्यक्तियों के साथ भी सन्तुलित व्यवहार नहीं कर पाता। ऐसे व्यक्ति अन्यों की दृष्टि में किसी काम के परिणामों को नहीं देखते। वे विचलित व्यवहार करते हैं क्योंकि वे तो अपने शिकार की दृष्टि से सोचते ही नहीं। अल्बर्ट बान्दुरा ने भी अपने अध्ययनों में पाया कि वे बालक जो निरन्तर कड़े अनुशासन में

पलते हैं या जो माता–पिता के अतिरिक्त प्यार के वशीभूत होते हैं। वे भी अपने में केन्द्रित हो जाते हैं और विचलित व्यवहार करते हैं।

3. **समाजशास्त्रीय कारण** – वास्तव में विचलन का अध्ययन दुर्खीम द्वारा ही प्रारम्भ कर दिया गया था जब उन्होनें अपनी पुस्तक सामाजिक अप्रतिमानता की व्याख्या प्रस्तुत की। मर्टन ने उनकी विचार धारा को और आगे बढ़ाया। मर्टन के अनुसार सामाजिक संरचना अपने सदस्यों के सम्मुख व्यवहार के लिये सांस्कृतिक लक्ष्य ही प्रस्तुत नहीं करती। वरन् उनकी प्राप्ती के लिए संस्थागत साधनों को भी निर्धारित कर देती है। यदि कोई व्यक्ति संस्कृति द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में संस्थागत उपायों को ही अपनाता है तो वह अनुपालन कर रहा होता है। अन्य परिस्थितियों में अप्रतिमानता की स्थिति होती है जोकि विचलित व्यवहार की ओर ले जाती है।

8.1.5 विचलित व्यवहार का समाजशास्त्र

विचलित व्यवहार असामान्य व्यवहार को कहते हैं। अन्य शब्दों में, यह एक ऐसा व्यवहार है जो समाज के सदस्यों के सामान्य व्यवहार से अलग है। विचलित व्यवहार का अर्थ समाज के भिन्न वर्गों के लिए भिन्न–भिन्न हो सकता है तथा इसीलिए इसकी परिभाषा उस समूह द्वारा दी जाती है जो सामाजिक, राजनीतिक अथवा आर्थिक दृष्टि से प्रबल होता है। सामान्यतः सामाजिक रूप से विचलित व्यक्ति उसे कहते हैं जो समूह, संगठन, संस्था अथवा समाज के व्यवहार के सामाजिक नियम या कानून को तोड़ता है। अतः यह एक ऐसा व्यवहार है जो पहले तो खतरनाक नहीं होता अपितु बाद में अपराधों को प्रोत्साहन दे सकता है। समाजशास्त्र की जिस शाखा में विचलित व्यवहार का अध्ययन किया जाता है उसे 'विचलित व्यवहार का समाजशास्त्र' कहा जाता है।

सेलिन ने अपराध की व्याख्या अपराधी व्यवहार को आधार मान कर दी है। इनके अनुसार सांस्कृतिक जीवन में होने वाला संघर्ष विचलित व्यवहार को प्रोत्साहन देता है। वास्तव में, विचलित व्यवहार संस्कृति द्वारा ही परिभाषित होता है तथा इसके द्वारा ही निर्धारित होता है। अतः यह किसी सांस्कृतिक मान्यताओं या सामान्य व्यवहार प्रतिमानों के विपरीत किया गया कार्य है। अतः समूह इन प्रतिमानों को तोड़ने वालों का प्रतिरोध करते हैं। यह प्रतिरोध कम या अधिक मात्रा में हो सकता है तथा उस व्यवहार नियम पर आधारित है जिसे तोड़ा गया है।

प्रो0 सुशील चन्द्र ने भारत में विचलन के समाजशास्त्र में तीन प्रमुख पहलुओं को सम्मिलित किया है। ये हैं –

1. बाल निराश्रयता;
2. भिक्षावृत्ति; तथा
3. जातीय दूरी तथा पृथक्करण।

के0 एस0 शुक्ला ने भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद के लिए लिखे प्रवृति लेख में विचलित व्यवहार के समाजशास्त्र में निम्नांकित पहलुओं को सम्मिलित किया है –

1. पुरूषों में विचलन;
2. स्त्रियों में विचलन;
3. बालकों में विचलन;
4. आत्महत्या;
5. गैर–अधिसूचित समुदाय तथा विचलन;
6. मादक द्रव्य व्यसन तथा मद्यपान; तथा
7. सुधार।

पुरूषों में विचलन अनेक रूपों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ, संघर्ष तथा तनाव से लेकर मानसिक दुर्बलता एवं अपराध तक इसमें सम्मिलित है। स्त्रियों में विचलन से सम्बन्धित सर्वाधिक अध्ययन देवदासी प्रथा, काल गर्ल, वेश्यावृत्ति तथा अपराधी महिलाओं के बारे में हुए हैं। किशोरों अथवा बालकों में विचलन सम्बन्धी अध्ययन मुख्य रूप से बाल अपराधियों, बाल भगोड़ों, इत्यादि पर ही किए गए है। आत्महत्या पर भारत में अनेक अध्ययन हुए है। गैर–अधिसूचित समुदायों में मुख्यतः भूतपूर्व अपराधी जनजातियों में सामाजिक विचलन को सम्मिलित किया जाता है। मादक द्रव्य व्यसन तथा मद्यपान के बारे में अनेक सामाजिक वैज्ञानिकों ने उल्लेखनीय कार्य किए है। सुधार से सम्बन्धित अध्ययनों में के0एस0 शुक्ला ने किसी संस्था के भीतर रहने वालों में सुधार सम्बन्धी तथा सुधार प्रशासन सम्बन्धी अध्ययनों को सम्मिलित किया है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पाठ्य सामग्री से कीजिए।

1. सामाजिक विचलन की अवधारणा लिखिए।

.....

.....

.....

2. सामाजिक विचलन की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 1

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए। क) सामाजिक विचलन के कारण ख) विचलित व्यवहार का समाज शास्त्र

.....

.....

.....

.....

8.2 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में सामाजिक विचलन की अवधारणा के बारे में प्रकाश डाला गया है जिसमें बताया गया है कि सामाजिक विचलन वह है जो सामाजिक आदर्शों के अनुरूप न हो। इसी इकाई में सामाजिक विचलन का अर्थ एवं परिभाषाओं को प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत इकाई में सामाजिक विचलन की प्रमुख विशेषताओं का वृहद वर्णन प्रस्तुत किया गया है। जिससे सामाजिक विचलन को समझने में आसानी होगी। प्रस्तुत इकाई में ही विचलन के कारणों जैसे जैविक कारण, मनोवैज्ञानिक कारण, तथा समाज शास्त्रीय कारणों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। अन्त में विचलित व्यवहार के समाज शास्त्र के बारे में भी ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।

8.3 पारिभाषिक शब्दावली

1. सामाजिक विचलन – सामाजिक विचलन तब पैदा होता है जब वह स्वीकृत आदर्शों से हटा हुआ हो और एक ऐसा कार्य हो जिसके बारे में समुदाय उग्र महसूस करता हो, इतना अग्र कि ऐसी प्रतिक्रियायें करता है कि उस विचलित व्यवहार को होने ही न दिया जाय या फिर नियंत्रित कर दिया जाय।

अभ्यास प्रश्न –

लघु

1. सामाजिक विचलन की अवधारणा लिखिए।
2. सामाजिक विचलन की परिभाषा पर प्रकाश डालिये।
3. सामाजिक विचलन की विशेषताओं के बारे में लिखिए।
4. सामाजिक विचलन के कारणों की चर्चा कीजिए।

विस्तृत

1. सामाजिक विचलन की अवधारणा देते हुए सामाजिक विचलन के कारणों की विवेचना कीजिए।
2. सामाजिक विचलन की परिभाषा लिखते हुए विचलित व्यवहार के समाज शास्त्र पर एक निबन्ध लिखिए।

8.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ऐलेक्स इनकेल्स, व्हॉट इज सोशियोलॉजी ? पेज 97.
2. हैरी एम जॉनसन्स, सोशियोलॉजी : ए सिस्टेमेटिक इन्ट्रोडक्सन्स पेज 522.
3. पीटर वर्गर, इनवीटेशन टू सोशियोलॉजी, पेज 122.

इकाई - *09*

अपराध तथा सफेदपोश अपराध

Crime & White Collar Crime

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उददेश्य

9.2 अपराध की व्याख्या

9.2.1 अपराध की समाजशास्त्रीय व्याख्या

9.2.2 अपराध के कारण

9.2.3 अपराध के विशिष्ट कारण

9.2.4 अपराध निरोध के उपचार

बोध प्रश्न

9.3 **सफेदपपोश या अभिजात अपराध**

9.3.1 **श्वेतवसन अपराध के लक्षण**

9.3.2 **अभिपात अपराध के स्वरूप**

9.3.3 प्रमुख वर्ग

9.4 अपराधियों का सुधार

9.4.1 न्यायालय व् पुलिस

9.4.2 परिवीक्षा

9.4.3 पेरोल

9.4.4 बाल न्यायालय

9.4.5 नजरबन्दी ग़ह

9.4.6 कारागार सुधार

9.5 सारांश

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना -:

समाज मानव संबंधों पर आधारित है तथा यह एक बहुत जटिल व्यवस्था है। प्रत्येक व्याक्ति का अपना हित तथा स्वार्थ सर्वोपरि रहता है। हालॉकि समय ने कुछ नियम कानून, आदर्श तथा व्यावहार प्रतिमानों को सामाजिक बनने हेतु प्रतिपारित किया है, ताकि मानव किसी दूसरे पर अपने स्वार्थ सिद्धी हेतु आक्रमण ना करे तथा संतुलित व्यतवहार ही करें। परन्तु हर एक समाज में प्राय: कुछ ऐसे व्यक्ति भी पाए जाते हैं, जो इन नियमों कानूनो को नहीं मानते और सामाजिक, सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रभावों के कारण प्रतिकूल व्यवहार का भी प्रदर्शन करते रहते हैं। और इसी तरह से व्यवहार को 'समाज विरोधी' कहा जाता है तथा अपराध की ओर उन्मुख कहा जा सकता है।

9.1 उद्देश्य :

इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य आपको समाज में रहने हेतु नियम कानून से चलने हेतु कुछ समाज सेवी तथा समाज विरोधी मानव व्ययवहार को समझाना है। आप इस अध्याय ,द्वारा अपराध की रूपरेखा , स्वरूप तथा उसके पड़ने वाले दुस्प्रभावो को भी जान पाएगें। अपराध तथा सफेद पोश अपराध किसे कहते है इस अर्थ को भी आप करीब से महसूस कर पाएगें और यही एक पूरे अध्याय का उद्देश्य होगा एक विद्धार्थी के लिए।

9.2 अपराध की व्याख्या (कानूनी स्वरूप)

जब अपराध की विवेचना कानूनी दृष्टि से की जाती है तो उसमें निम्न दो गुणों को सम्मिलित किया जाता है जो निम्नलिखित है -:

1. जान बूझ कर किया गया व्यवहार

तथा

2 . अपराधी नियत

कुछ वैद्यानिक परिभाषाएँ निम्न है -:

''कोई सार्वजनिक कानून जो किसी व्यनवहार के करने पर प्रतिबंध लगाता है या ऐसा करने की अवज्ञा देता है ,उसके उल्लंसघन स्वरूप किया गया व्यवहार अपराध है।'' 'ब्लैकस्टोनन'

'अपराध कानून का उल्लंघन है '-''**हैकरबाल**'

'अपराध वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्बनन्धित है। कानून का उल्लंघघन करने वाला ही अपराधी व्यवहार है ''**-सदरलैण्ड**''

9.2.1 अपराध की समाजशास्त्री्य व्याख्या -:

अपराध हेतु कौन जिम्मेदार है? इसका उत्तर सामान्य रूप से निम्न होगा - कि एक तो 'व्यक्ति' जिसने किया अपराध तथा दूसरा 'समाज' जिसके कारण यह घटित हुआ।

''अपराध की सामाजिक व्याख्या इस बात पर आधारित है कि समाज अपराध के लिए उत्तरदायी है।'' महात्मा गॉधी के अनुसार ''समाज का कर्तव्य है कि उन लोगो के प्रति जो निश्चित रीतियों और परम्पराओं के विरूद्ध काम कर बैठते है, हृदयहीन सौतेली मॉ जैसा व्यवहार न करे। इस प्रकार के अपराध भिन्न प्रकार की बिमारियॉ हैं। '' समाजशास्त्री दृष्टिकोण से ऐसा कोई भी कार्य जो सामाजिक हित के विपरीत है अपराध के अर्न्तरगत आता है। कोई भी यदि समाज के विपरीत हो और कानून उसे अपराध न माने तो भी समाज शास्त्रीय दृष्टि से वह अपराध है। ''सदरलैण्ड'' ने उचित ही कहा है कि अपराधी कानून को समाप्त कर देने से अपराधों के नाम और उनके करने पर दण्ड अवश्य ही बदल जाएगें परन्तु ऐसे कार्यों के विरूद्ध सामाजिक प्रतिक्रिया वास्तव में अपरिवर्तित ही रहेगी क्यों कि ऐसे कार्यों के द्वारा सामाजिक हितों को उतनी ही हानि पहुॅचने की सम्भाधवना होगी। दूसरे शब्दों में सामाजिक जीवन में सदैव ही ऐसे कुछ व्यवहार होंगे जिन्हें करने की स्वीकृति समाज अपने किसी भी सदस्य को न देगा और अपने अस्तित्व के लिए हानिकारक समझेगा और इस कारण ऐसे कार्यों को करने वाले को दण्ड देने की व्यवस्था भी अपने ढंग से करेगा। निम्नलिखित परिभाषा से ये बात और भी स्पष्ट हो जाएगी।

''अपराध उन प्रचलित रीतियों को तोडना है जो दण्ड की अभिमति के अभ्यास को जन्म देती है'' ब्राउन

''जब किसी व्यक्ति का आचरण असामाजिक ठहराया जाता है, तो उसका आचरण उस अन्य आचरण से, जो उस समूह के द्वारा उस स्थिति में निश्चित होता है, भिन्न होता है'' इलियट तथा मैरिल

9.2.2 अपराध के कारण

अपराध के विषय में पहले जो धारणाएँ प्रचलति रही हो परन्तु अब सामान्य रूप से विद्वानोंका यह निष्कर्ष हुआ कि अपराध के लिए कोई एक विशेष् कारण उत्तरदायी नहीं है। इसमें अनेक कारण सन्निहित हैं जैसे पर्यावरण, आर्थिक स्थिति, बेरोजगारी आदि।

अब यह मान्य हो गया है कि अपराधी जन्मजात नहीं होते हैं। आधुनकि विचारधारा के अनुसार अपराधी भी एक प्रकार का रोगी है और उसका भलिभांति उपचार किया जाय तो वो भी समाज में समायोजित होने के लायक हो सकता है।

भारत में अपराध के कारण -:

मुख्यत -: दो कारणों में बॉटा जा सकता है इन्हें :

1. सामान्य- कारण 2. विशिष्ट कारण

सामान्य कारणों के अर्न्तगत दो कारण आते है जो सामान्यत हर एक देश में एक ही प्रकार के होते है जो कि निम्नलिखित हो सकते है .

सामान्य कारण

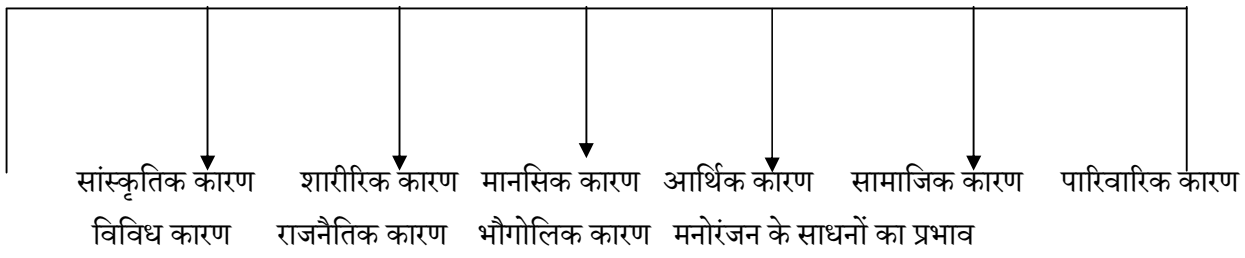

1 सांस्कृतिक कारण -:

प्राय एक संस्कृति के पालनहार दूसरी संस्कृति के रहन सहन के तरीके तथा विचारों केा स्वयं सरीखा नहीं मानते उसे अपराध स्वपरूप ले बैठते हैं।

इसके अर्न्तगत 'धर्म' तथा 'सामाजिक प्रथा' आती है।

2 शारीरिक कारण -:

वशांनुक्रमण स्वेलोम्ब्रों, गैटोफैली, फैटी आदि प्रास्पवादी संप्रदाय *(Typological School)* को मानने वाले अपराधयिों का मत है कि अपराधी जन्मो से ही ये गुण प्रवृत्ति ले के पैदा होता है। फिर शारीरिक बनावट भी इसके लिए कभी-कभी जिम्मेदार मानी जाती है, कहते है कि अपराधयिों की शक्ल सूरत कुछ विशेष प्रकार की होती है और उन्हे दूर से ही पहचाना जा सकता है परन्तु ये सिर्फ आक्रामक अपराधी ही हो सकते हैं।

3 मानसिक कारण -:

इसके अर्न्तगत कुछ विशेष प्रकार आते है जो निम्न है -:

क-:मानसिक दुर्बलता तथा दोष (बौद्धिक क्षमता कम होने से सही गलत का ज्ञान ना होने से अपराध हो जाते है।

ख:- चरित्रहीनता - यह एक आम बात है, हरेक समाज में ऐसे लोग पाए जाते हैं।

ग:- उद्वेगीय अस्थिरता तथा संघर्ष- इस तरह से व्यक्तियों के मानसिक संघर्ष के कारण भावना ग्रन्थियॉं निर्मित होना अपराधिक प्रवृत्ति को बढ़ाती हैं।

घ-: मानसिक बिमारियॉं इस स्थिति में विचार शक्ति का क्षीण होना इसका कारण है।

4 आर्थिक कारण -:

निर्धनता एक बहुत बड़ा कारण है अपराध का क्योंकि आर्थिक स्थिति से जूझते व्यक्ति की जरूरतों का पूरा न हो पाने पर यह स्थिति आ जाती है।

धन का लालच भी ये अपराध कराता है खासकर श्वेत वसन अपराधी इसी तरह के होते है। कुछ लोग बिना परिश्रम के ही धन की लालसा करते हैं तो भी वो अपराध की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

डॉ0 हैकरवाल ने ठीक ही लिखा है ''क्षुधा और भूखमरी'' उन्हे अपराध के सरल और कुटिल मार्ग पर चलने को प्रोत्साहित करती है।

5 सामाजिक कारण -:

सामान्य तौर पर सामाजिक धाराओ और मूल्यो मे संघर्ष होता है तो वह आपराधिक प्रवृत्ति का ज्न्म हो जाता है आधुनिक समाज मे मानव धन को अधिक महत्व देने लगा है और वो धन प्राप्ति हेतु हर प्रकार के प्रयास करता है और यह सोच समझ खो बैठता है कि वो सही है या गलत है इसी सम्बन्ध में सदरलैंण्ड का कहना है "अपराध अधिकांशतया सरलता से धन प्राप्त करने की इच्छा की उसी प्रकार की काल्पनिक अभिव्यक्ति है।"

6. पारिवारिक कारण :-

बाल्यकाल से ही घर मे माहौल का व्यक्ति का सर्वाधिक प्रभाव रहता है और नित्य प्रतिदिन जो वो अपने जीवन मे देखता सुनता है वही आत्मसात् कर लेता है यदि व्यक्ति आपराधिक प्रवृत्ति का हो जाता है तो उसमे परिवार का भी बहुत बडा (हिस्सा) भूमिका है जैसे यदि परिवार टूटा हुआ है, विखरा हुआ है माता पिता का अभाव, या दुव्यवहार का शिकार है आदि तो भी इसका प्रभाव व्यक्ति के चरित्र तथा व्यक्तित्व पर पडता है।

7. राजनैतिक कारण:-

राजनैतिक भ्रष्टाचारों जैसे सत्ताधारी लोगो का अपना स्वार्थ पूरा करना, कानूनों में परिवर्तन करना, अपराध करने वालों की सहायता करना आदि विभिन्न प्रकार के अपराध होते हैं। जैसे "दलबन्दी " गुटबाजी आदि। इसके अलावा यदि पुलिस विभाग में ही अनैतिकता हो तो कई तरह के अपराध आराम से फलते फूलते हैं। समाज में चूंकि अपराधियों को पता है कि कोई उन्हें रोकने टोकने के लिए है ही नही और वो बिन्दास अपराध करते हैं।

8. भौगोलिक कारण:-

भौगोलिक सम्प्रदाय के समर्थक अपराध शास्त्रियों का विचार हैकि अपराध , र आधारित होता है।जलवायु तथा मौसम प ,भौगोलिक स्थिति उनका विचार है कि गर्म देशों में शरीर के विरूद्ध और ठण्डे देशों में सम्पत्ति के विरूद्ध अपराध होते हैं। "लेकेसन" नामक

अपराधशास्त्री ने क्रिमिनल कैलेण्डर criminal colander के अनुसार जनवरी, फरवरी, मार्च और अप्रैल में शिशु हत्या, जुलाई में मानव हत्या तथा घातक आक्रमण, जनवरी व अक्टूबर में पितृ हत्या, मई, जुलाई, अगस्त में बच्चों के प्रति बलात्कार दिसम्बर में व फरवरी में सम्पत्ति के लिए सर्वाधिक अपराध होते हैं।

9. मनोरंजन के साधनों का प्रभाव:-

इस वर्ग में लिखित धाराऍं आती है -:

a) समाचार पत्र- रोचक भाषा सभी को अपनी ओर खींचती है।

b) चलचित्र (सिनेमा)- नए-नए तरीकों का आभास होता है, उसे अपनाना या अभ्यास करने का जूनून अपराध करवाता है।

c) उपन्यास- जासूसी कहानियां पढ पढ कर लोगों का दिमाग उलझ जाता है।

d) रेडियो तथा टेलीफोन- इनका प्रयोग भी कई बार अपराधिक कार्यों हेतु किया जाता है।

e) क्लब तथा होटल- आधुनिक विश्व में पाशविक पव़त्तियों को संतुष्ट करने के लिए क्लबों तथा होटलों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैा प्राय: श्वेतधारी अपराधी इन्हीं क्लबों और होटलों की सहायता से अपराध करते हैं।

विविध कारण -:

कई और तरह के अपराध भी विभिन्न कारणों से समाज में होते रहते है।

9.2.3. अपराध के विशिष्ट कारण (SPECIFIC CAUSES OF CRIME)

भारत देश में सामाजिक प्रथाओं के नाम पर कई जगह कुप्रथाओं का जाल बिछा हुआ है और इसी कारण अपराधों को बढ़ावा मिलता है। जिसमें से कुछ निम्न हैं :-

A) **दहेज प्रथा**- ना केवल हिन्दू समाज में बल्कि पूर्ण राष्ट्र में यह प्रथा व्याप्त है। कई बार धनाभाव के कारण मॉ-बाप अपनी कन्या किसी भी नालायक अथवा चरित्रहीन या अधेड व्यक्ति को सौंप देते हैं और इससे समाज में अव्यवस्था व्याप्त होती है।

B) **विधवा पुर्नविवाह निषेध प्रथा-** हिन्दुओं में इस कारण भी उनका जीवन अति दुखमय, तिरस्कारपूर्ण, अमानुषिक, आर्थिक रूप से कमजोर हो जाता है, और यही एक कारण है कि फिर लडकियां घर से भाग जाती है अथवा अनुचित यौन संबंध रखना, वैश्यावृत्ति, गर्भपात, अवैध संतान को जन्म देना आदि प्रकार के अपराधों का जन्म होता है।

C) **बाल विवाह प्रथा-** कई बार अपने पिता के उम्र के व्यक्ति से विवाह हो जाना भी कई अनैतिक व्यवहारों को जन्म देता है।

D) **आर्थिक कारण-** यह एक बहुत ही आम कारण है। जरूरतें बढ जाने पर अन्दाज ही नही रहता, कि क्या सही है और क्या नही? और इंसान अपराधी बन जाता है।

E) **औद्योगीकरण/नगरीकरण-** यह भी एक स्थान परिवर्तन होने के कारण मुख्य कारण के रूप में उभर गया। पलायन होने से स्थायीत्व ना होना इसका कारण बना।

F) **धार्मिक कारण, अन्धविश्वास, जादू तथा सांप्रदायिकता:-** हमारे देश में अपराध के उत्तरदायी धर्म अंधविश्वास, जादू भी हैं। इस देश के कुछ प्रदेश जैसे आन्ध्रा तथा मैसूर में मानमती नामक काला जादू बहुत प्रसिद्ध है जो कि अनेक नृशंस अपराध के लिए उत्तरदायी है।

9.2.4. अपराध निरोध के उपचार:-

कुछ समाजशास्त्रियों का विचार है कि यदि अपराधियों का बंध्याकरण (STRILIZATION) कर देना चाहिए ताकि आने वाली पीढी अपराधी ना बन के आए, और इसका कारण वो वंशानुगत मानते हैं।

वैसे निम्न उपाय करके अपराधों में कुछ कमी तो की ही जा सकती है :-

A) शिक्षा का प्रसार:- इसमें भौतिक तथा धार्मिक का स्थान मुख्य होना चाहिए, ताकि व्यक्ति अपने क़त्यों के जाल से बाहर आए तथा दिमाग से सही गलत का फैसला ले सके।

B) बुरी सामाजिक कुरितियों का निवारण:- जिन रीतियों से समाज में बुराइयों को बढावा मिलता है, उन्हें कुछ सख्त कानून बना कर दूर करना चाहिए।

C) सस्ते मनोरंजन के साधनों की उपलब्धता:- इस एक उपाय से लोगों को व्यस्त रखा जा सकता है, और लोगों का समय भी सस्ते मनोरंजन के साधनों में रच बस जाने से दिमागी खुरापात कम होगी, जिससे अपराधों में कमी आयेगी।

D) पूर्ण नशा निषेध:- ज्यादातर अपराध नशे की हालत में ही होते हैं। अतएव संपूर्ण रूप से नशाबंदी होना भी एक कारगर उपाय साबित हो सकता है। (सार्वजनिक रूप से)

E) भ्रष्टाचार का उन्मूलन:- मंत्रीगणों, अधिकारियों, उद्योगपतियों, व्यापारियों में फैले भ्रष्टाचार को समाप्त करना जरूरी है।

F) आर्थिक उनन्ति:- हरेक प्रदेश की मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना, प्रादेशिक उनन्ति ही इसका निवारण कर सकती है।

बोध-प्रश्न

1) अपराध की परिभाषा दो।

.....

.....

.....

.....

.....

2) अपराध के कारणों को बताएं।

.....

.....

.....

.....

.....

9.3 सफेदपोश या अभिजात अपराध (WHITE COLLAR CRIME)

प्रत्येक समाज में ऐसे लोग पाए जाते हैं जो बडे साधन संपन्न, धनी, प्रतिष्ठित तथा उंचे पदों पर आसीन होते हैं और ऐसे कार्यो में संलग्न होते हैं, जिन्हें कानून अपनाध की परिभाषा देता है , परन्तु इन सभी की अपनी पहुँच तथा शक्ति के कारण अपराधों का पता नही चल पाता अथवा पता चल कर के भी वो कानून की गिरफत से बच जाते हैं। और इसी वर्ग को हम श्वतेवसन, सफेदपोश अपराधी कहकर पुकारते हैं । सर्वप्रथम "सदरलैण्ड" ने ही "श्वेतवसन अपराध" शब्द का प्रयोग किया था । 1939 में "सदरलैण्ड" ने "White Collar Criminality" नामक लेख में अपराधियों की दो श्रेणियां बताई -

प्रथम- निम्न वर्ग के अपराधी

द्वितीय - अभिजात अपराधी

निम्नवर्गीय वो है जो आर्थिक रूप से कमजोर तथा गैर कानूनी कार्य कर के पकडे जाने पर सजा काटते हैं तथा अभिजात वर्गीय वो है जो उच्च प्रतिष्ठा वाले होते हैं, धनी होते हैं और वो कानून का उल्लघंन करके भी धन के जोर से बच जाते हैं और स्वार्थसिद्धि हेतु सरकार के उददेश्यों को विक़त कर देते हैं ।

इनकी परिभाषा के रूप में हम कह सकते है :-

"अभिजात अपराध एक ऐसा अपराध है जिसे कि सुप्रतिष्ठित एवं उच्च सामाजिक पद वाला एक व्यक्ति अपने पेशे के दौरान करता है ।" सदरलैण्ड

"श्वेतवसन अपराध प्राथमिक रूप से उस कानून का उल्लघंन है जो व्यवसायी पेशेवर लोग और राजनीतिज्ञों आदि जैसे समूहों द्वारा अपनी व्यवसाय के सम्बन्ध में किया जाता है ।" क्लिनार्ड

9.3.1 श्वेतवसन अपराध के लक्षण-

A) उच्च सामाजिक वर्ग का सदस्य होना ।

B) कानून भंग करने पर भी उनकी प्रतिष्ठा कम न होना

C) अपने अनुकूल कानूनों के निर्माण पर प्रभाव डालना

D) श्वेतवसन अपराध भी अन्य अपराधों की तरह समाज विरोधी या कानून विरोधी व्यवहार है तथा दण्डनीय है।

E) सदरलैण्ड के अनुसार "श्वेतवसन अपराध विश्वासघात पर आधारित है तथा इनकी प्रक़ति आर्थिक होती है।"

F) अदालतों तथा न्यायाधीशों को पैसे के बल पर अपने अनुसार ढाल लेना

G) एक विघटित समाजी नही बल्कि सामान्य आधारभूत मूल्यों वाला समाज तथा विविध मूल्यों "उपसमूह" (Sub-group) अभिजात अपराध को जन्म देते हैं।

9.3.2 अभिजात अपराध के स्वरूप (Forms)

A) व्यवसाय में धोखेबाजी।

B) रिश्वतखोरी

C) विज्ञापनों द्वारा भ्रम पैदा कर मुनाफा कमाना

D) पूंजी का गबन व जालसाजी

E) नाप तोल में धोखेबाजी

F) वस्तुओं को श्रेणीबद्ध करने में बेईमानी

G) दिवालिया होने की घटनाओं में पूंजी का गलत प्रयोग

9.3.3 श्वेतवसन अपराध के कारण

A) लोगो में लापरवाही :- जैसे- खरीददारी के वक्त चौकन्ना ना होना

B) व्यापारिक विज्ञापन :- जैसे- छोटे-छोटे अक्षरों में नियम कानून बनाकर छपवाना ताकि कोई भी पढे बिना ही कागजों पर हस्ताक्षर कर दे व ठगा जाय।

C) कानून की अनभिज्ञता :- बार-बार परिवर्तन आते रहने से लोगों के बीच जागरूकता आएगी और लोग शिक्षित होने पर अपने अधिकार जानेगें पर ये होता नही और वही घिसा पिटा कानून, स्थितियों के बदलने के बावजूद नही बदलता तो ऐसी स्थिति में अपराध होते हैं बढते हैं

D) बडे व्यापारिक निगम:- औद्योगीकरण के जमाने में निगमों की स्थापना (Corporation) बन रहे हैं तथा लोग उनके अधिकारियों को नही जानते या पहचानते हैं तो ठगी का काम आसान हो जाता है। पहले छोटे स्तर पर सभी व्यापारी एक-दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानते थे तो अपराध की प्रव्रत्ति भी नही होती थी।

E) व्यापार सम्बन्धी नैतिकता :- नैतिकता के स्तर में गिरावट भी इसकी वजह है।

F) उच्च अधिकारियों, मंत्रियों की मिली भगत भी इसे जन्म देती है।

G) धन का बढता हुआ महत्व भी इसका मुख्य आधार है।

9.3.4 भारत में अभिजात अपराध करने वाले कुछ प्रमुख वर्ग

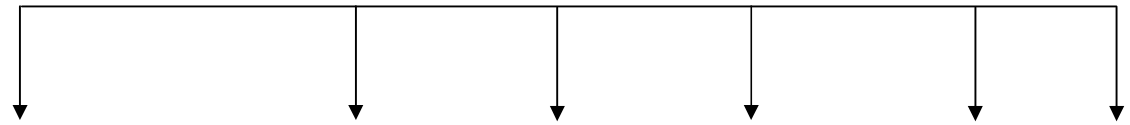

उद्योगपति वर्ग | प्रतिष्ठित व्यापारी वर्ग | प्रबन्धक वर्ग | ठेकेदार वर्ग | वकील तथा डॉक्टर वर्ग | सरकारी अधिकारी वर्ग

और इन सबका परिणाम आर्थिक तथा नैतिक हानि ही होती है।

9.4 अपराधियों का सुधार (Reformation of criminals)

कुछ व्यवसायिक अपराधों को छोड दिया जाय तो बाकी सभी अपराधों के पीछे व्यक्ति की विवशता अथवा मानसिक दुर्बलता छिपी हुयी होती है । इसीलिए यदि अपराधी की परिस्थितियों में यदि सुधार लाया जाय तो, उसके जीवन यापन को सुगम बनाया जाय तो अपराधी के व्यवहार में परिवर्तन आएगा और समाज का उसके प्रति दृष्टिकोण भी बदला जा सकेगा।

अपराध सुधार को व्यवहारिक रूप देने के लिए अनेक प्रकार की व्यवस्थाओं की ओर ध्यान देना आवश्यक है , और इस पूर्ण प्रक्रिया में न्यायालय, पुलिस सुधार संस्थाएं, कारागार आदि का स्थान अत्यधिक महत्वूपर्ण है।

9.4.1 न्यायालय तथा पुलिस

अपराध नियंत्रण में न्यायालय तथा पुलिस का विशेष योग होता है। अपराधी को बंदी बनाना इसमें प्रथम चरण है। अपराधी को गिरफतारी द्वारा समाज से पृथक कर दिया जाता है और न्यायिक क्रिया से गुजारा जाता है। इस प्रक्रिया में वादी, प्रतिवादी, वकील, न्यायिक सलाहकार सभी आते हैं, और अपराध सिद्ध होने पर सजा का प्रावधान है।

9.4.2 परिवीक्षा (Probation)

परिवीक्षा अपराधी अधिनियम 1958 के अंर्तगत 21 वर्ष से कम आयु के युवा अपराधियों पर एक परिवीक्षा अधिकारी ही रिपोर्ट बनाता है। अन्यथा परिवीक्षा में अपराधी को निम्न बातों पर अमल करना अनिवार्य होता है :-

A) परिवीक्षा पर छूटा अपराधी अपने आचरण को ठीक करेगा।

B) अपना संग साथ सुधारेगा

C) नशा/मादक द्रव्य का सेवना नही करेगा।

D) इस अवधि में ना शादी करेगा और ना ही तलाक देगा

E) अनावश्यक ऋण नही लेगा

F) बिना अनुमति के एक स्थान को छोडकर दूसरी जगह नही जाएगा

9.4.3 पेरोल (Parole)

परिवीक्षा की भांति ही पेरोल भी एक सुधारात्मक प्रक्रिया है, परन्तु अन्तर सिर्फ इतना है कि इसमें दण्ड का भी समावेश होता है। कुछ समय अपराधी को कारागार में व्यतीत करना पडता है और शेष समय समाज में स्वतंत्र वातावरण में। निम्न शर्तो पर पेरोल की प्रक्रिया संपूर्ण होती है :-

A) बिना सूचना अपराधी एक स्थान से हिल नही सकता।

B) जुआ आदि पर बाध्यता

C) नशा व मादक द्रव्य सेवन निषेध।

D) रोजगार नही छोडना तथा ना ही बदलना

E) ना शादी ना तलाक

F) भीख नही मांग सकता

g) आचरण सुधार कर परिवार के प्रति सम्मानित व्यवहार करना आदि।

9.4.4 बाल न्यायालय (Juvenile Court)

इसका मुख्य उददेश्य बाल अपराधियों को सजा ना देकर उन्हें सुधारना होता है। परिवीक्षा अधिकारी बाल-अपराधी के चरित्र, पूर्वकार्य, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक स्थिति के विषय में जांच पडताल कर अपना प्रतिवेदन (Report) और संतुष्टि बाल-न्यायालय में प्रस्तुत करता है। प्रमुखत: 1 से 14 वर्ष की उम्र तक के अपराधी इसके अर्न्तगत आते हैं।

9.4.5 नजरबंदी गृह

कई अपराधियों को, अन्यों पर और बुरा प्रभाव ना पडे इसलिए अलग-अलग बंदीगृह में रखा जाता है और सुधार का मौका दिया जाता है।

9.4.6 कारागार सुधार (Prison Reform)

कारागार सुधार के अन्तर्गत वे सभी बातें आ जाती हैं जो कारागार के स्वरूप, कैदियों की स्थिति, पर्यावरण, कारागार अधिकारियों के व्यवहार तथा कारागार के नियमों से संबंधित है। पहले कारागार में काम करा के सिर्फ बन्दी बनाकर कैदियों को रखते थे, परन्तु अब काम शिविर, शिक्षण, प्रशिक्षण का कार्यक्रम भी चलाया जाता है, जिससे कि वो बंदी रहकर भी कुछ पैसे कमाकरके तथा अपने गुजरते वक्त का सदुपयोग कर सकें। कारागारों में निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध हैं :-

A) परिवार से मिलने की सुविधा।

B) शिक्षण प्रशिक्षण (vocational training) की सुविधा

C) भोजन व्यवस्था में सुधार।

D) कैदियों की चिकित्सा व्यवस्था में सुधार

E) अपराधों की प्रकृति के आधार स्वरूप अलग श्रेणियों में रखे जाने की सुविधा

F) स्वस्थ तथा बिमारों को अलग रखना

g) मनोरंजनात्मक (Recreational) सुविधाओं का प्रसार/वृद्धि।

इन सभी के स्वरूप में लगातार विस्तार तथा सुधार हो रहा है और उम्मीद है आगे हालात और बेहतर होते जाएंगें।

9.5 सारांश

अतएव हम कह सकते हैं कि अपराध मानव व्यवहार का एक बिगडा हुआ स्वरूप है और सामाजिक मूल्यों के विरूद्ध जाने वाला व्यवहार है। हर समाज में अपराध तथा अपराधी पाये जाते हैं चाहे वों शिक्षित हैं या अशिक्षित, आधुनिक या आदिम। इसके कारण भी विभिन्न परिस्थितियों पर आधारित होते हैं। उन अपराधियों का स्वरूप, अपराध का विभत्स स्वरूप तथा उसका उन्मूलन या सुधार आदि सभी प्रकार की प्रक्रियाएं समाज में है और किस प्रकार फलीभूत हो रही है, इस अध्याय को पढाकर आप जान पाएगें।

9.6 पारिभाषिक शब्दावली

1. अपराध (Crime) - समाज द्वारा बाधित, आचार संहिता के विरूद्ध किया गया व्यवहार

2. श्वेतवसन अपराध (White Collar Crime) - कुलीन वर्ग द्वारा किया गया कुकर्म तथा समाज के प्रति अन्यायिक कार्य करना।

9.7 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अपराध तथा अपराधी पर एक लेख लिखें।

2. श्वेतवसन अपराधी तथा सामान्य अपराधी में अन्तरों को स्पष्ट करें।

इकाई – 10

बाल अपराध – अर्थ, कारण तथा उपचारात्मक सुधार

10.0 इकाई का उद्देश्य

10.1 परिचय

10.1.1 बाल अपराध का अर्थ एवं परिभाषा

10.1.2 बाल अपराध की विशेषतायें

10.1.3 बाल अपराध के मुख्य कारण

10.1.4 बाल अपराधियों के सुधार कार्य

10.2 सार संक्षेप

10.3 पारिभाषिक शब्दाबली

अभ्यास प्रश्न – लघु विस्तृत

10.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.0 इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में बाल अपराध की अवधारणा एवं परिभाषा पर प्रकाश डाला गया है जिसमें बताया गया है कि बाल अपराधी वह व्यक्ति है जो जानबूझकर इरादे के साथ एवं समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है जिससे उसका सम्बन्ध है। इसी इकाई में बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं पर वृहद चर्चा की गई। प्रस्तुत इकाई में ही बाल अपराध के मुख्य कारण एवं बाल अपराधियों हेतु सुधार कार्य को भी वर्णित किया गया है।

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित को समझ सकेगें –

1. बाल अपराध की अवधारणा को जान सकेगें।
2. बाल अपराध की परिभाषा लिख सकेगें।
3. बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाल सकेगें।
4. बाल अपराध के मुख्य कारणों की चर्चा कर सकेगें।
5. बाल अपराधियों को कैसे सुधारा जाये के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।

10.1 परिचय

बाल अपराध : भारत में 15 वर्ष तक की आयु तक के तथा अमरीका में 16 वर्ष तक की आयु के ऐसे बालक, जा समाज–विरोधी अपराधों या कुकृत्यों में लिप्त पाये जायें, बाल–अपराधी कहलाते हैं। ऐसे बालक चोरी, जेबकतरी, आवारागर्दी, बुरे व्यक्तियों के साथ घूमना–फिरना, भीख माँगना, यौन अनाचार, शराब लाना और ले जाना, लूटमार, गुंडागर्दी, स्कूल से भाग जाना, अनुशासन भंग करना आदि कामों में रत पाये जाते हैं। प्रायः निर्धनता, छोटे और गंदे मकान, बुरी परिस्थितियाँ, टूटे परिवार, पारिवारिक संघर्ष, स्नेह के अभाव, बुरी संगति आदि के फलस्वरूप बालक बाल अपराधी बन जाते हैं। मनोरंजन के अभाव, बुरे मनोरंजन, यौन साहित्य, मानसिक हीनता, उद्वेगात्मक संघर्ष और अस्थिरता, बुरे चलचित्र, टेलीविजन आदि भी बालकों को अनैतिक, असामाजिक खतरों से बचाने तथा उनकी शिक्षा को गतिरोध से मुक्त करने के लिए उनका सुधार करना अत्यंत आवश्यक है।

माता, पिता और शिक्षकों को वह बतलाया जाना चाहिए कि वे किस प्रकार बालकों से व्यवहार करें। बालकों को समुचित नैतिक शिक्षा भी देने की व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे बालकों के लिए उत्तम सुधार – गृह, रिमांड

होम आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। आजकल भारत में कई ऐसी संस्थाएँ बनी हुई हैं। नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा आधुनिकीकरण के फलस्वरूप बाल अपराधियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने की आशंका है। अतः समाज को इस दिशा में सजग रहकर समुचित प्रयास करना चाहिए।

वर्तमान समाजों में सर्वत्र बाल अपराध एक गम्भीर सामाजिक समस्या के रूप में स्पष्ट हुई है। नगरीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न विभिन्न सामाजिक दशाओं ने पारिवारिक संरचना को बहुत बड़ी सीमा तक प्रभावित किया, जिससे उसके संस्थागत स्वरूप में परिवर्तन हो गया। औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने भी इस समस्या को उभारने में सहयोग दिया। ग्रामीण क्षेत्र से नगरीय क्षेत्रों की ओर सत्यापन/प्रवासित करने वाले अथवा गन्दी/मलिन बस्तियों में रहने वाले नगरों/शहरों में समंजन करने वाले अनेक बच्चे बाल अपराध हो जाती है। जे0सी0 दत्त के शब्दों में, ''भारत में बाल अपराध बड़ी तीव्र गति के साथ एक अत्यन्त गम्भीर संकट होता जा रहा है तथा देश के विभिन्न भागों के, जो कि आज से कुछ वर्ष पूर्व अनिवार्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के ही एक अंग थे, प्रगतिशील औद्योगीकरण के साथ–साथ यह समस्या अनेक पाश्चात्य देशों में उपलब्ध स्थान को शीघ्र ही ग्रहण कर लेगी।''

(अ) बाल अपराध के सन्दर्भ में सामान्य व्यक्तियों और कुछ समाज–वैज्ञानिकों के विचार अपर्याप्त भ्रमपूर्ण एवं दोषपूर्ण है। विभिन्न कारणों में से एक यह भी है कि बाल–अपराधी केवल अल्पायु के अपराधी हैं अर्थात् वे अवयस्क अपराधी या बालक है तथा जो देश के कानून द्वारा निर्धारित 7 और 16 या 18 वर्ष की आयु के है। भारत में 1986 में पारित जुवेनाइल जस्टिस एक्ट के अनुसार अब बाल अपराधियों की अधिकतम आयु लड़कों के लिए 16 वर्ष तथा लड़कियों के लिए 18 वर्ष निर्धारित की गयी है। युवा जो भगोड़ापन, कर्म पलायन, आवारागर्दी, व्यभिचार तथा बेलगामी जैसी स्थिति, दोषों में लिप्त होते हैं, वे भी बाल–अपराध की परिभाषा में सम्मिलित होते हैं। न्यूमेयर, जेम्स शार्ट जूनियर, रिचर्ड, जेक्सिन और वाल्टर रैलकेस ने भी

बाल–अपराध की अवधारणा में व्यवहार के प्रकार पर बल दिया है। आयु एवं व्यावहारिक उल्लंघन जो कानूनन वर्जित है, दोनों ही बालापराध की अवधारणा में महत्वपूर्ण तत्व है। स्पष्ट है कि बाल अपराध एक अल्पायु व्यक्ति का वह कार्य/व्यवहार है जो प्रत्यक्ष रूप से कारणों व अध्यादेशों के विरुद्ध होता है।

10.1.1 बाल अपराध का अर्थ एवं परिभाशा

प्रत्येक समाज अपने सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करने के तथा सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता और निरन्तरता कायम रखने के लिए कुछ औपचारिक कानूनों का निर्माण करता है। समाज के कानूनों का उल्लंघन आदि व्यस्क व्यक्ति करते हैं तो उसे अपराध की श्रेणी में रखा जाता है, किन्तु यदि निश्चित आयु से कम आयु के व्यक्ति करते हैं, तो उसे बाल अपराध कहते हैं। अपराध और नासमझी/नादानी में किये जाने वाले कार्य में अन्तर होता है, क्योंकि छोटे और अपरिपक्व बालकों से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वे समाज के हित–अनहित से पूर्णतया विज्ञ हो। बालपन में उनके गैर–कानूनी अपराध खेल–खेल और मौज–मस्ती में हो जाते हैं। स्पष्ट है कि कानून द्वारा निर्धारित उच्चतम एवं निम्नतम आयु सीमा के बीच के व्यक्ति का ऐसा कोई भी कार्य जो कानून के विरुद्ध हो, बाल अपराध कहा जाता है। बाल अपराध, अपराधी कानूनों के द्वारा वर्जित व्यवहार है, जिसका निपटारा कानून के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. डॉ0 सेथना के अनुसार, ''बाल–अपराध में एक विशेष स्थान पर उस समय लागू कानून द्वारा निर्धारित एक निश्चित आयु के बालकों या युवकों द्वारा किये गये, अनुचित कार्य सम्मिलित होते हैं।''

2. गिलिन और गिलिन के अनुसार, ''समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण में अपराधी या बाल–अपराधी एक ऐसा व्यक्ति है, जो ऐसे कार्य का अपराधी है,

जिसको वह समूह, जिसमें अपने विश्वासों को कार्यान्वित करने की शक्ति है, समाज के लिए हानिकारक समझता है, इसलिए ऐसा कार्य करना मना है।''

3. न्यूमेयर के अनुसार, ''बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है, जिसने समाज–विरोधी कार्य किया है तथा जिसका दुर्व्यवहार कानून को तोड़ने वाला है।''

4. मावरर के अनुसार, ''बाल अपराधी वह व्यक्ति है, जो जान–बूझकर इरादे के साथ एवं समझते हुए समाज की रूढ़ियों की उपेक्षा करता है, जिससे उसका सम्बन्ध है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बाल–अपराध एक निश्चित आयु से कम के बच्चों द्वारा किया जाने वाला वह कार्य है, जो समाज विरोधी हो। बाल–अपराध की धारणा भिन्न–भिन्न समाजों में तथा समयों के अनुसार परिवर्तित होती रही है। भारत में बाल अपराध की निम्नलिखित मुख्य विशेषतायें पाई जाती हैं –

(1) भारत में 7 वर्ष से कम आयु के बच्चों द्वारा किये गये अपराध को किसी भी श्रेणी में नही रखा जाता है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चे में अपराध करने का कोई इरादा नही होता है। (2) 7 वर्ष से 18 वर्ष की आयु के अपराधियों को बाल अपराधी तथा 16 से 21 वर्ष की आयु के अपराधियों को किशोर अपराधी कहा जाता है। (3) बाल अपराध का तात्पर्य साधारण अपराध से है। (4) भारत में भिन्न–भिन्न राज्यों में इसकी आयु सीमा अलग–अलग है।

10.1.2 बाल अपराध की विशेषतायें

1. बाल अपराधी खाली समय की देन है। 2. बाल अपराधी का मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। 3. बाल अपराधी में अपराध का इरादा नहीं होता है। 4. बाल अपराधी घनी जनसंख्या वाले क्षेत्र में अधिक होते हैं। 5.

प्रत्येक देश में बाल अपराधियों की एक निश्चित आयु होती है। 6. बाल अपराध सामान्यतः अनजाने में या खेल–खेल में होता है।

बाल अपराध के कारण – विभिन्न अपराधशास्त्रियों ने बाल–अपराध के कारणों की अलग–अलग विवेचना प्रस्तुत की है, यथा – इलियट तथा मेरिल के अनुसार।

1. वं□ानुगम कारण – अ. नष्ट घर, ब. अर्द्धनष्ट घर, स. अनैतिक घर, द. माता–पिता द्वारा उपेक्षा, य. अपराधी भाई–बहनों का साथ में रहना, र. आर्थिक और बाह्य तत्वों वाला अनुपयुक्त घर।

2. भाारीरिक तथा जैविकीय कारक – अ. शारीरिक दोष/कमियाँ, ब. अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की दूषित कार्य प्रणाली, स. पैतृकता/आनुवंशिकता, द. अत्यधिक विकास एवं आवेग, य. बुरा स्वास्थ्य।

3. मनोवैज्ञानिक कारक – अ. मानसिक हीनता, ब. संवेगात्मक संघर्ष और अपंगता, स. सामुदायिक कारक, द. मनोरंजन और अपराध, य. समाचार–पत्र और अपराध, र. स्कूल और बाल अपराध, ल. संगति और सामूहिक अनुभव, व. युद्ध और बाल अपराध्ज्ञं

मार्टिन के अुनसार – 1. व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक, 2. पारिवारिक परिस्थितियाँ, 3. सम्पर्क और संगति, 4. सामुदायिक संस्थाओं का प्रभाव, 5. जनसंख्या और सांस्कृतिक कारक, 6. आर्थिक और भौतिक पर्यावरणीय कारक, 7. कानून का अपर्याप्त पालन।

हीली और बोचर के अनुसार – 1. बुरी संगत, 2. किशोर अवस्था की अस्थिरता और आवेग, 3. शीघ्र यौन अनुभव, 4. मानसिक संघर्ष, 5. जोखिम उठाने के प्रति प्रेम, 6. सिनेमा, 7.

स्कूली असन्तोष, 8. हीन मनोरंजन, 9. सड़कों पर जीवन, 10. व्यवसाय विषयक असंतोष, 11. आकस्मिक आवेग, 12. सभी शारीरिक दशायें।

10.1.3 बाल अपराध के मुख्य कारण

(अ) परिवार सम्बन्धी कारक – परिवार को बच्चे की प्राथमिक पाठशाला कहा जाता है। क्योंकि बालक की प्रारम्भिक शिक्षा परिवार द्वारा ही होती है अर्थात् बच्चा बहुत कुछ अपने परिवार से ही सीखता है। यदि परिवार अच्छा है, तो बालक भी अच्छा होगा। निम्नलिखित परिवारों में बाल अपराधी बनने की अधिक सम्भावनायें रहती है।

1. भग्न परिवार – टूटे परिवार वे परिवार कहलाते हैं, जिसमें माता–पिता में बालक की देखरेख के लिए कोई नहीं होता है अर्थात् बालक क्या कर रहे है जो भी बालक के मन में आता है, वह करता है, प्रेम स्नेह से वंचित रहते हैं। इस कारण से बालक अधिक समय घर से बाहर रहता है और बुरी आदतों को सीखता है।

2. अर्द्ध नश्ट – यह वे परिवार कहलाते हैं, जो पूर्णतया नष्ट तो नहीं होते हैं, लेकिन नष्ट होने की प्रक्रिया में रहते हैं। इस प्रकार के परिवार में माँ–बा पके पास इतना समय नहीं होता है कि वह अपने बच्चों की उचित देखभाल कर सके। ऐसी स्थिति में बच्चे का उचित प्रकार से न तो पालन–पोषण हो पाता है और न ही विकास। इसका मुख्य कारण माता–पिता दोनों का नौकरी करना होता है। बालक स्वतंत्र रहता है और बुरी आदतों का शिकार हो जाता है।

3. अनैतिक परिवार – इस प्रकार के परिवारां में किसी भी परिवार से शिक्षित और ईमानदार बच्चों के विकास की कल्पना नही की जा सकती है। जैसे यदि– माता–पिता परिवार के अन्य सदस्यों के साथ जुआ खेलते हैं तथा अन्य स्त्रियाँ और पुरूषों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखते है तो इनका प्रभाव बच्चों पर भी पड़ता है और उनमें अपराधी प्रवृत्ति जागृत होती है।

4. माता–पिता द्वारा उपेक्षा – जिन परिवार में माता–पिता सौतेले होते हैं, उन परिवारों में सामान्यतः बच्चों की उपेक्षा होती है। यह उपेक्षा

बच्चे का मानसिक सन्तुलन बिगाड़ देती है जिससे बच्चों में घृणा, क्रूरता तथा प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो जाती है, जो बाल अपराध को प्रोत्साहित करती है।

5. अपराधी भाई–बहनों का प्रभाव – परिवार में बालकों पर केवल माता–पिता का ही प्रभाव नहीं है, बल्कि भाई–बहनों का भी प्रभाव पड़ता है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिन परिवारों में बड़े–भाई दुष्चरित्र होते है, तो छोटे–भाई बहिन भी दुष्चरित्र हो जाते हैं।

6. अधिक संख्या वाले परिवार – जिन परिवारों में सदस्यों की संख्या अधिक होती है, उन परिवारों में बच्चों की न तो उचित देखभाल हो पाती है और न ही नियंत्रण रह पाता है, जिससे परिवार के सदस्यों में ही संघर्ष होता रहता है तथा बालकों में गन्दी आदतें विकसित होती है।

7. दोशपूर्ण आवास – औद्योगीकरण की प्रक्रिया में आवास की सबसे बड़ी समस्या पायी जाती है। भारत में प्रति व्यक्ति कम आय और मकानों की कमी के कारण एक कमरे वाले मकान में अनेक बच्चे रहते हैं। इन मकानों के बच्चे अवांछित घटनाओं को देखते हैं, जिनका उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप बच्चों में यौनिक अपराधों की प्रवृत्ति बढ़ती है।

(ब) सांस्कृतिक कारक – बाल अपराध में कतिपय सांस्कृतिक कारण भी सहयोगी सिद्ध होते हैं –

1. सांस्कृतिक विशमतायें – सांस्कृतिक विषमताओं से हमारा तात्पर्य बच्चे के माता–पिता में नियमों तथा उसके साथियों के व्यवहार प्रतिमान में अन्तर से ही है। ऐसी स्थिति में बच्चा अपने माता–पिता के व्यवहार प्रतिमान को स्वीकार नहीं करता और उसे अपने साथियों के व्यवहार प्रतिमान की सामाजिक स्वीकृति नहीं मिलती, जिससे बच्चे में अपराधी प्रवृत्ति विकसित होती है।

2. नैतिक पतन – जब बच्चों का समाज में नैतिक पतन होने लगता है तो बाल अपराध भी बढ़ने लगता है। नैतिकता का उद्देश्य मानवीय गुणों का विकास करना है। लेकिन जब समाज में ऐसा वातावरण बन जाये कि अधिकारी भ्रष्ट हो जायें, रिश्वतों के द्वारा नियुक्तियाँ हो, तो ऐसी दशा में बच्चे अपराधी व्यवहार द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने लगते हैं।

3. जाति विभेद – भारत में जाति–प्रथा भी बाल अपराध को प्रोत्साहित करती है। उच्च जातियों को आज भी समाज में विशेष अधिकार प्राप्त है, जबकि अन्य निम्न जातियाँ आज भी निर्योग्यताओं में जीवन व्यतीत कर रही है। यद्यपि भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् इन निर्योग्यताओं को समाप्त कर दिया है, लेकिन निम्न जाति के बच्चे आज भी स्कूलों तथा सार्वजनिक स्थानों पर अपने को उपेक्षित महसूस करते हैं। यही निराशा उनमें प्रतिशोध को जन्म देती है–

(स) आर्थिक कारक – बालक पर आर्थिक कारक भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालते हैं। यद्यपि बालक का अर्थ से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता है, फिर भी अर्थ के अभाव में बच्चे का पालन–पोषण तथा चरित्र निर्माण ठीक प्रकार से नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में बच्चे में अपराधी मनोवृत्तियाँ जागृत होती है।

(र) 1. निर्धनता – समाज में निर्धनता एक अभिशाप है, जिसके कारण अनेक समस्याओं का जन्म होता है। निर्धनता के कारण न तो बालक को अच्छी शिक्षा मिल पाती है और न ही उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो पाती है निर्धनता की स्थिति में माता–पिता द्वारा की गई अवहेलना तथा शारीरिक प्रताड़ना से बच्चे में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न होती है। इससे बच्चा प्रायः उद्दण्ड हो जाता है। यही उद्दण्डता दिन–प्रतिदिन बालक को अपराधी बनाने में सहायक होती है।

2. माताओं तथा बच्चों की नौकरी – प्रायः ऐसा देखा गया है कि आर्थिक कठिनाई के कारण बच्चे छोटी आयु में ही नौकरी करने लगते हैं या माँ को नौकरी करनी पड़ती है। यदि माँ नौकरी करती है, तो बच्चे दिन भर आवास घूमते रहते हैं। ऐसी स्थिति में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों द्वारा अनैतिक अपराध की ओर बढ़ने की सम्भावना अधिक रहती है। इसके अलावा जो बच्चे होटलों तथा चाय की दुकानों पर काम करते हैं, वे शीघ्र अपराधी व्यवहार सीख जाते हैं।

3. आर्थिक तनाव – आर्थिक तनाव भी बच्चे को अपराध की ओर ले जाता है। इसके अन्तर्गत प्रतिष्ठित परिवार के बच्चे भी आ जाते हैं। यह बच्चे घर में ही चोरी करते हैं।

(द) सामुदायिक कारक – सामुदायिक कारक भी बहुत बड़ी सीमा तक बच्चे को अपराधी बनाने में सहायक होते हैं। जिस समुदाय में बच्चा रहता है, यदि उसका वातावरण अच्छा नहीं है, तो बालक अपराधी बन जाता है। इसमें हम निम्नलिखित बातों को लेते हैं –

1. मनोरंजन – उचित मनोरंजन की सुविधा होने पर बाल अपराध की दर में कमी आती है। खाली समय में यदि बच्चा न तो स्कूल जाता है और न ही कोई काम करता है, तो वह अपराध की ओर बढ़ता है। बड़े–बड़े शहरों में पार्क वगैरह ऐसे स्थान पर होते हैं, जहाँ व्यक्ति मनोरंजन के लिए एकत्रित होते हैं। लेकिन यही स्थान बच्चों को भी अपराध के लिए सुविधायें प्रदान करते हैं।

2. विद्यालय – विद्यालय ऐसा परिवेश है, जहाँ बच्चों को उचित सामाजिक जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलता है। लेकिन यदि विद्यालय का वातावरण अच्छा नहीं है, तो बच्चे को विद्यालय से अरूचि होने लगती है। वह विद्यालय से भागता है तथा सारा दिन फुटपाथ पर काटता है और एक दिन बाल अपराधी बन जाता है।

3. युद्ध – युद्ध सामाजिक विघटन का एक महत्वपूर्ण कारक है। जहाँ युद्ध से सामाजिक विघटन होता है, वहीं पर सामान्य घरेलू जीवन को भी नष्ट करता है। एल्सा कास्टेन्डिक ने बाल अपराध व युद्ध का अध्ययन किया है। वे लिखते हैं कि ''यूरोप में युद्ध के कारण बच्चों की शिक्षा बन्द हो गयी थी क्योंकि बच्चों के माता–पिता युद्ध कार्य में व्यस्त थे तथा बच्चों की देख–रेख करने वाला कोई नहीं था।''

अन्य कारक – बाल अपराध के उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक कारकों के आधार पर बाल–अपराध को समझा जा सकता है। मनोवैज्ञानिक आधार पर मानसिक अस्थिरता, हीनता की भावना तथा बुद्धि की कमी भी बाल अपराध का कारण है। जिन परिवारों में पारिवारिक अशान्ति तथा कलह का वातावरण रहता है, उन परिवारों में बच्चा यह तय नहीं कर पाता है कि उसे कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह स्थिति बालक को अपराधी बना देती है।

10.1.4 बाल अपराधियों के सुधार कार्य

भारत में बाल अपराधियों का सुधार कार्य सन् 1850 से प्रारम्भ किया गया है। भारत सरकार ने सर्वप्रथम एक शिक्षार्थी अधिनियम बनाकर 10 से 18 वर्ष की आयु के बिना उद्देश्य घूमने वाले बच्चों के लिए किसी उद्योग में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की। सन् 1857 में भारतीय दण्ड संहिता में यह व्यवस्था की गयी कि 15 वर्ष से कम आयु के बाल अपराध को न्यायालय जेल के स्थान पर सुधार गृह भेजने का भी आदेश दे सकता है।

भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् बाल अपराधियों को सुधारने हेतु निम्नलिखित कार्य किये गये है –

(ल) 1. बाल न्यायालयों की स्थापना – भारत में सन् 1960 में बाल अपराध नियम पारिम किया गया है, जिसके द्वारा बाल अपराधियों के मुकदमें की सुनवाई तथा उनके सुधार कार्य के लिए बाल–न्यायालयों तथा

कल्याण परिषदों की व्यवस्था की गयी हैं। इनमें न तो सामान्य न्यायालय जैसा वातावरण होता है, न वकील जिरह करते हैं, बल्कि सहानुभूतिपूर्वक बालक के अपराध करने का कारण जाना जाता है। पुलिस सादे वेश–भूषा में रहती है, इसकी सभी कार्यवाही इस प्रकार से होती है कि बच्चे में किसी प्रकार का भय उत्पन्न नहीं होता है। इसके बाद भी यदि बालक दोषी पाया जाता है तो उसे जेल में न भेजकर सुधार गृह में भेजा जाता है।

(व) 2. सुधार गृह – प्रत्येक राज्य ने बाल–अपराधियों के लिए सुधार गृहों की स्थापना की है। 15 वर्ष से कम आयु के बाल–अपराधी को जेल में न भेजकर सुधार गृहों में भेजा जाता है जिससे वह जेल में रहने वाले अपराधियों या पेशेवर अपराधियों के सम्पर्क में न आ सकें। ऐसे सुधार गृहों में बच्चों के लिए भोजन, वस्त्र, जल आदि की उत्तम व्यवस्था की जाती है। रोगियों के लिए चिकित्सा की व्यवस्था की जाती है तथा प्रत्येक बच्चे को औद्योगिक प्रशिक्षण दिया जाता है, ताकि वह इन सुधार गृहों से निकलने के बाद रोजगार प्राप्त कर सके। इन सुधारगृहों में नैतिक शिक्षा के द्वारा अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न की जाती है।

3. बोर्स्टल संस्थायें – अनेक राज्यों में आज बोर्स्टल स्कूल अधिनियम की लागू है। इसके अनुसार 15 वर्ष से 21 वर्ष तक के किशोर अपराधियों के लिए एक पृथक संस्था की व्यवस्था की गयी है। यह संस्थायें दो प्रकार की है – बन्द तथा खुली। इनमें बच्चों की बुरी आदतों को छुड़वाने का प्रयास किया जाता है।

4. प्रमाणित स्कूल – इन स्कूलों में कम आयु के साधारण अपराधियों को तकनीकी प्रशिक्षण देकर उनकी स्थिति में सुधार किया जाता है। इनमें 10 से 12 व 12 से 18 वर्ष तक के बच्चों को रखा जाता है। इन स्कूलों में असामान्य मस्तिष्क के बाल अपराधियों को रखा जाता है। ऐसे अपराधियों की मानसिक चिकित्सा की जाती है तथा उनका प्रायोगिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

(स) 5. उत्तर संरक्षण संस्थायें – भारत में तमिलनाडु, गुजरात तथा महाराष्ट्र में बाल अपराधियों के लिए अनेक उत्तर संरक्षण संस्थाएं स्थापित की गयी है। यह व्यवस्था आंशिक रूप से उत्तर प्रदेश तथा बिहार में भी क्रियाशील है। उत्तर रक्षा सुविधाओं का अर्थ उन सुविधाओं से है, जो बाल अपराधियों को दण्ड की अवधि पूरी होने या कुछ अवधि शेष रहने पर प्रदान की जाती है। अपराधी को छः माह तक सुधार गृह में रह लेने के समय तक यदि यह विश्वास हो जाये, कि उसका आचरण अच्छा है, तो उसे किसी विश्वस्त व्यक्ति की देखरेख में छोड़ा जा सकता है।

6. रिमाण्ड गृह – नई व्यवस्था के अनुसार पकड़े गये बाल अपराधियों को पुलिस की हिरासत में रखकर विशेष सदन में रखा जाता है तथा बच्चे के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है और 24 घण्टे के अन्दर उसे किसी न्यायाधीश के सामने पेश करना होता है। इन गृहों में उन बच्चों को रखा जाता है, जो घर से भागे हुए, बेघरबार या टूटे परिवार के सदस्य होते हैं।

(घ) बाल अपराध निरोध के सुझाव – भारत में बाल अपराधियों की संख्या में वृद्धि को देखते हुए इस बात की आवश्यकता है कि इन सुधार के साथ–साथ ऐसे उपाय करें जिससे बच्चे को अपराधी बनने से रोका जा सके। इसके लिए उन परिस्थितियों को दूर अथवा कम करना होगा, जो बाल अपराध को जन्म देती है। इन्हें निम्न तरह से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. डॉ0 सेथना ने बाल अपराध निरोध के अभ्यागत अध्यापक व्यवस्था का सुझाव दिया है। इसके अनुसार अध्यापक यदि बच्चे के माता–पिता से मिलकर बच्चे के बारे में पूरी जानकारी कर लें, तब शिक्षा करें, तो बच्चे को अपराधी बनने से रोका जा सकता है।
2. परिवार में माता–पिता अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए बच्चे का उचित रूप से पालन–पोषण करें तथा उन पर वांछित नियंत्रण रखें।

3. निर्धन परिवार के बालकों के लिए मुक्त शिक्षा की व्यवस्था की जायें, ताकि उनके माता–पिता बच्चे को पढ़ाने में रूचि ले।
4. प्रायः देखा गया है कि बच्चे बुरी संगति में ही पड़कर अपराध करते हैं। अतः कानून में परिवर्तन करना चाहिए, ताकि कम आयु के बच्चों को गुमराह करने वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया जा सके।
5. मनोरंजन के साधनों में सुधार किया जायें, नगरों में पार्क बनवाये जायें, तथा बच्चों को चलचित्र और अश्लील साहित्य आदि से बचाया जाये।
6. बड़े–बड़े नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों पर तथा घनी बस्तियों में सलाहकार समितियां बनाई जायें, जो पिछड़े हुए बच्चों के माता–पिता का उचित सलाह दे सकें।
7. स्त्री शिक्षा का विकास किया जाये। यदि परिवार में स्त्री शिक्षित होगी, तो वह बच्चों का उचित रूप से पालन पोषण कर सकेगी।
8. बच्चों को अपराध के लिये प्रेरित करने वाले कारकों को विफल बनाने हेतु अपराध–निवारण का कार्य करने वाली सभी सरकारी एजेन्सियों को संपूर्ण ह्रदय के साथ टोली कार्य करना चाहिये।
9. बाल अपराध निवारण राय से सम्बन्धित सभी संगठनों के सदस्यों और कर्मियों को विश्व रूप से प्रशिक्षित किया जाये।
10. गंभीर रूप से विक्षुब्ध व कुसमायोजित बालकों के उपचारार्थ बाल–निर्देशन केन्द्रों एवं मानसिक चिकित्सा केन्द्रों की व्यवस्था की जाये।
11. परिवार को पारिवारिक रहन–सहन, शिक्षा, अन्तर्भावनाशील शक्ति कार्य व सामाजिक स्वास्थ्य और परामर्श सेवा कार्यों की शिक्षा दी जाये।
12. कम सुविधा प्राप्त बालकों की सेवा तथा सहायता की जाये।

13. पूर्णकालिक मनोरंजन एजेन्सियों की स्थापना की जाये, तो सर्वथा स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करे।

14. प्रेस, समाचार–पत्र, रेड़ियों, दूरदर्शन, सिनेमा आदि के माध्यम से बाल अपराध के विरुद्ध प्रचार किया जाये।

अन्त में निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि यदि सरकार द्वारा, समाज द्वारा तथा परिवार एवं अभिभावकों द्वारा ध्यान दिया जाये, तो बाल अपराधियों की संख्या में तो कमी की ही जा सकती है, साथ ही बाल अपराध को जन्म देने वाली परिस्थितियों को भी समाप्त किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पाठ्य सामग्री से कीजिए।

1. बाल अपराध की अवधारणा लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. बाल अपराध के कारणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 1

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए। क) बाल अपराध की परिभाषा ख) बाल अपराध की विशेषतायें

.....

.....

.....

.....

.....

10.2 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में बाल अपराध की अवधारणा के साथ–साथ परिभाषा पर विशेष बल दिया गया है। जिसमें बताया गया है कि बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम का वह व्यक्ति है जिसने समाज विरोधी कार्य किया है। तथा जिसका व्यवहार कानून तोड़ने वाला है। प्रस्तुत इकाई में ही बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन किया गया है। यह इकाई यह भी बताती है कि बाल अपराध के कौन–कौन से मुख्य कारण है ? प्रस्तुत इकाई के अन्त में भारत में बाल अपराधियों के सुधार कार्य हेतु सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। प्रस्तुत इकाई पूर्ण रूप से बाल अपराध से सम्बन्धित उन तथ्यों को संग्रहित करती है जिससे बाल अपराध के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त हो सके।

10.3 पारिभाषिक शब्दावली

1. **बाल अपराधी** – भारत में 15 वर्ष तक की आयु के ऐसे बालक जो समाज विरोधी अपराधों या कुकृत्यों में लिप्त पाये जाये बाल अपराधी कहलाते हैं।

2. **सुधार गृह** – सुधार गृह से तात्पर्य जहां पर बाल अपराधियों को सुधारने के लिए रखा जाता हो जहां पर नैत्यिक शिक्षा द्वारा अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न की जाती है।

अभ्यास प्रश्न –

लघु

1. बाल अपराध की अवधारणा लिखिए।
2. बाल अपराध की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. बाल अपराध की मुख्य कारणों की चर्चा कीजिए।
4. सांस्कृतिक कारक पर टिप्पणी लिखिए।
5. आर्थिक कारक पर टिप्पणी लिखिए।

विस्तृत

1. बाल अपराध की परिभाषा देते हुए इसके कारणों की विवेचना कीजिए।
2. बाल अपराध की अवधारणा देते हुए भारत में बाल अपराधियों के सुधार कार्य पर एक निबन्ध लिखिए।

10.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह जीत कृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ वर्ष 2006 पेज 110–123.
2. तेज, संगीता, पाण्डेय तेजस्कर, समाज कार्य, जुविली फण्डामेन्टलस लखनऊ, वर्ष 2012, पेज बी0–89–बी0–97.

इकाई -*11*

मद्यपान
Alcholism

इकाई की रूपरेखा

11.0 **उद्देश्य**

11.1 **प्रस्तावना**

11.2 **मद्यपान की अवधारणा**

11.3 **मद्यपान का परिमाण**

11.4 **मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया**

11.5 **मद्य दुरुपयोग के कारण**

11.6 **मद्यपान की समस्याएँ**

11.7 **मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण**

11.8 **शब्दावली**

11.9 **अभ्यास प्रश्न**

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.0 उद्देश्य

मदिरा का अत्यधिक सेवन मद्यपान कहलाता है। ऐसा अनुमान है कि भारत में *21* प्रतिशत वयस्क पुरुष मद्यपान करते हैं। अरुणाचल प्रदेश जैसे राज्यों में यह प्रतिशत *75* तक है। यद्यपि सम्पूर्ण भारत में महिलाओं में मद्यपान की दर पुरुषों की तुलना में कम है, तथापि उत्तर–पूर्वी राज्यों में महिलाओं में मद्यपान की दर भी अत्यधिक है। आदिवासियों तथा ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों के निम्न सामाजिक–आर्थिक स्थिति वाले लोगों में मद्यपान अधिक है। वैयक्तिक स्तर पर

मद्यपान से शारीरिक क्षमता कम होती है तथा अनेक प्रकार की मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। परिवार के स्तर पर मद्यपान पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन देता है तथा महिलाओं पर अत्याचार में वृद्धि करता है। सामुदायिक स्तर पर भी मद्यपान की काफी सामाजिक एवं आर्थिक कीमत चुकानी पड़ती है। दुर्घटनाएँ एवं मृत्यु, मानव शक्ति अपव्यय, अपराध में वृद्धि तथा सामाजिक सुरक्षा, उपचार एवं पुनर्वास के लिए अधिक धन का व्यय ऐसे दुष्परिणाम हैं जो मद्यपान के कारण पनपते हैं। इसीलिए समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में मद्यपान को सम्मिलित किया जाता है। इस इकाई का उद्देश्य मद्यपान के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करना है।

11.1 प्रस्तावना

मद्यपान (अतिमद्यपता) एवं मादक द्रव्य व्यसन ऐसी सामाजिक समस्याएँ हैं जो आज सभी देशों में चिन्ता का विषय बनी हुई हैं क्योंकि इनसे तीनों ही प्रकार के विघटनों—वैयक्तिक विघटन, पारिवारिक विघटन तथा सामाजिक विघटन—को प्रोत्साहन मिलता है। इन्हें मुख्य रूप से वैयक्तिक विघटन के रूप में देखा गया है। भारत में मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि यह खतरा पैदा हो गया है कि आने वाले कुछ वर्षों में भारत इन पदार्थों का सेवन करने वाला सबसे पहला और बड़ा देश बन जाएगा। एक अनुमान के अनुसार केवल दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता तथा चेन्नई में जहरीली दवाओं की लाखों रुपये की खुदरा बिक्री रोज होती है। अकेले मुम्बई में एक लाख से अधिक नसेड़ी हैं और देश में हर वर्ष *50* हजार की दर से नसेड़ियों की वृद्धि हो रही है। इससे भारत में मद्यपान की समस्या की गम्भीरता का पता चलता है।

मद्यपान कोई नई बात नहीं है क्योंकि इसका प्रचलन आदिकाल से ही संसार के प्रत्येक देश में विविध रूपों में होता आया है। मद्यपान यद्यपि करता तो एक व्यक्ति है परन्तु इसे सामाजिक समस्या इसलिए कहा जाता है क्योंकि इससे वैयक्तिक विघटन के अतिरिक्त पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक विघटन भी होते हैं। मद्यपान एक सामाजिक समस्या तब समझी जाती है, जबकि अत्यधिक मदिरा का उपयोग करके व्यक्ति व्यभिचारी या अपराधी कार्यों को करने लगता है। इतना ही नहीं, तलाक, पलायन, आत्महत्या, अपराध, कलह, भ्रष्टाचार, दुर्घटना व

नैतिक पतन जैसी अनेक समस्याएँ इसके साथ जुड़ी हुई हैं। इसलिए इस समस्या का समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन विशेष महत्त्व रखता है। अत्यधिक अथवा आदतन मद्यपान का व्यक्ति के मूल्यों, मनोवृत्तियों, स्वास्थ्य तथा जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव को समाजशास्त्रीय दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया जाता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति परिवार तथा समुदाय का भी सदस्य होता है। इसलिए इससे समाज की यह महत्त्वपूर्ण इकाइयाँ भी प्रभावित होती हैं। संसार में लाखों पुरुष तथा स्त्रियाँ आज ऐसी स्थिति में पहुँच चुके हैं जहाँ मद्यपान उनकी एक मूल आवश्यकता बन गया है।

11.2 मद्यपान की अवधारणा

आज समाज में मद्यपान ही एक समस्या नहीं है अपितु अन्य नशीले द्रव्यों (जैसे अफीम, गांजा, चरस, कोकीन, भांग, एल० एस० डी० अन्य नशा उत्पन्न करने वाली दवाएँ व जड़ी बूटियाँ इत्यादि) का प्रयोग इतनी अधिक मात्रा में होने लगा है कि प्रत्येक समाज में मादक द्रव्य व्यसन एक चिन्ता का विषय बना हुआ है। अमेरिका, यूरोप तथा एशिया के अनेक देश इससे प्रभावित हैं। प्राय: ऐसा देखा गया है कि अगर एक बार इस प्रकार के मादक द्रव्य व्यसन की व्यक्ति को आदत पड़ जाती है तो इसे छोड़ना बहुत कठिन होता है। मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है।

इलियट एवं मैरिल *(Elliott and Merrill)* ने उचित ही लिखा है कि मद्यपान का भी सामाजिक वितरण होता है। जटिल समाजों में विभिन्न समूहों को जिस प्रकार शिक्षा, व्यवसाय, धर्म, राष्ट्रीयता, प्रजाति इत्यादि कारकों द्वारा एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार इन समूहों में मद्यपान का उपयोग एक समान रूप से नहीं होता। वैयक्तिक असुरक्षा, जोकि एक समूह में पाई जाती है, जरूरी नहीं है कि वह किसी अन्य समूह में भी पाई जाए।

इसीलिए ग्रामीण तथा नगरीय समुदायों तथा उन समुदायों के विभिन्न समूहों में इसका उपयोग एक समान नहीं होता है। कुछ समाजों में कम तेज मद्यपान का उपयोग किया जाता है।

मद्यपान का अर्थ एवं परिभाषाएँ

सरल शब्दों में मद्यपान का अर्थ मदिरा (शराब) का सेवन करना है। जो व्यक्ति मदिरा का सेवन करता है उसे मद्यसेवी कहते हैं। फेयरचाइल्ड *(Fairchild)* ने मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहा है। इलियट एवं मैरिल जैसे अनेक विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि अधिक मात्रा में मदिरा का सेवन ही मद्यपान कहलाता है। कभी-कभी अथवा बहुत कम मात्रा में शराब पीना मद्यपान नहीं है। साथ ही, ऐसे विद्वानों ने मद्यपान को मदिरा सेवन की वह आदत बताया है जो मद्यसेवी की कमजोरी बन जाती है। वह मदिरा पर इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि बिना उसके सेवन से उसे बेचैनी होने लगती है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन निपुण समिति *(World Health Organization Expert Committee)* ने मद्यपान को इन शब्दों में परिभाषित किया है, ''मद्यपान नशे की वह दशा है जो किसी मादक पदार्थ के निरन्तर सेवन से पैदा होती है; जो कुछ देर तक या सदैव ही व्यक्ति को इस तरह नशे में चूर रखती है जो समाज और व्यक्ति दोनों के लिए हानिकारक होती है।'' इस संगठन के अनुसार मद्यसेवी से अभिप्राय अधिक नशा करने वाले उस व्यक्ति से है जिसकी मदिरा पर इतनी अधिक निर्भरता बढ़ जाती है कि इसके कारण व्यक्ति का मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य विगड़ने लगता है।

सन् *1964* में योजना आयोग द्वारा नियुक्त मद्यनिषेध पर स्टडी टीम की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इस स्टडी टीम के अध्यक्ष पंजाब उच्च न्यायालय के निवर्तमान न्यायाधीश श्री टेकचनद थे। यह रिपोर्ट मद्यपान एवं मद्यनिषेध पर एक शास्त्रीय शोघ ग्रन्थ माना जाता है। इस रिपोर्ट में मद्यपान की परिभाषा इन शब्दों में की गई थी, ''मद्यपान से आशय एक बीमारी, आदत या व्यसन से है जो व्यक्ति की शारीरिक-मानसिक व्यवस्था के टूटने से पैदा होता है। यह विघटन दीर्घकाल तक लगातार और आदतन मद्यपान के परिणामस्वरूप होता है।'' इसी भाँति, मार्क कैलर *(Mark Keller)* के अनुसार, ''मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी

विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है।''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मद्यपान मदिरा सेवन की वह स्थिति है जो मद्यसेवी की आदत बन जाती है तथा जो उसके स्वास्थ्य और मानसिक जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। यह मदिरा के किसी भी रूप में निरन्तर उपयोग से उत्पन्न पाक्षिक या शाश्वत नशे की स्थिति है जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर होती है। मद्यपान में मदिरा के साथ-साथ उन पदार्थों का सेवन भी सम्मिलित है जो व्यक्ति में मादकता उत्पन्न करते हैं। इसीलिए किसी भी ऐसे पदार्थ का सेवन जो नशा पैदा करता है विस्तृत रूप से मद्यपान कहलाता है।

वस्तुत: मद्यपान से आशय व्यक्ति की उस व्याधिकीय दशा से है जो उसके द्वारा नशीले पेयों के लगातार एवं अत्यधिक सेवन से उत्पन्न होती है। इस दशा में व्यक्ति मद्यपान की आदत का शिकार हो जाता है। वह मद्यपान के लिए स्वयं को बाध्य समझता है। एक मानसिक रोगी की भाँति, दिन-प्रतिदिन विकृतियों की ओर बढ़ता हुआ भी तथा मदिरा की चाह को छोड़ना चाहते हुए भी वह इसे नहीं छोड़ सकता। मद्यपान अत्यधिक मदिरा व्यसन की स्थिति है जिसमें व्यक्ति मानसिक विकृति का शिकार होने के साथ-साथ आर्थिक दृष्टि से भी दरिद्र हो जाता है, सामाजिक प्रतिष्ठा खो बैठता है तथा नैतिक ह्रास के कारण एक प्रकार से विवेकशून्य हो जाता है। अत: मद्यपान उन लोगों की समस्या नहीं है जो कभी-कभी खुशी या गम के अवसर पर थोड़ी-सी मदिरा पी लेते हैं और बातचीत व हँसी-मजाक करके खाना खाकर सो जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए मदिरा शारीरिक या मानसिक कमजोरी नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन से मद्यपान की निम्नांकित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं—

1. मद्यपान अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन की आदत है।

2. मद्यपान की आदत में व्यक्ति मदिरापान करने के लिए अपनी विवशता प्रकट करता है।

3. मद्यपान व्यक्ति के लिए जीवन की वह स्थिति है जिससे मदिरा उसके जीवन के लिए एक समस्या बन जाती है और वह उसे आसानी से छोड़ नहीं पाता है।

4. यह आदत कभी-कभी अथवा अधिकांशत: मदिरा-सेवन करने वाले व्यक्ति के व्यवहार और कार्यक्षमता में गम्भीर दोष उत्पन्न कर देती है।

5. मद्यपान की स्थिति में व्यक्ति शारीरिक व संवेगात्मक नुकसान उठाता है।

6. मद्यपान एक मानसिक व शारीरिक बीमारी है जो अनेक प्रकार के रोगों और व्यवहार विवादों को जन्म देती है।

टेकचन्द स्टडी टीम ने मदिरासेवियों (मद्यसारिकों) की निम्न छह श्रेणियाँ बताई हैं—

1. कभी-कभी पीने वाले,

2. संयत पीने वाले (एक सप्ताह में तीन बार),

3. अभ्यस्त, सामाजिक अथवा भोजन के साथ पीने वाले (हफ्ते में तीन बार से ज्यादा लेने वाले),

4. अधिक *(Heavy)* पीने वाले (वे लोग जो इतना पीते हैं कि घर, समाज या व्यापार में भी कठिनाई में पड़ जाते हैं परन्तु वे इसे स्वेच्छा से छोड़ सकते हैं),

5. व्यसनी पीने वाले (वे जो अपने आप मदिरा सेवन नहीं छोड़ सकते और जिन्हें उपचार की जरूरत है), तथा

6. चिर-कालिक पीने वाले (वे लोग जो तन और मन से गिरावट की स्थिति में हैं)।

मद्यपान बनाम मादक द्रव्य व्यसन

मद्यपान मदिरा का अधिक सेवन है, तो मादक द्रव्य व्यसन उन नशीली औषधियों का प्रयोग है जिन पर व्यक्ति इतना अधिक आश्रित हो जाता है कि ऐसा करना न केवल उसकी आदत बन जाती है, अपितु उसके जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित भी करती है। इसीलिए मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का परिणाम यद्यपि एक-जैसा होता है, तथापि दोनों में अन्तर भी है। मद्यपान आदिकाल से चली आ रही एक सार्वभौमिक समस्या है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन औषधि विज्ञान में हुई प्रगति के परिणामस्वरूप विकसित एक आधुनिक समस्या है। चिकित्सा पद्धति के अतिरिक्त किसी भी मात्रा में शक्ति, आवृत्ति या प्रकार से किसी दवा का सेवन, जो शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं को क्षति पहुँचाए, मादक द्रव्य व्यसन कहलाता है। अन्य शब्दों में, यह नशीली दवाओं का दुरुपयोग है।

मद्यपान सामान्यतया सायंकाल एवं रात्रिकाल में अधिक किया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन का कोई समय नहीं है। मादक द्रव्यों का प्रयोग अधिकांश व्यसनी दिन के समय में ही करते हैं। इसलिए उनमें अनेक ऐसे लक्षण पैदा हो जाते हैं जोकि मद्यपान के परिणामस्वरूप विकसित नहीं होते। इन लक्षणों में खेलकूद और दिनचर्या में अरुचि, भूख व वजन में कमी, लड़खड़ाते कदम, बेढंगी हरकतें, आँखों में लालिमा, सूजन व धुँधलापन, जुबान का लड़खड़ाना, उनींदापन या अनिन्द्रा, सुस्ती और अकर्मण्यता का होना, तीव्र उद्विग्नता, घबराहट, शरीर पसीने से तरबतर हो जाना, स्मरण शक्ति और एकाग्रता की क्षीणता, अकेलेपन की चाह खासकर शौचालय में अधिक समय बिताना, तथा घर से सामान/पैसा गायब हो जाना प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, शरीर पर अनेक टीकों के ताजे निशान व कपड़ों पर खून के धब्बे, घर में सुइयों व अजीबो-गरीब पैकटों का पाया जाना भी मादक द्रव्य व्यसन के लक्षण हैं। मद्यपान में इस प्रकार की कोई वस्तु नहीं पाई जाती है।

मद्यपान का प्रचलन बड़ों की तुलना में बच्चों में कम पाया जाता है, जबकि मादक द्रव्य व्यसन की आदत अधिकतर *16* से *35* वर्ष की आयु वाले लोगों में अधिक पाई जाती है। निम्न आय वर्ग में मादक द्रव्यों के व्यसनी अधिक होते हैं। इस प्रकार के ज्यादातर व्यसनी बेरोजगार, श्रमिक, परिवहन मजदूर या विद्यार्थी होते हैं।

मदिरा सामान्यतया शराब की दुकानों अथवा ठेकों में उपलब्ध होती है। ये दुकानों एवं ठेके सरकार द्वारा अनुमोदित होते हैं। इसके विपरीत, मादक द्रव्य मुख्य रूप से फेरीवाले, दुकानदार और पानवाले गैर-कानूनी रूप से बेचते हैं। पान वाली दुकानों में तथा अंग्रेजी दवाएँ बेचने वाली दुकानों में ऐसे मादक द्रव्य सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।

मादक द्रव्य व्यसन का इतिहास काफी प्राचीन है तथा यूरोप, एशिया व सुदूरवर्ती पूर्वी और पश्चिमी देशों में इसका प्रयोग किसी ने किसी रूप में अवश्य होता रहा है। उदाहरणार्थ, भारत में मादक द्रव्यों का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आया है। हिन्दू ग्रन्थों में 'सोमरस' नामक मादक द्रव्य तथा भांग का उल्लेख मिलता है। भांग को शिवजी का प्रिय पेय समझा गया है तथा शिवरात्रि वाले दिन अधिकतर लोग भांग पीते हैं। इस प्रकार, कई मादक द्रव्यों के प्रयोग

को भारत में कुछ सीमा तक धार्मिक स्वीकृति भी मिली हुई है। होली के त्योहार पर भांग का प्रयोग बहुधा होता है। साधु-सन्त तथा महात्मा लोग गांजा, चरस तथा कोकीन का बहुधा प्रयोग करते हैं। भारत में अफीम का उपयोग भी अधिक हो गया है तथा कुछ लोग नींद के लिए इसे दवा के रूप में प्रयोग करते हैं। केवल भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में अफीम, गांजे और चरस का प्रयोग काफी बढ़ गया है।

मादक द्रव्यों को उत्तेजक (कोकीन, डक्सीड्रीन, मेथेड्रीन आदि), निश्चेतक अफीम, गांजा, चरस आदि तथा मायिक या भ्रान्तिजनक (एल० एस० डी० आदि) में विभाजित किया जा सकता है। उत्तेजक द्रव्य खाने से नींद नहीं आती है और ऐसा लगता है की शरीर की ऊर्जा शक्ति बढ़ गई हैं; निश्चेतक द्रव्य खाने से उनींदापन महसूस होता है, चित्त प्रसन्न लगता है तथा उदासी की भावनाएँ दूर हो जाती हैं तथा मायिक द्रव्यों के प्रयोग से व्यक्ति दिन को सपने देखने लगता है तथा उसका सम्बन्ध वास्तविकता से टूट जाता है।

मद्यपान और मादक द्रव्य व्यसन दोनों वैयक्तिक विघटन के प्रमुख रूप माने जाते हैं। मद्यपान एक ऐसा दीर्घकालिक व्यवहार-सम्बन्धी विकार है जिसमें व्यक्ति इतनी अधिक मात्रा में मदिरा-सेवन करने लगता है कि उसकी मदिरा पीने की आदत उसके स्वास्थ्य तथा सामाजिक व आर्थिक कार्यों में हस्तक्षेप करने लगती है। मादक द्रव्य व्यसन व्यक्ति की वह स्थिति है जिसमें वह किसी नशीली औषधि का इतना अधिक सेवन करने लगता है कि वह सामान्य अवस्था में रहने के लिए भी उस पर आश्रित हो जाता है। अगर वह औषधि उसे नहीं मिलती तो वह बीमार सा अनुभव करता है। यह एक प्रकार से मादक द्रव्यों (नशीली दवाओं) के अत्यधिक सेवन की स्थिति है। दोनों के कारणों एवं परिणामों में इतनी अधिक समानता है कि इस दृष्टि से भी इन दोनों में अन्तर करना एक कठिन कार्य है।

11.3 मद्यपान का परिमाण

मद्यपान भारत में एक समस्या है क्योंकि इसका दुरुपयोग सम्बन्धित व्यक्ति, उसके परिवार एवं समुदाय के लिए अनेक प्रकार की समस्याएँ विकसित कर देता है। महात्मा गांधी ने इस सन्दर्भ में कहा था कि, ''मद्यपान को मैं चोरी और यहाँ तक कि वेश्यावृत्ति से भी अधिक बुरा मानता

हूँ क्योंकि यह दोनों ही बुराइयाँ मद्यपान से पैदा होती हैं।'' इसीलिए स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में मद्यनिषेध पर काफी जोर दिया गया। मदिरा के उत्पादन से सरकार को इतना अधिक आबकारी कर प्राप्त होता है कि इसे बन्द करना अत्यधिक कठिन है। इसके उत्पादन में होने वाली वृद्धि का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि *1970* ई० में भारत में शराब का उत्पादन केवल ६० लाख लीटर था जो *1992-1993* ई० तक बढ़कर *887·2* मिलियन लीटर, *1999-2000* ई० में *1,654* मिलियन लीटर तथा *2007-2008* ई० में बढ़कर *2,300* मिलियन लीटर हो गया। दक्षिण-पूर्व एशिया में कुल शराब के उत्पादन में *65* प्रतिशत हिस्सा भारत का है। इतना ही नहीं, वैश्विक उदारीकरण के इस युग में विदेशी मदिरा भी काफी मात्रा में भारत में उपलब्ध है।

नशीले पदार्थों के शिकार केवल युवक ही नहीं हैं अपितु अब *12* से *14* वर्ष तक के बच्चे भी इसमें शामिल हो गए हैं। सन् *1986* में भारतीय चिकित्सालय अनुसन्धान परिषद् द्वारा किए गए सर्वेक्षण से हमें यह पता चलता है कि अब प्रतिभाशाली तथा अच्छे छात्र सामान्य तथा मन्द बुद्धि छात्रों की अपेक्षा इन पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं। नशीले पदार्थों का सर्वाधिक सेवन परीक्षाओं के समय ही पाया गया है। अधिकतर छात्र इन पदार्थों का सेवन थकान दूर करने या तनाव कम करने के लिए करते हैं। कुछ छात्र यह सोचकर नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं कि इन्हें लेने से याददाश्त तेज हो जाती है। सर्वेक्षण के अनुसार बड़े शहरों में या विद्यालयों में तथा विश्वविद्यालय में *25* प्रतिशत छात्र नशीले पदार्थों का सेवन करते पाए गए। यह लत सर्वाधिक *35* प्रतिशत दिल्ली विश्वविद्यालय के छात्रों में पाई गई। यह प्रतिशत उन शिक्षण संस्थाओं में और अधिक है जहाँ शिक्षा का स्तर अपेक्षाकृत अच्छा है तथा जहाँ छात्रों को काफी अधिक छूट मिली हुई है। स्कूलों में नशीले पदार्थों का सेवन भी चिन्ता का विषय बनता जा रहा है। यह बात पब्लिक स्कूलों के छात्रों में अधिक पाई जाती है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के समाज कार्य विभाग के प्रोफेसर पी० एन० गोविल के अनुसार, नशे की लत बढ़ने का एक प्रमुख कारण शिक्षकों तथा छात्रों के बीच परम्परागत घनिष्ठ तथा वैयक्तिक सम्बन्धों का अभाव है। उनके अनुसार समाज का तेजी से बदलता परिवेश भी इसके लिए बहुत हद तक जिम्मेदार है। आजकल तो आप अगर समाज में अपनी इज्जत कराना

चाहते हैं तो आपको शराब और सिगरेट तो पीनी ही होगी। साथ ही, उनका कहना है कि मादक औषधियाँ आसानी से मिल जाती हैं। अधिकारियों की मिलीभगत तथा उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण ही ऐसा हो पाया है।

ऐसा अनुमान किया गया है कि मुम्बई नगर में *1* लाख *50* हजार व्यक्ति हेरोइन सेवन के आदी हैं। दिल्ली में इनकी संख्या *1* लाख और कोलकाता में *70* हजार है। एक संगोष्ठी में विशेषज्ञों ने यह विचार व्यक्त किया कि भारत में यदि यही प्रवृत्ति रही तो *21*वीं शताब्दी के प्रारम्भ में यहाँ दो करोड़ व्यक्ति इस हेरोइन के शिकार हो जाएँगे। इसलिए इस मादक द्रव्य को सफेद प्लेग *(White plague)* भी कहा गया है।

दिल्ली में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार हाई स्कूल के दो छात्रों में से एक और कॉलेज के तीन छात्रों में से एक विद्यार्थी मादक द्रव्यों के सेवन का आदी हो चुका है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यदि देखें तो मुम्बई में एक अस्पताल द्वारा किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जिन व्यसनियों को उपचार के लिए लाया गया उन चार में से एक श्रमिक वर्ग का था। दिल्ली में *5,834* मादक द्रव्य वेचने वाले और सेवन करने वाले पकड़े गए जिनमें से *5,506* निम्न वर्ग, झुग्गी-झोपड़ियों से सम्बन्धित थे। एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी श्री गौतम कौल के अनुसार, पंजाब पुलिस में कम से कम पच्चीस प्रतिशत लोग मादक द्रव्यों के सेवन के आदी हैं। दिल्ली के आटो-रिक्शा चालाकों में *70–80* प्रतिशत मादक द्रव्यों का प्रयोग करते हैं। पिछले चार वर्षों से सम्बन्धित विभागों द्वारा पकड़े गए माल की मात्रा और उसके मूल्य के अनुमान से पता चलता है कि भारत मादक द्रव्य के व्यापार का महत्त्वपूर्ण मार्ग बन गया है। ऐसे द्रव्य भारत होते हुए यूरोप, अमेरिका व अन्य देशों को भेजे जाते हैं। सी० बी० ममोरिया *(C. B. Mamoria)* के अनुसार भारत की लगभग *12* प्रतिशत जनसंख्या इससे प्रभावित है परन्तु आजकल यह प्रतिशत कहीं अधिक हो गया है क्योंकि शिक्षण वर्ग में विशेषकर छात्रों तथा छात्राओं में इसका प्रयोग बहुत अधिक बढ़ गया है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार मद्यपान से पूरे विश्व में प्रतिवर्ष *2·5* मिलियन लोगों की मृत्यु होती है। यह मृत्यु के कारणों में आठवाँ सबसे कारण है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार

भारत में मद्यपान अभी भी अन्य देशों की तुलना में काफी कम है। सरकारी अनुमान के अनुसार भारत में *21* प्रतिशत वयस्क पुरुष तथा *2* प्रतिशत वयस्क स्त्रियाँ ही मद्यसारिक हैं। भारत में लगभग *14* मिलियन ऐसे मद्यसारिक हैं जिन्हें अब सहायता की आवश्यकता है। गैर-सरकारी संगठनों द्वारा मद्यपान के परिमाण के बारे में लगाए गए अनुमान कहीं अधिक है। ऐसा माना जाता है कि भारत में *7·5* करोड़ लोग मद्यसारिक हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण संगठन द्वारा *2005-06* में संकलित आँकड़ों, जोकि सितम्बर *2007* में प्रकाशित हुए, से पता चलता है कि *32* प्रतिशत वर्तमान मद्यसारिकों में *4* से *13* प्रतिशत रोजाना पीने वाले हैं। यह प्रतिशत ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या के लिए लगभग एक-जैसा (क्रमश: *32* प्रतिशत एवं *31* प्रतिशत) है।

ऐसा अनुमान है कि पिछले पाँच वर्षों में भारत में मदिरा सेवन में *171* प्रतिशत वृद्धि हुई है। पंजाब, आन्ध्र प्रदेश, गोवा तथा उत्तर-पूर्वी राज्यों में मद्यपान अधिक होता है। असम, अरुणाचल प्रदेश, सिक्किम, उत्तर-पूर्व, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा तथा आन्ध्र प्रदेश में महिलाओं में मद्यपान पुरुषों की तुलना में अधिक है। इस प्रकार, भारत में मद्यपान के प्रतिमानों एवं प्रवृत्तियों में तेजी से परिवर्तन हुआ है। मद्यसारिक बनने की आयु पहले की तुलना में कम हो गई है। भारत में अब *15* वर्ष तक की आयु के लड़कों में मद्यपान की आदत पड़ने लगती है। *1990* के दशक में हुए अध्ययनों में यह आयु *28* वर्ष थी। कम उम्र में पीने वाले *47-50* प्रतिशत लड़के अपने जीवन की किसी-न-किसी अवस्था में मद्यपान के आदी हो जाते हैं। *21* वर्ष से कम आयु में मद्यसारिक बनने वालो की संख्या *15* वर्ष में *2* प्रतिशत से बढ़कर *14* प्रतिशत हो गई है। केरल जैसे राज्य में मद्यपान प्रारम्भ करने की आयु दो दशकों में *19* वर्ष से घटकर *13* वर्ष हो गई है।

11.4 मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया

व्यक्ति के मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार सोपानों में विभाजित किया जा सकता है—

1. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के प्रथम सोपान में मद्यपान वास्तविकता से बचने का मनोवैज्ञानिक प्रयास माना जाता है। व्यक्ति सोचता है कि मदिरा सेवन से उसका मूड ठीक हो जाएगा। इस अवस्था में मदिरा सेवन सामाजिक न होकर अवरोधनों *(Inhibitions)* एवं समस्याओं से बचने का एक साधन बन जाता है। इसी अवस्था में धीरे-धीरे अधिक मदिरा सेवन की आदत विकसित होने लगती है।

2. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के दूसरे सोपान में मद्यपान की आवश्यकता अधिक प्रबल हो जाती है। जो व्यक्ति किसी समस्या के तनाव से बचने के लिए मद्यपान करते हैं, वे इस अवस्था में दिन को भी पीना शुरू कर देते हैं। जैसे-जैसे मद्यपान की सहनशीलता बढ़ने लगती है, वैसे-वैसे व्यक्ति मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण ही मदिरा का सेवन नहीं करता अपितु वह मदिरा पर आश्रित भी हो जाता है। यद्यपि इस सोपान में 'नियन्त्रण का लोप' *(Loss of control)* नियमित रूप में नहीं होता, तथापि नातेदार, परिजन, पड़ोसी, मित्र तथा सहकर्मी इस बात का अहसास करने लगते हैं कि उसने पी रखी है तथा सम्भवत: इसीलिए उसका अपने शरीर पर पूरा नियन्त्रण नहीं है। मद्यसारिक मद्यपान के बारे में अधिक उत्सुक रहता है तथा यदि वह इसे छोड़ना भी चाहे तो उसके लिए ऐसा सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे सोपान में मदिरापान के शारीरिक लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं। इन लक्षणों मे धुँधला दिखना, अस्पष्ट बोली, आँखे लाल होना, चेहरा पीला होना, आँखों के नीचे काले घेरे होना, सिर में भारीपन, अनिद्रा आदि प्रमुख हैं। मद्यसारिक अपनी समस्याओं का कारण मद्यपान न मानकर इसका दोष दूसरों को देने लगता है।

3. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के तीसरे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' अधिक स्पष्ट एवं दिखाई देने वाला लक्षण बन जाता है। यह वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति एक बार पीना प्रारम्भ कर दे तो उसे लगता है कि उसे और पीना चाहिए। अन्य शब्दों में इस सोपान में मद्यसारिक का मद्यपान पर नियन्त्रण नहीं रहता। मद्यसारिक अधिक गम्भीर समस्याओं का शिकार हो जाता है जिससे उसके अन्य लोगों से सम्बन्ध तक बिगड़ने लगते हैं। वह आर्थिक एवं वैधानिक समस्याओं का शिकार भी हो सकता है। इस सोपान में मद्यसारिक अपने मित्रों एवं परिजनों से बचने का प्रयास करता है तथा उन क्रियाओं से दूर रहने का प्रयास करता है जो उसके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही हैं। इस सोपान में मद्यसारिक खाने, पानी,

अपने स्वास्थ्य, आवास तथा व्यक्तिगत अन्तर्क्रिया जैसी आवश्यकताओं की उपेक्षा करने लगता है। वह पेशेवर स्वास्थ्य सहायता लेने का भी आधा-अधूरा प्रयास करता है।

4. मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया के चोथे सोपान में मद्यसारिक का अपने शरीर पर 'नियन्त्रण का लोप' चिरकालिक बन जाता है। उसके लिए कार्यस्थल एवं अन्य परिस्थितियों में अपने को संयमित रख पाना कठिन हो जाता है। इस सोपान में उसके हाथ एवं सम्पूर्ण शरीर काँपने लगता है। यह कँपकँपी मद्यसारिक में स्नायविक गड़बड़ *(Nervous disorder)* की द्योतक है। यह वह सोपान है जिसमें मद्यपान से व्यक्ति की मृत्यु भी हो सकती है।

11.5 मद्य दुरुपयोग के कारण

छोटी सी आयु से ही मादक द्रव्यों के सेवन के कारणों का जिक्र किया जाना बहुत आवश्यक है। इसके लिए निम्नलिखित प्रमुख कारण उत्तरदायी हैं—

1. **वैयक्तिक कारण**—अधिकतर व्यक्ति व्यक्तिगत कारणों जैसे बुरी संगत में रहकर मनोरंजन के लिए, व्यावसायिक मनोरंजन के लिए, शारीरिक थकान को कम करने के लिए, असफल प्रेमी होने के कारण, कुरूप होने के कारण अथवा नीरस तथा निराशाओं से घिरे होने के कारण ही मद्यपान शुरू करते हैं। एक बार व्यक्ति इन कारणों से शराबी हो जाए तो बाद में उसके लिए शराब छोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है।

2. **पारिवारिक कारण**—मद्यपान में पारिवारिक स्थिति भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है क्योंकि अगर यह पहले से ठीक नहीं है तो बच्चों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, अगर माता-पिता दोनों अथवा एक मद्यपान करते हैं और अनैतिक कार्यों में लगे हुए हैं, तो बच्चे अनैतिकता से कैसे बच सकते हैं। पारिवारिक जीवन से दु:खी व्यक्ति अथवा सौतेले माता-पिता द्वारा सताए व्यक्तियों में मद्यपान की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिली है। साथ ही, प्राय: यह देखा गया है कि जिन परिवारों में कई पीढ़ियों से मदिरा-सेवन होता है, उनमें बच्चे भी इसे पैतृकतावश अपना लेते हैं।

3.**आर्थिक कारण**—आर्थिक दृष्टि से असन्तुष्ट व्यक्तियों में शराब सेवन अधिक पाया जाता है। गरीब तथा निम्न वर्ग के व्यक्ति शराब सेवन करते है। व्यवसाय में निराशा, असुरक्षा अथवा

इसके फेल हो जाने पर अथवा कठिन व्यवसाय में लगे हुए होने के कारण (जैसे सैनिक जीवन) मद्यपान की आदत पड़ सकती है। ट्रक ड्राइवरों में शराब सेवन अधिक देखा गया है।

***4.* सामाजिक एवं धार्मिक कारण**—हमारी अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रथाएँ भी मद्यपान को प्रोत्साहन देती हैं। उदाहरणार्थ, अनेक सामाजिक व धार्मिक उत्सवों (जैसे दीवाली, दशहरा, होली इत्यादि) तथा अन्य अवसरों (जैसे लड़के का जन्म, विवाह इत्यादि) के समय अधिकतर शराब का सेवन होता है तथा इन समयों पर इसे बुरा भी नहीं माना जाता। जहाँ पर मद्यपान निराशाओं तथा विफलताओं के समय छुटकारा दिलाने में सहायता देता है, वहीं पर खुशी के समय मद्यपान एक मान्य सी बात हो गई है।

***5.* यौन सुख में उत्तेजना के लिए**—कुछ लोग मद्यपान यौन सुख में उत्तेजना लाने के लिए करते हैं क्योंकि इससे यौन सम्बन्धी कामना अधिक जाग्रत होती है। वेश्यागामी पुरुषों एवं अधिक कामी पुरुषों में इसका अधिक सेवन किया जाता है। भारतवर्ष में राजाओं, नवाबों व जमींदारों का इतिहास अगर देखा जाए तो काम उत्तेजना हेतु मदिरा सेवन के अनेक उदाहरण मिलते हैं। अब्राहम ने मद्यपान एवं यौन प्रवृत्ति में प्रत्यक्ष सम्बन्ध बताया है।

***6.* मनोवैज्ञानिक कारण**—कुछ मनोवैज्ञानिक कारण भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते हैं। उदाहरणार्थ, चिन्ता से मुक्ति की भावना मद्यपान को प्रोत्साहन देती है क्योंकि कुछ लोगों का विचार है कि मद्यपान द्वारा व्यक्ति अपनी निराशाओं, चिन्ताओं व गम को भूल जाता है। परन्तु आज यह एक भ्रामिक तथ्य माना जाता है क्योंकि मद्यपान से चिन्ता बढ़ सकती है। एल० पी० क्लार्क के अनुसार मस्तिष्क की विकृति का विकल्प शराबीपन है। आन्तरिक अपराधी भावना से बचाव अथवा असुरक्षा की भावना आदि के विचार भी मद्यपान को प्रोत्साहन देते हैं।

***7.* दूषित पर्यावरण**—गन्दी (मलिन) बस्तियों जैसे दूषित पर्यावरण तथा स्वास्थ्यपूर्ण मनोरंजन के साधनों का अभाव भी कई बार मद्यपान को प्रोत्साहन देता है। अगर व्यक्ति के चारों तरफ का पर्यावरण दूषित है तो वह उसकी बुराइयों से ज्यादा देर तक बचा हुआ नहीं रह सकता है।

***8.* सुविधा से प्राप्य**—शराब उन चीजों से बनती है जो आसानी से मिल जाती हैं। इसलिए यह हर जगह सरलता से मिल जाती है। यह भी इसके प्रसार का एक कारण है।

***9.* निहित स्वार्थों द्वारा प्रयास**—मद्य के विक्रय में अनेक कानूनी और गैर-कानूनी संगठन लगे हुए हैं क्योंकि इसमें लाभ का हिस्सा ज्यादा है। उनके प्रयासों द्वारा भी मद्यपान का प्रसार होता

है। जहाँ पहले इक्का-दुक्का शराब की दुकानें दिखाई देती थीं अब खुद राज्य ने जगह-बेजगह ठेकों पर शराब की दुकानें खुलवा दी हैं।

11.6 मद्यपान की समस्याएँ

मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन का व्यक्ति, समाज तथा परिवार पर काफी गम्भीर प्रभाव पड़ता है। इससे वैयक्तिक, पारिवारिक व सामाजिक विघटन होता है और नाना प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो जाती है। ममोरिया तथा अन्य विद्वानों ने मद्यपान (जोकि मादक द्रव्य व्यसन के लिए भी लागू होते हैं) के अनेक प्रभावों का वर्णन किया है जिनसे आर्थिक, सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। ये हैं—

1. इससे अपराध, नियम अवहेलना तथा भ्रष्टाचार बढ़ता है,

2. इससे व्यक्तियों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है,

3. इससे मानव मस्तिष्क प्रभावित होता है। जब तक मद्यपान अथवा मादक द्रव्य का प्रभाव रहता है मस्तिष्क ठीक तरह से काम नही करता,

4. शिक्षा का नुकसान होता है,

5. श्रमिक की क्षमता कम हो जाती है तथा इससे उत्पादन में नुकसान होता है,

6. यह पारिवारिक खुशी की समाप्ति का मूल कारण है,

7. वृद्धावस्था में इससे असहनीय स्थिति पैदा हो जाती है,

8. आश्रितों तथा अन्त में सम्पूर्ण समाज को क्षति होती है,

9. व्यसनी के शारीरिक क्षमता पर कुप्रभाव, विशेषत: यौन शक्ति का ह्रास होता है तथा

10. मादक द्रव्यों का छह महीनों तक निरन्तर उपयोग व्यक्ति के मिजाज को चिड़चिड़ा बना देता है तथा वह शारीरिक रूप से जटिल कार्य करने के लिए सक्षम नहीं रहता।

इस भाँति, मादक द्रव्यों का सेवन अर्थव्यवस्था, कानून व्यवस्था, समाज एवं व्यक्ति के लिए इतना घातक है कि आज यह विश्व के सम्मुख सबसे बड़ी चुनौती बन गया है।

मद्यपान अनेक प्रकार की अन्य समस्याओं को भी जन्म देता है, जिनमें से प्रमुख निम्न प्रकार हैं—

***1.* मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन**—इलियट तथा मैरिल का कहना है कि मद्यपान वैयक्तिक विघटन का सूचक भी है तथा कारण भी। सूचक इसलिए है कि मद्यपान से पहले उसने वैयक्तिक निराशाओं का सामना किया है। अगर मद्यपान न हो, तो हो सकता है वैयक्तिक निराशाएँ तथा असुरक्षा कोई दूसरा रूप धारण कर लें। मादक द्रव्य व्यसन वास्तविकता भुलाने का दूसरा तरीका हो सकता है। मद्यपान से व्यक्ति अपने पैसे का दुरुपयोग करता है, पत्नी व बच्चों का ख्याल नहीं रखता, पत्नी को पीटता है तथा अन्य स्त्रियों के साथ अनैतिक सम्बन्ध रखता है। ये सब वैयक्तिक विघटन के ही चिह्न हैं। मद्यपान करने वाला व्यक्ति प्राथमिक समूहों के प्रभाव से दूर होता चला जाता है। निवास स्थान तथा व्यवसाय में गतिशीलता, स्कूल अथवा कॉलेज शिक्षा को पूरा न करना, मनोरंजन के अन्य साधनों पर कम आश्रित होना, विवाह न करना अथवा पृथक्करण या तलाक होना इस बात की निशानी है कि मद्यपान करने वाले व्यक्ति पर प्राथमिक समूहों का प्रभाव बहुत कम होता है। शराब क्योंकि व्यक्तिगत परेशानियों को दूर करने का स्थायी साधन नहीं है, इसलिए शराब पीने से कुछ निकलने के बजाय उसका अपना विघटन शुरू हो जाता है। उसका अपना चरित्र तथा नैतिक पहलू कमजोर हो जाता है तथा अन्त में वह मानसिक रोगी बन जाता है।

***2.* मद्यपान तथा पारिवारिक विघटन**—मद्यपान पारिवारिक विघटन का भी एक प्रमुख कारण है। पारिवारिक व्यक्ति के लिए शराब पीना कभी अच्छा नहीं हो सकता क्योंकि इससे पत्नी व बच्चों के प्रति त्याग कम हो जाता है। शराबी अपना समय, पैसा तथा शक्ति शराब में ही नष्ट कर देता है तथा परिवार के लिए उसके पास कुछ बचता ही नहीं। पहले तो अधिक मद्यपान करने वाला व्यक्ति विवाह ही नहीं करता (क्योंकि बोतल पत्नी का ही स्थानापन्न या विकल्प है) और अगर करता भी है तो मद्यपान से पति तथा पत्नी के सामाजिक कार्य बिगड़ने लगते हैं। दोनों के सम्बन्धों में तनाव बना रहता है। पत्नी से छुटकारे का एक ही तरीका रहता है तलाक क्योंकि बच्चों की देख-रेख भी बिलकुल नहीं हो पाती। इस प्रकार, मद्यपान केवल वैयक्तिक विघटन तक ही सीमित नहीं है अपितु परिवार भी इससे बुरी तरह से प्रभावित होता है।

***3.*मद्यपान तथा आर्थिक विघटन**—यद्यपि कुछ व्यक्ति पैसा अधिक होने के कारण मद्यपान करते हैं, परन्तु अधिकतर शराबी अपने आर्थिक जीवन से असन्तुष्ट होने के कारण शराब का

सेवन करने लगते हैं। जो थोड़ा बहुत पैसा वे कमाते हैं वह शराब में नष्ट हो जाता है और परिवार की आवश्यकताएँ पूरी नहीं हो पाती। शराबी घर का सामान, गहने इत्यादि गिरवी रखकर भी शराब पीने से नहीं चूकते। इस प्रकार, मद्यपान परिवार के आर्थिक जीवन को बिलकुल खोखला कर देता है।

***4.* मद्यपान तथा सामाजिक विघटन**—मद्यपान व्यक्ति के बाद परिवार और फिर परिवार के बाद सामाजिक विघटन करता है क्योंकि मद्यपान करने वाला व्यक्ति अपनी सामाजिक भूमिकाओं का निर्वाह ठीक प्रकार से नहीं कर सकता है। इससे अनेक अन्य बुराइयों (यथा अपराध, जुआ, वेश्यावृत्ति आदि) को भी प्रोत्साहन मिलता है जो सामाजिक विघटन की प्रक्रिया को और तेज कर देती हैं।

***5.* मद्यपान, अनैतिकता तथा अपराध**—शराबी व्यक्तियों का नैतिक पहलू काफी कमजोर हो जाता है और उनका मानसिक सन्तुलन भी ठीक नहीं रहता है। बस उसे दो ही बातों की आवश्यकता रहती है पैसा तथा शराब। पैसा अगर नहीं होगा तो शराबी का ध्यान गलत कार्यों की तरफ आकर्षित होता है और वह आत्महत्या, डकैती, बलात्कार इत्यादि अपराधों को करने लगता है। एक बार अपराधी जीवन में फँस जाने के बाद वह उससे कभी निकल नहीं सकता। इस प्रकार, जहाँ पर मद्यपान अनैतिकता को प्रोत्साहन देता है वहीं पर इससे अपराधी प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा मिलता है।

***6.* मद्यपान तथा शारीरिक पतन**—मद्यपान से शरीर और मस्तिष्क में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। अत्यधिक मद्यपान से शरीर कमजोर हो जाता है। इलियट तथा मैरिल के अनुसार, ''मदिरा एक नियन्त्रक के रूप में कार्य करती है जिसके फलस्वरूप यह उसकी प्रतिक्रियाओं की गति को धीमा करती है, निर्णय की योग्यता को कम करती है और सीखे हुए व्यवहार पर उसका नियन्त्रण कम होने लगता है।''

टेकचन्द अध्ययन दल ने उचित ही टिप्पणी की है कि मदिरा-सेवन, वास्तव में, समस्याओं को जन्म देने वाला है जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं—पारिवारिक समस्याएँ, धार्मिक समस्याएँ, उपचारात्मक समस्याएँ, औद्योगिक समस्याएँ, आर्थिक समस्याएँ, भ्रष्टाचार की समस्याएँ, कानून को लागू करने की समस्याएँ तथा यातायात की समस्याएँ।

वास्तव में, संयत मद्यपान भी दो रूपों में समस्यामूलक है—एक, यह आदमी में आदत निर्माण करने की प्रवृत्ति रखता है जो धीरे-धीरे सन्तुष्ट न हो सकने वाली भूख बन जाती है, और दूसरे, संयत पीने वाला एक झूठी सुरक्षा की भावना महसूस करता है। वह इस भ्रामक आत्मविश्वास में रहता है कि उसकी क्षमताओं पर इसका कोई असर नहीं हो रहा। अधिकतर दुर्घटनाएँ उन व्यक्तियों द्वारा की जाती है जो मदिरा के प्रभाव में तो होते हैं पर जिन्हें नशे की हालत में नहीं कहा जा सकता।

11.7 मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण

मद्यपान के दुष्परिणामों को ध्यान में रखते हुए समाज सुधारक शताब्दियों से इसके निषेध का प्रयत्न करते आ रहे हैं तथा इसके लिए अनेक प्रकार के धार्मिक एवं राजकीय निषेध लगाए जा रहे हैं। नशानिषेध या मद्यनिषेध का अर्थ ऐसी नीति या कानून है जिसके अन्तर्गत नशे के लिए मदिरा के सेवन पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है तथा केवल औषधि के रूप में उसके अत्यन्त सीमित सेवन की अनुमति दी जाती है। भारतीय संविधान के राज्य-नीति के निदेशक सिद्धान्तों *(Directive Principles of State Policy)* के अन्तर्गत राज्य को मद्यनिषेध की नीति अपनाने का निर्देश दिया गया है। अगर हम भारत में मादक पदार्थों के सेवन के इतिहास को देखें, तो यद्यपि उनका उल्लेख आदिकाल से मिलता है, फिर भी इन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। अंग्रेजों ने आबकारी कर लगाकर मद्य को आय का एक साधन बनाया और इसका प्रचार होने लगा।

मद्यनिषेध का सर्वप्रथम प्रयास गांधी जी के द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम के समय ही *1920* से किया गया था तथा *1921* में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने नशाबन्दी के लिए प्रस्ताव पारित किया, *1930* में असहयोग आन्दोलन में मद्यनिषेध भी कार्यक्रम का एक हिस्सा था तथा *1937* से *1939* में पाँच प्रदेशों में कांग्रेस सरकारों द्वारा मद्यनिषेध के लिए अधिनियम पारित किए गए। महात्मा गांधी जी का कहना था कि मद्यपान जलते हुए अग्नि कांड या तूफानी नदी की ओर लपकने से भी अधिक खतरनाक है क्योंकि शराब शरीर और आत्मा दोनों का नाश कर देती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद संविधान के *47*वें अनुच्छेद के अन्तर्गत स्वास्थ्य को प्रभावित

करने वाले मादक द्रव्यों के निषेध को लागू करने की बात कही गई है। सन् *1954* में राज्यों में इस दिशा में हुई प्रगति की समीक्षा के लिए श्रीमन्नारायण की अध्यक्षता में *Prohibition Enquiry Committee* की स्थापना की गई जिसने *1945* में अपनी रिपोर्ट दी। इस कमेटी ने नशाबन्दी को ज्यादा प्रभावशाली और मजबूती से लागू करने के लिए कई सुझाव दिए, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

1. *1* अप्रैल *1958* तक पूरे भारत में मद्यनिषेध कानून बन जाना चाहिए।
2. *1958* के अन्त तक प्रत्येक राज्य सरकार की इस नीति का समर्थन तथा कार्यान्वित करने की योजना बना लेनी चाहिए।
3. होटल, बार, मैस, क्लब, सिनेमा, पार्टी में तथा अन्य सामाजिक व धार्मिक उत्सवों पर पूर्ण नशाबन्दी होनी चाहिए।
4. सरकारी कर्मचारियों के लिए नशाबन्दी नियम बना देना चाहिए।
5. इसमें मद्यनिषेध के लिए अनेक सुझाव दिए गए जैसे कि शराब की दुकानों की संख्या में कमी की जानी चाहिए, सप्ताह में कुछ दिन शराब की दुकानें बन्द होनी चाहिए, कम शराब बेचने के लिए दी जानी चाहिए तथा दुकानें रिहायशी क्षेत्रों से दूर होनी चाहिए।
6. अफीम की सप्लाई सरकार द्वारा *1959* तक बन्द कर दी जानी चाहिए।
7. अन्य मादक द्रव्य बेचने वाली दुकानों में कमी की जानी चाहिए।
8. जनजातियों में शिक्षा द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।
9. विदेशी राजदूतों में सार्वजनिक स्वागत समारोहों के समय शराब के प्रयोग को बन्द किया जाना चाहिए, तथा
10. कानून तथा प्रशासन द्वारा नशाबन्दी लागू की जानी चाहिए।

योजना आयोग ने राज्य सरकारों को मद्यनिषेध से सम्बन्धित अधिनियम बनाने की सिफारिश की तथा *1963* में मुख्यमन्त्री सम्मेलन में इसे पूरी तरह व दृढ़ता से लागू करने का निश्चय किया गया। तत्पश्चात् आन्ध्र प्रदेश के अधिकतर जिलों, चेन्नई, गुजरात तथा महाराष्ट्र में पूर्ण नशाबन्दी लागू की गई है। अन्य प्रदेशों जैसे उड़ीसा, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब तथा उत्तर प्रदेश में आंशिक नशाबन्दी लागू की गई।

योजना आयोग ने *29* अप्रैल, *1963* को पंजाब हाईकोट के न्यायाधीश श्री टेकचन्द की अध्यक्षता में एक अध्ययन दल की नियुक्ति की जिसमें श्री एल० एम० श्रीकान्त तथा डॉ० ए० एम० खुसरो सदस्य थे। इस अध्ययन दल का कार्य अवैध रूप से शराब बनाने की सीमा का पता लगाना, वर्तमान मद्यनिषेध सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करना, मद्यनिषेध के आर्थिक पक्षों का अध्ययन करना, मद्यनिषेध की सरकारी नीति की सफलता का आकलन करना तथा ऐसे सुझाव देना था कि जिससे यह कार्यक्रम सफल हो सके। इस अध्ययन दल की रिपोर्ट *6* मई, *1964* में प्रकाशित हुई। दल ने *30* जनवरी, *1970* तक अथवा अधिक-से-अधिक *1975* तक समस्त देश में मद्यनिषेध लागू करने की सिफारिश की। इसके लिए चार चरणों का कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया। पहले चरण में जिन राज्यों में मद्यनिषेध नहीं है वहाँ सबसे कम असर वाली शराब की खपत की अनुमति दी जाए। दूसरे चरण में देशी शराब की मदिरा-शक्ति घटाकर *10* प्रतिशत कर दी जाए। अंग्रेजी शराब में यह प्रतिशत *14·29* से अधिक न रहने दिया जाए। इसी प्रकार, उत्तरोत्तर चरणों में शराब की खपत को धीरे-धीरे कम करके *1975* तक सम्पूर्ण देश में मद्यनिषेध लागू कर दिया जाए।

टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित सुझाव भी प्रस्तुत किए—

1. मद्यपान की जाँच हेतु नवीन उपकरणों का प्रयोग किया जाए।
2. उच्च आर्थिक स्थिति के लोगों में मद्यपान को प्रतिष्ठा का प्रतीक मानने वाली मनोवृत्ति दूर की जाए।
3. स्प्रिट आदि पीने के दुरुपयोग पर रोक लगाई जाए।
4. ताड़ी पर नियन्त्रण हेतु प्रचार किया जाए।

टेकचन्द की अध्यक्षता वाले अध्ययन दल पर राज्य सरकारों की भी राय माँगी गई थी। अधिकतर राज्यों ने यह मत प्रकट किया कि मद्यनिषेध के मामले में जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए तथा मद्यनिषेध के प्रत्येक पक्ष पर अधिक सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, अधिकतर राज्यों ने *1975* तक सम्पूर्ण मद्यनिषेध की नीति को स्वीकार नहीं किया।

1977 में मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल की सरकार ने पहली बार पूरे देश में मद्यनिषेध की नीति लागू की तथा इसके लिए राज्यों हेतु कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त भी बनाए गए। जनता दल की सरकार गिर जाने के पश्चात् *1980* में कांग्रेस सरकार के गठन के पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि मद्यनिषेध लागू करने के स्थान पर प्रचार के साधनों के द्वारा मद्यपान और मादक द्रव्यों के विरुद्ध जनमत तैयार करना अधिक लाभप्रद है। इसके परिणामस्वरूप पूर्ण मद्यनिषेध की नीति पुन: असफल हो गई। यह भी निर्णय लिया गया कि जो राज्य अपनी इच्छा से मद्यनिषेध लागू करना चाहें, उन्हें आबकारी कर से होने वाली आय का *50* प्रतिशत हिस्सा केन्द्र सरकार द्वारा अनुदान के रूप में दिया जाएगा। यह आबकारी कर राज्यों की आय का प्रमुख स्रोत है जिसके कारण राज्य पूर्ण मद्यनिषेध की नीति लागू करने में संकोच करते हैं। इसका परिणाम यह है कि सभी सरकारी प्रयत्नों के बावजूद मद्यनिषेध पूरी तरह से लागू करना अभी भी सम्भव नहीं हो सका है।

जहाँ तक मादक द्रव्यों के विरुद्ध नीति का प्रश्न है इसके लिए युद्ध स्तर पर कार्य करना होगा। भारतीय सरकार ने समस्या की गम्भीरता को समझा है और नवम्बर *1985* में नया कानून पारित करके महत्त्वपूर्ण कदम उठाया है। मादक द्रव्य नियन्त्रण ब्यूरो को शीर्षक एजेन्सी के रूप में स्थापित किया गया है जिसके अन्तर्गत पुलिस, कस्टम एवं वित्त के सम्बन्धित विभाग कार्य करेंगे। मादक द्रव्यों को पकड़ कर ऊँचे पारितोषिक भी घोषित किए गए हैं जो इनके व्यापार में पहली बार पकड़ा जाएगा, उसे दस से बीस वर्ष की सजा और दो लाख रुपये तक जुर्माना दण्ड के रूप में दिया जा सकता है। दूसरी बार ऐसे अपराध में लिप्त पाए जाने पर पन्द्रह से तीस वर्ष तक की सजा का प्रावधान है। रेडियो, टेलीविज़न तथा चलचित्र आदि माध्यमों पर मादक द्रव्यों के सेवन से होने वाली बुराइयों को भी प्रदर्शित किया जा रहा है ताकि लोग इस बुराई की ओर आकर्षित न हों।

मादक द्रव्य सेवन जिस आयु समूह में फैल रहा है उसकी दृष्टि से निरोधात्मक उपायों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए जैसे माता-पिता या शिक्षकों को इस दिशा में अधिक जानकारी प्रदान की जानी चाहिए ताकि वे सचेत रहें और प्रत्येक बालक पर निगाह रख सकें। बच्चों को

भी उचित ढंग से इस सम्बन्ध में ज्ञान दिया जाना चाहिए। शिक्षकों की इस मादक द्रव्य के उपयोग की रोकथाम में महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है और यह उनका नैतिक एवं सामाजिक दायित्व भी है, परन्तु निरोधात्मक कार्यक्रम के सम्बन्ध में हरबर्ट शैफर ने बहुत ही उचित लिखा है कि, ''किसी भी निरोधात्मक प्रोग्राम के साथ लगी समस्याओं में से एक यह है कि लोग आमतौर से यह विश्वास नहीं करते कि अभिशाप उन्हें घेर लेगा। माता-पिता सदैव यह महसूस करते हैं कि मादक द्रव्य व्यसन उनके बच्चे को नहीं लगेगा और यदि ऐसा हो जाता है तो वे यह नहीं समझ पाते कि ऐसा कैसे हो गया।.....निरोध का आशय है भविष्य और आशा के साथ काम किए जाना।'' यह सच है कि निरोधात्मक कार्यक्रमों की उपलब्धियों को मापा जाना कठिन है, परन्तु इस पुरानी कहावत पर विश्वास रख कर इस दिशा में भरसक प्रयास करते रहना चाहिए कि उपचार से निरोध बेहतर है।

वर्तमान में भारत सरकार का कल्याण मन्त्रालय मद्यनिषेध की नीति को प्रभावशाली बनाने हेतु मादक द्रव्यों के दुष्परिणामों के बारे में जागरूकता विकसित करने तथा जो लोग इस व्यसन के शिकार हो चुके हैं, उनका व्यसन छुड़ाने तथा उनकी देखभाल करने हेतु विशेष केन्द्रों की स्थापना करने के विशेष कार्यक्रम चला रहा है। इसके लिए गैर-सरकारी संगठनों को आर्थिक सहायता भी दी जा रही है। अत: स्पष्ट है कि मद्यपान के दुष्परिणामों को देखते हुए हमारी सरकार ने मद्यनिषेध के लिए अनेक उपाय किए हैं। यद्यपि पूर्ण मद्यनिषेध *(Total prohibition)* व्यावहारिक नहीं हो सकता, फिर भी इसे काफी सीमित किया जा सकता है। सार्वजनिक स्थानों पर बैठकर शराब पीना, शराब पीकर काम पर आना तथा शराब पीकर सफर करना इत्यादि कार्यों को गैर-कानूनी बनाकर मद्यपान काफी हद तक सीमित किया जा सकता है। मनोरंजन के अन्य साधनों जैसे सिनेमा, क्लबों इत्यादि का उचित विकास भी मद्यपान निषेध में सहायक रहा है। कार्यक्रम की सफलता के लिए ऐसे व्यक्तियों के उपचार की भी बृहत् व्यवस्था की जानी चाहिए। यद्यपि इस रोग का इलाज बहुत महँगा है परन्तु मानव जीवन से बढ़कर कोई कीमती नहीं है।

11.8 शब्दावली

मद्यपान — मदिरा सेवन की असामान्य तथा बुरी आदत को मद्यपान कहते हैं। यह वह स्थिति है जो मनुष्य की आत्मा, मन और शरीर को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करके पतन की ओर ले जाती है।

मादक द्रव्य व्यसन — मादक द्रव्य व्यसन देशी अथवा रासायनिक पदार्थों से बने मादक द्रव्यों का आदतन सेवन है जो व्यक्ति के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

11.9 अभ्यास प्रश्न

1. मद्यपान किसे कहते हैं? भारत में मद्यपान के विस्तार को समझाइए।

2. मद्यपान को परिभाषित कीजिए तथा इसके प्रमुख कारण बताइए।

3. मद्यपान से आप क्या समझते हैं? मद्यपान के दुष्परिणामों एवं समस्याओं की विवेचना कीजिए।

4. भारत में मद्यनिषेध हेतु सुझाव दीजिए।

5. मद्यसारिक किसे कहते हैं? मद्यसारिकों का उपचार एवं नियन्त्रण हेतु सुझाव दीजिए।

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

(अ) मद्यसारिक बनने की प्रक्रिया

(ब) मद्यपान के दुष्परिणाम

(स) मद्यपान तथा वैयक्तिक विघटन

(द) मद्यपान एवं मादक द्रव्य व्यसन में अन्तर।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Mamoria, C. B., **Social Problems and Social Disorganization in India**, Allahabad : Kitab Mahal, 1960.
2. Paul Martin, "Working with Hope'' in **The Lion in India**, April 1986.
3. Nardini, Quoted by Pamela Weinberger, "A Billion Doller Binge'' in **The Lion in India**, March 1987.
4. Herbert Schafer, Quoted by Pamela Weinberger, "A Billion Doller Binge'' in **The Lion in India**, March 1987.

इकाई 12

भिक्षावृत्ति अर्थ कारण तथा प्रकार :

Beggary

इकाई की रूपरेखा

12.0 **उदेश्य**

12.1 प्रस्तावना

12.2 भिक्षावृत्ति : अर्थ तथा परिभाषा

12.3 भिखारियों की भिक्षावृत्ति के कारण

12.4 बोध प्रश्न

12.5 भिक्षावृत्ति के प्रकार

12.6 भिक्षावृत्ति की रोकथाम हेतु उपाय

12.7 सारांश

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

12.9 अभयास प्रश्नों के उत्तर

12.9 **निबंधात्मक प्रश्न**

12.10 **संदर्भ ग्रन्थ तथा सहयोगी पाठ्य सामग्री**

12.0 उद्देश्य

1. इस इकाई को पढ़ने के बाद आप भिक्षावृत्ति को समझ पाएगें

2. इसके द्वारा आप इसकी प्राचीन तथा वर्तमान स्थिति को समझ पाएगें।

3. इसे पढ़ने के बाद आप इसके कार्य तथा कारण /प्रकारों को जान पाएगें।

12.1 प्रस्तावना

यह एक ऐसी समस्या है जो हमारे देश में दिनो दिन बढ़ती ही जा रही है। वैसे तो भृक्षावृत्ति की समस्या किसी भी देश के लिए शर्मनाक समस्या है परन्तु अपने भारत देश में आम लोगो में यह बोझ ही है। पूरे भारत में आज की तारिक में लाखों की संख्या में भिखारी है जो कि लगभग हर एक प्रदेश में देखे जा सकते है। एक पंजाब ही ऐसा प्रदेश है जहॉ इन की संख्या नगण्य है सिर्फ ना के बराबर है। यह समस्या , आर्थिक आधार पर आधारित ना होके बल्कि वृहत रूप से सामाजिक बनती जा रही कई तरह के संक्रमण भी है। साधारण तौर पर इन भिखारियों मेंपाए जाते है जो कि पर्यावरणीय रूप से सुखद पहलू नहीं है। इसके कारण अन्य देशो में हमारे देश का समाज भी बुनता आया है इसकी तस्वीरों को उतार कर विदेशी सैलानी अपने देशो में हमारी एक गरीब व अस्वस्थ समाज की तस्वीर प्रस्तुत करते है। इसको तुरन्त उपचार की आवश्यकता है।

प्राचीन काल के भिखारियों से आज के भिखारी भी तस्वीर बिल्कुल भिन्न है। पहले ज्यादातर भिक्षुक धार्मिक लोग होते थे तथा पेट पालने हेतु भिक्षावृत्ति करते थे परन्तु आज भीखमंगे इस कार्य को ही व्यवसाय बनाये बैठे है और अपना कीमती वक्त घोर अनैतिक कार्यों में बिताते है जैसे आदि।हत्या ,चोरी हिंसा ,

12.2 भिक्षावृत्ति का अर्थ तथा परिभाषा-:

सन् 1951 तक भारत में 487857 भिखारी थे और इनमें 344216 पुरूष तथा 143641 महिलाएँ थी आज इनकी संख्या कहीं 10 गुनी हो चुकी है। जिस स्थान पर बहुत ज्यादा जनसंख्या रहती है वहॉ अन्य सामाजिक असंतुलन बढ़ने से लोगों में रोजगार का सही प्रकार से वितरण ना होने से अथवा उपयोगिता की कमी होने से भी एक अन्य कारणों से भिखारियों की संख्या बढ़ती जा रही है। ये वो लोग है जो गन्दी बस्तियों, सार्वजनिक स्थानों पर या विस्थापित होते है। वैसे आज के युग में ये गॉव का और शहर का दोनों ही जगह विद्यमान रहते है। जो लोग जाने अनजाने लोगो से पैसे, सामान आदि वस्तुओं की बेवजह मांग करते है वो ही भिखारी की श्रेणी में आते है । कुछ परिभाषाएँ निम्नी प्रकार से है .

;1) भीख मांगना दर –दर घूमना भिक्षा मांगना, घावों शारीरिक पीड़ाओं अथवा दोषों को बेवजह प्रदर्शन करना अथवा शिक्षा प्राप्तय करने के लिए दया उत्पन्न करने हेतु उनको झूठे बहाना बनाना सम्मिलित है।

"Begging includes wandering from door to door, soliciting alms, exhibiting or exposing sares, wounds bodily ailments or deformities, or making false pretence or them for exciting pity for securing alms."

" The Mysore prohibition of Beggary Act XXX iii if 1944"

दूसरी परिभाषा के रूप में हम कह सकते है कि -:

"एक व्यक्ति जिसके जीवन व्यापन का कोई साधन नहीं है और जो इधन उधर-घूमता रहता है या सार्वजनिक स्थानों में पाया जाता है अथवा भीख मांगने के लिए अपना

प्रदर्शन स्वीकार करता है ।" और इस परिभाषा के अनुसार किसी भी भीख मॉगने वाले में तीन बातें दिखाई देती है -:

.1 जीवन यापन हेतु प्रत्यक्ष साधन का न होना ,

.2 सार्वजनिक स्थानों पर भीख मांगना

.3 भीख मिल जाए इसके लिए अपने शरीर को क्षतिग्रस्त कर के भी दिखा कर भीख मांगना

आज की तारीख में भारत में करोड़ों की संख्या में भिखारी हैं और ज्यादातर उत्तरप्रदेश, महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल, आंध्रप्रदेश, मध्ययप्रदेश और दिल्ली में है । मुम्बई में लगभग 60, 000 कलकत्ता में 50,000 मद्रास में 30,000 दिल्ली में 50,000 अनुमानित हैं।

12.3 भिखारियों की भिक्षावृत्ति के कारण

भारत में इस समस्या के निम्न कारण प्रमुख है -:

1. आर्थिक असमर्थता -: इस समस्या के लिए जिम्मेदार आर्थिक कारण प्रमुख तौर पर है। निर्धनता तथा बेकारी ही इसे बढ़ाते है। बेकारी से कामयाबी की तरह जाने से कई लोगों ने भिक्षावृत्ति छोड़ी भी है।

2. धार्मिक परम्पराएँ -: भारत वर्ष में सैकड़ों वर्ष पहले जो भिक्षावृत्ति धर्म कर्म के कार्यों को करने वाले के लिए थी वो आज अपना विकृत रूप लेकर भिक्षावृत्ति से भीख मांगना में बदल चुकी है। कई सक्षम लोग ब बड़ी साजिशों के तहत भी यह कार्य करते है। दान पुण्य के विचारों वाले व्यक्तियों को भी भीक्षा देने की आदत होती

है अतएव भिखारी उनकी मानसिकता को समझकर मंदिरों , गुरूद्वारों , तीर्थ स्थानों पर अपनी रिहाईश बना लेते है। और जीवन यापन का जरिया बनाकर रहने लगते है।

3.**शारीरिक विकलांगता -:** भारत देश में विकलांगों को शारीरिक अक्षमता को संभालने हेतु पर्याप्तत उपाय नहीं किए जा रहे , तो यह समस्या पूरी तरह से हल नहीं हो पा रही है। इसीलिए यह भी एक बहुत बड़ा कारण बनकर उभरता जा रहा है भिक्षावृत्ति का।

4. **सामाजिक कारण:** भारत में दुनिया के अन्यी देशो के मुकाबले जाति व्यवस्था में ऊँच नीच का भाव अथवा मतभेद ज्यादा ही है। ऊँची जाति वाले नीची को हेय दृष्टि से देखते है। और यही सामाजिक समस्या में तब्दील हो जाता है। हमारे समाज में विधवाए परित्मिकता आदि स्त्रियॉ भी मजबूर होकर भिक्षावृत्ति की ओर अग्रसर हो जाती है।

5.**मानसिक कारण -:** मन:विक्षिप्तता भी प्राय: एक बहुत कारण बन जाती है। घर के सदस्य ऐसे लोगों को ज्यासदातर अपने पास रखना नहीं चाहते है , और मानसिक अस्पतालों में भर्ती करा कर अपनी जिम्मेंदारी से मुक्तअ हो जाते है तथा वो बिमार व्यएक्ति वहां से बच निकल कर कहीं भी आवारा बन कर भ्रमणकारी हो जाता है तथा भीख मांगना शुरू कर देता है। खाने पीने की दुकानों आदि से चोरी भी करना शुरू कर देता है। यह एक बहुत ही संजीदा समस्या का कारण है जिसके लिए हम तथा संपूर्ण समाज ही दोषी है।

6. विपत्तियों से जूझता व्यक्ति -: प्राकृतिक आपदाओं से जूझते व्यक्ति जिसमें बाढ़, भूकम्प , आकाल, संक्रमण , भयंकर बिमारियों का फैलना जैसे कालावार, फ्लू आदि इन सभी परिस्थितियों में आदमी मजबूरन असहाय बनकर भिक्षावृत्ति की ओर

बढ़/अग्रसर हो जाता है। अनाथ बच्चे भी यह कार्य करने लगते है। मुख्य कमाने वाले का घर में न होना भी इसका एक कारण बन जाता है।

12.4 बोध प्रश्न -:

.1 भिक्षावृत्ति की क्या परिभाषा है ?

.2भिक्षावृत्ति के कारणों को बताइए ?

12.5 भिक्षावृत्ति के प्रकार -:

इन सभी वर्गो की निम्न रूप से विस्तार से जानेंगे -:

(1 धार्मिक -: इस वर्ग में साधु, बैरागी, संन्यासी, जोगी आदि आते है

(2 जाति तथा जनजाति पर आधारित -: यह एक तरह से पेशेवार लोग होते है जो कि किसी भी समुदाय या धर्म से ताल्लुक नहीं रखते है फिर भी खुद को फकीर कहलवाना पंसद करते है तथा गली मुहल्लों में समूहो में घूम दृ घूम कर या बजाकर जीवकोत्पासर्जन करते है।।

(3 झूठे-: नकली भिक्षु/ कहीं किसी भी धार्मिक अथवा समूहो से कोई स्वीकार नहीं होता का झूठी बाते कर लोगों को ठगने वाले भिखारी यही होते हैगरस्थऔर स्पां ,

(4 शारीरिक रूप से सामान्य भिखारी -: दिन के समय भीख मांगना और रात के समय चोरी ध्डाका डालना ही इन लोगों का काम है। कहीं.कहीं तो बद्तमीजी पर

भी उतर आते है, छीनाझपटी भी करके जंजीर खींचना आदि इनका उद्देश्यक होता है और इसके बाद नशाखोरी तथा शराबी के रूप में जाने जाते है

(5 अपंग -: किसी न किसी शारीरिक दुर्बलता अथवा अक्षमता का अपनी ढ़ाल बनाकर ये लोग भीख मांगने का कार्य करते है।

(6 रोगग्रस्त व्यक्ति -: किसी भी रोग से जूझते हुए लोग जो बिल्कुल ही हताश हो चुकते है वो इसी श्रेणी में आते हैऔर वो कोढ़ तथा तयेदिक जैसी बिमारियों से , लड़ने वाले या कहें कि हारे हुए लोग होते हैं।

(7 मानसिक रूप से बिमार लोग -: कई बार घरवालो की नजर बचाकर भी मानसिक रूप से कमजोर अथवा बिमार लोग भी इस तरह के काम करते है , जिन्हें सड़कों पर लोग खमंगा कह कर पुकारते है। कई लोगो का कोई पता नहीं होता कि वो कौन हैं क्यूकि वे घर छोड़ चुके या निकाले जा चुके होते है।

(8 बाल भिक्षु -: चुराए गए बच्चो से ज्यारदातर ऐसे ही कार्य कराया जाता है। यह एक गैंग/नेटवर्क होता है जो कि बच्चों को चुराकर पंगु बनाकर यह कार्य करवाया जाता है और अपना व्यवसाय बढ़ाता है। कई माँ बाप भी सड़कों के किनारे बैठकर बच्चों से भी मंगवाते है।

(9 अपना व्यवसाय बनाए बैठै लोग -: किसी भी जरूरतमंदों को अपना नौकर बनाकर रख लेना और फिर उससे भिख मंगवाना ही इनका पेशा है। कोई भी अनाथ बच्चा या शारीरिक तौर पर अक्षक को इसके लिए इस्तेमाल किया जाता है।

(10 पूर्ण रूपेण व्यवसायिक तौर पर कार्य करने वाले भिखारी -: इस वर्ग में आने वाले सभी दिन भर भीख मांग कर रात के समय छोटी मोटी नौकरी कर लेते है और अपना जीवन यापन करते है।

12.6 भिक्षावृत्ति की रोकथाम हेतु उपाय

इस समस्या से निपटने हेतु बहुत सूक्ष्मगता से सूझ.बूझ कार्यक्रमों को बनाने तथा सुनियोजित तरीके से प्रतिपादित करने की आवश्यकता है। फिर भी अनेक उपाय निम्न्लिखित हो सकते है।

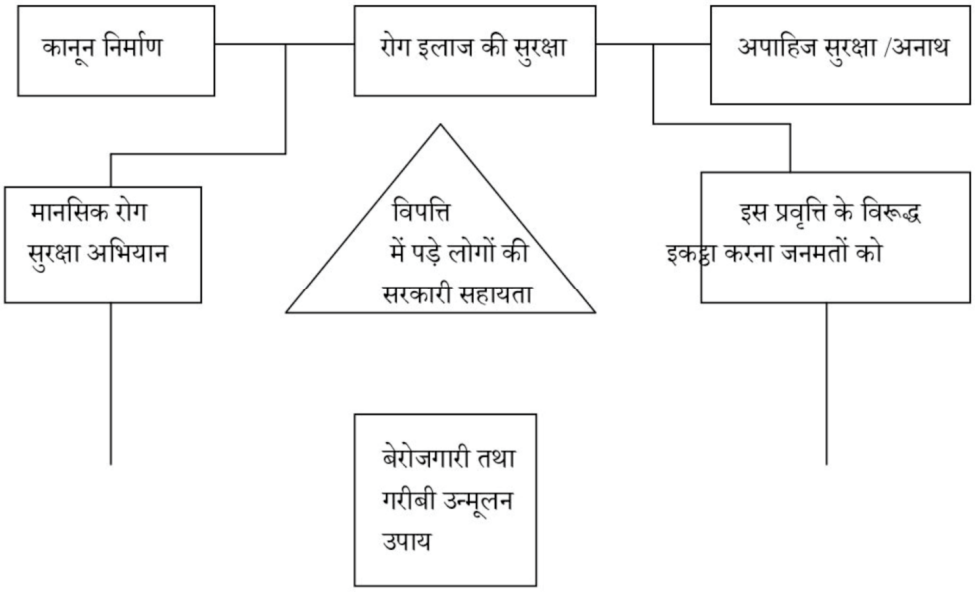

विस्तार से इन उपायो को निम्नलिखित तरीके से जाना जा सकता है -:

(1) **कानून निर्माण :-** हरेक राज्य इसके लिए जिम्मेरदार है अतएवं हरेक सरकार को अपने अधिकारों से तहत कुछ ऐसे कड़े नियम कानून को बनाना होगा जिससे यह भयंकर छूआछूत की भी बिमारी जैसे फैलता हुआ रोग

काबू में आ जाए तथा अवैधता का प्रमाणपत्र दिया जा सके तथा राज्य की हालत को खस्ता ना दिखना पड़े और तरक्की के नए आयाम खुल सकें।

(2) **रोगों के इलाज तथा रोकथाम की व्यवस्था :-** इस दिशा में सरकारों को कुछ कठोर कदम उठाने पड़ेगें जैसे, कोढ़, तपेदिक (T.B) आदि संक्रमण के रूप में फैलने वाले रोगो का इलाज सस्ता/ मुफ्त मुहैया कराने की कोशिश तथा उपाय करना इन रोगो से निजात पाना हरेक नागरिक का प्रथम अधिकार है और साथ ही राज्य/ देश की छवी सुधारने हेतु बड़ा कदम है।

(3) **अनाथ/अपाहिजों की सुरक्षा :-** सभी सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाएं जो कि इस दिशा में कार्यरत है, उन्हें इस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है। अनाथालयों तथा विस्थापितों के शरणालयों की संख्या में इजाफा घर अनाथी तथा मजबूर स्त्री/पुरूष, बच्चों को यथायोग्य सुविधा मुहैया कराना ही उचित होता इसके साथ ही यदि संमक हो तो किसी और संस्था की सहायता लेकर मुहेजा (उचित) व्यवसायिक शिक्षण /प्रशिक्षण का भी पुख्ता इंतजाम किया जाना चाहिए।

(4) **मानसिक रोग सुरक्षा :-** हरेक राज्य तथा व्यापक स्तर पर देश में हरेक स्थान/शहर/कस्बा गॉव पर मा मानसिक रोग को रोगियो की उपचार व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि दूरी की वजह से ना रूझते हुए समय रहते ही इलाज संभव हो सकें। इस क्षेत्र में शोध की भी आवश्यकता है।

(5) **विपत्ति में पड़े लोगो की सहायता :-** आपदा प्रबंधन के साथ ही ऐसे समय-समय पर आने वाली कठिनाईयों से ना जूझ पा रहे लोगो की जॉचपड़ताल के उपश्चात इनके पुर्नवसन/पुर्नरिर्माण की पुरूजोर कोशिश करनी चाहिए। (Restoration / Reevaluation)

(6) **इस तरह की मानसिक/प्रवृत्ति को जनमत द्वारा दूर करना :-** हमारे देश में इस तरह के अभियानों की सख्त आवश्यकता है जिससे बंद ऑख कर बैठने वालो के दिमाग भी खुले और देश में कामचोरी भी बढ़ती प्रवृत्ति को रोका जा सके ताकि देश की प्रवृत्ति की रफ्तार बढ़ सके। आराम से बैठे हुए खाना/रहना/सोना/पहनना सिर्फ व सिर्फ जरूरतमंदों को ही मुहैया कराया जाय और वो भी सिर्फ ऐ सीमित समयसीमा/अर्थात एक ताकि राते जीवन जीने का ठ्थ्य ना बनकर लोग सक्षम होते ही खुद का काम/मेहनत कर कमाने लायक बन सके तथा देश की तरक्की में अपना यथायोग्य योगदान दे सकें।

(7) **बेरोजगारी तथा गरीबी के उन्मूलन का प्रयास :-** सबसे अन्त में यह बहुत जरूरी है कि इस दिशा में कुछ कारगर कदम उठाए जाए जिससे देश की अर्थव्यवस्था को भी मजबूत करते हुए इस भिक्षावृत्ति की समस्या से भी निजात पायी जा सके । जीवन यापन में उपायो को आगे लाना होगा, उपयुक्त योग्यता (व्यक्ति की) के आधार पर नौकरी / व्यवसाय की व्सवस्था तथा उपयुक्त अवसर प्रदान करने होंगे तभी कुछ दिशाएँ बदलेगी तथा देश का विकास भी और एक और एक कदम बढ़ेगा।

12.7 सारांश :-

इस खण्ड को पढ़ कर आप भिक्षावृत्ति की समस्या के जूझते हमारे देश की स्थिति समझ पाए होगे साथ ही इसके कारण तथा निवारण के उपायों की करीब से जान पाए होंगे। इसी अध्याय में आपको भिक्षावृत्ति मे लिपत भिक्षुओं के वर्गों का ज्ञान हुआ

होगा। किस तरह से हमारे देश में इस समस्या की बेले फैलती जा रही है जो कि , दे रही को जन्मवस्थाहिंसा आदि जैसे अपराध तथा अव्य ,चोरी ,बेरोजगारीहै। हमारे देश में इसका प्राचीन स्वरूप बना था ? और अब उसे किस प्रकार से सुनाया जा रहा ? ये सभी आवश्यक पहलूओ पर आपका ध्यान केन्द्रित ही करना इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य था जो कि फलीफूत हुआ होगा।

12.8 पारिभाषिक शब्दावली

भिक्षावृत्ति	-	भिख मांगना
जिविकोपार्जन	-	जीवन यापन हेतु धन कमाना
सार्वजनिक संस्थान	-	आम जगह जहॉ हरेक व्यक्ति आ जा सकता है -
संपगु	-	शारीरिक रूप से पूर्ण सक्षम व्यक्ति
पुर्नवास	-	फिर से जीवन यापन लयक बनाना

12.9 अभ्यासार्थ प्रश्नो के उत्तर -:

-: परिभाषा (1)

1 एक व्यंक्ति जिसके जीवन.यापन का कोई साधन नहीं है और जो इधर.उधर घूमता रहता है या सार्वजनिक स्थानों पर पाया जाता है अथवा भीख मॉगने के लिए अपना प्रदर्शन स्वीकार करता है।

2 भीख मांगने में दर.दर घूमनाए भिक्षा मांगनाए घावोंए शारीरिक पीड़ाओं तथा दोषों का प्रदर्शन करना अथवा भिक्षा प्राप्तो करने के लिए दया उत्पनन्नल करने हेतु उनके झूठे बहाने बनाना सम्मिलित है। (2)

भिक्षावृत्ति के कारण रू.

1 आर्थिक 2 धार्मिक 3 शारीरिक 4 सामाजिक कारण

असमर्थता परम्पेराएँ विकलांगता

5 मानसिक कारण 6 विपत्तियों से घिरा हुआ व्यरक्ति अथवा जूझता व्यक्ति

12.10 निबन्धनात्म्क प्रश्न -:

भिक्षावृत्ति भारत में एक सामाजिक तथा आर्थिक समस्या है। कथन की पुष्टि करों।

12.11 संदर्भ ग्रन्थ तथा सहयोगी पाठ्य सामाग्री

(1Ahuja, Ram, female offenders in India. "Meenakshi Prakashan Meerut.

2) Becker, Howards, Social problems: A Modern Approach, John Wileys sons, N. Y. 1966

3) Elliott, Mabel A. and Merrily, Francis E. Social Disorganization, Harper and Brothers. N.Y. 1950

4) Horton, pant B. and leslie, Gerald R. 'Sociology and social problems, (4th Ed.), appleton century crosts, N.Y. 1970

5) Rose, Arnold, " theory for the study of social problems." social problems, 1957.

इकाई – 13

वेश्यावृत्ति

Prostitution

13.0 इकाई का उद्देश्य

13.1 परिचय

13.1.1 वेश्यावृत्ति की अवधारणा

13.1.2 वेश्याओं के प्रकार

13.1.3 वेश्यावृत्तियों के कारण

13.2 सार संक्षेप

13.3 पारिभाषिक शब्दाबली

अभ्यास प्रश्न – लघु विस्तृत

13.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.0 इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में वैश्यावृत्ति का अर्थ व परिभाषा को विस्तृत तरीके से समझाया गया है इसमें बताया गया है कि वैश्यावृत्ति किसी स्त्री द्वारा अपनाये जाने वाले ऐसे व्यवसाय को कहते हैं, जिसमें वह कई पुरूषों के साथ बिना किसी भेदभाव के केवल रूपये, पैसे या धन के लिये यौन सम्बन्ध स्थापित करती है। इसी इकाई में वैश्यावृत्ति के मुख्य तत्व जैसे भुगतान, स्वच्छन्द संभोग और संवेगात्मक उदासीनता पर भी प्रकाश डाला गया है। वैश्याओं के प्रकार जैसे प्रत्यक्ष वैश्यायें, वन्शानुगत वैश्यायें, प्रथागत वैश्यायें

और गुप्त वैश्याओं के बारे में बेहद ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत इकाई में वैश्यावृत्ति के कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है।

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप अग्रलिखित को जान सकेगें।

1. वेश्यावृत्ति की अर्थ व परिभाषा के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेगें।
2. वेश्यावृत्ति के तत्वों की विवेचना कर सकेगें।
3. वेश्यावृत्ति के प्रकारों पर अपना विचार प्रस्तुत कर सकेगें।
4. वेश्यावृत्ति के कारणों को जान सकेगें तथा लिख सकेगें।

13.1 परिचय

वैश्यावृत्ति को विश्व का सबसे पुराना व्यवसाय समझा जाता है। मानव–सभ्यता के प्रारंभिक काल से ही, यह लगभग हर समाज में किसी–न–किसी रूप में विद्यमान रही है। कई विद्वानों के मत में जब से विवाह और परिवार की संस्थाएँ समाज में स्थापित हुई, तभी से वेश्यावृत्ति एक व्यवसाय के रूप में उभरती गई। वेश्यावृत्ति को सदा ही हेय दृष्टि से देखा गया है। यद्यपि वेश्याओं का समाज में निदनीय स्थान रहा है, तथापि उनके पास जाने वाले पुरूषों को अधिक सामाजिक तिरस्कार का सामना नहीं करना पड़ा है। वेश्यावृत्ति के कई रूप होते हैं तथा वेश्याएँ कई प्रकार की होती है। वेश्यावृत्ति अपनाएं जाने के पीछे कई कारण होते हैं तथा इसके दुष्प्रभावों की भी कोई सीमा नहीं। आधुनिक युग में व्यापारिक वेश्यावृत्ति के व्यापक दुष्परिणामों और महिलाओं की प्रतिष्ठा और अधिकार के प्रति अंतराष्ट्रीय जागरूकता को ध्यान में रखते हुए विश्व के अनेक देशों में इसके उन्मूलन या नियमन के लिए कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए है।

13.1.1 वेश्यावृत्ति की अवधारणा

वेश्यावृत्ति की कई परिभाषाएं दी गई है, जिनमें कुछ निम्नलिखित है –

1. मे जियोफ्रे के शब्दों में – ''वेश्यावृति अभ्यासगत या सविराम कम या अधिक मात्रा में बिना किसी भेदभाव के यौन सम्बन्ध का व्यवसाय है, जो धन के लोभ में किया जाता है।''

2. अनैतिक व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 में वेश्यावृत्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है, ''वैश्यावृत्ति किसी स्त्री द्वारा अपने शरीर को नकद या प्रकार में भाड़े पर स्वच्छेद यौन समागम के लिए अर्पित करने की क्रिया है।''

3. इलियट और मेरिल के अनुसार – वैश्यावृत्ति स्वच्छंद–संभोगी तथा धनलोलुप आधार पर होने वाला अनुचित यौन–सम्बंध है, जिसमें संवेगात्मक उदासीनता निहित रहती है।''

4. हैवलॉक एलिस के मत में – ''वेश्या वह स्त्री है, जो बिना किसी पसंद के पैसों के लिए अपने शरीर को निःसंकोच कई पुरूषों को समर्पित करती है।''

सरल शब्दों में, वेश्यावृत्ति किसी स्त्री द्वारा अपनाए जाने वाले ऐसे व्यवसाय को कहते हैं, जिसमें वह कई पुरूषों के साथ बिना किसी भेदभाव या संवेगात्मक लगाव के केवल रूपये–पैसे या धन के लिए यौन–संबंध स्थापित करती है।

वेश्यावृत्ति में निम्नलिखित मुख्य तत्व विद्यमान रहते हैं –

1. भुगतान – वेश्यावृत्ति में यौन–सम्बन्ध के लिए रूपये पैसे देने पड़ते है। इसी भुगतान या आर्थिक लाभ के तत्व के कारण वेश्यावृत्ति को व्यवसाय माना जाता है।

2. स्वैरिता या स्वच्छंद संभोग – वेश्यावृत्ति में स्त्री कई पुरूषों के साथ बिना किसी भेदभाव के केवल आर्थिक लाभ के लिए यौन–सम्बन्ध स्थापित करती है। वह ऐसे किसी भी पुरूष के साथ यौन–सम्बन्ध स्थापित करती है, जो उसे पैसे देता है।

3. संवेगात्मक उदासीनता – वेश्यावृत्ति में यौन–सम्बन्ध के पीछे भावात्मक संवेदन नहीं होता। वेश्यावृत्ति में प्रेमभाव नहीं होता। वेश्या केवल पैसे के लिए शरीर बेचती है और पुरूष उसके पास केवल काम–पिपास बुझाने के लिए जाते हैं। दो प्रेमियों के अनुचित यौन–सम्बन्ध वेश्यावृत्ति के अंतर्गत नहीं आते, क्योंकि उसमें व्यवसाय के तत्व की जगह पारस्परिक प्रेम–भावना होती है।

13.1.2 वेश्याओं के प्रकार

वेश्याएं कई प्रकार की होती है। उनके व्यवसाय चलाने के ढंग भी अलग–अलग होते हैं। इतिहास की सभी अवस्थाओं में कई प्रकार की वेश्याओं के उल्लेख मिलते हैं। साधारणतः वेश्याओं को दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है – (1) प्रत्यक्ष वेश्याएँ अपना व्यवसाय बिना किसी संकोच के प्रत्यक्ष रूप से चलाती है। दूसरी ओर, गुप्त वेश्याएँ अपना व्यवसाय चोरी छुपे गुप्त रूप से चलाती है। प्रायः सभी वेश्याएँ इन्हीं दो मुख्य श्रेणियों में सम्मिलित की जा सकती है, लेकिन भिन्न–भिन्न आधारों का सहारा लेकर उनके अन्ध प्रकारों का भी उल्लेख किया जाता है। आधुनिक समाज के विशेष सन्दर्भ में वेश्याओं को निम्नलिखित श्रेणियों में रखा जा सकता है –

1. प्रत्यक्ष वेश्याएँ – इस श्रेणी की वेश्याएँ अपना व्यवसाय बिना किसी संकोच के खुलेआम चलाती है। वे अधिकांशतः अपना व्यवसाय बदनाम मुहल्लों में वेश्यालयों में या कोठे पर चलाती है। उनके वेश्यालय साधारणतः शहरों के विशेष क्षेत्रों में रहते हैं, जिन्हें 'लाल रोशनी क्षेत्र' कहा जाता है।

2. वंशानुगत वेश्याएँ – कई देशों में कुछ श्रेणियों की वेश्याएँ अपना व्यवसाय वंशानुगत चलाती आई है। वेश्यावृत्ति माँ से पुत्री को हस्तांतरित होती रहती है, और यह सिलसिला पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलता रहता है। भारत में 'तवायफ' इसी श्रेणी की वेश्याओं में सम्मिलित है। साधारणतः,

तवायफों की आय का मुख्य स्रोत नाच–गान था, लेकिन वे यौन–संबंधों के जरिए भी काफी धन अर्जित कर लेती थी।

3. प्रथागत वेश्याएँ – विश्व के विभिन्न देशों में कुछ विशेष जनसमूहों में वेश्यावृत्ति प्रथागत चलती आई है। इन जनसमूहों में यौन–सम्बन्धों में काफी छूट रहती है। इनमें वेश्यावृत्ति को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता। उत्तर प्रदेश, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, आंध्र प्रदेश और पश्चिम बंगाल में कई जनसमूहों की स्त्रियाँ परम्परागत प्रथाओं के कारण वेश्यावृत्ति अपनाती आ रही है। इनमें 'रीत', 'कुलीना' और 'परवरदाह' प्रथाओं का उल्लेख किया जा सकता है। कतिपय भारतीय जनजातियों में भी वेश्यावृत्ति प्रथागत रूप से चलती आ रही है।

4. गुप्त वेश्याएँ – इस श्रेणी की वेश्याएँ अपना व्यवसाय चोरी छिपे गुप्त रूप से चलाती है। गुप्त रूप से व्यवसाय चलाने वाली वेश्याएँ भी कई प्रकार की होती है। इनमें कई छोटी–छोटी नौकरियाँ करती है और अनुचित यौन–सम्बन्ध के जरिए अतिरिक्त धन कमाती है। इनमें कई अपने परिवारों के साथ रहती है और धन के लोभ में पर–पुरूषों के साथ यौन–संबंध स्थापित करती है।

1. कॉल गर्ल्स – इस श्रेणी की वेश्याओं को होटलों, क्लबों, शराबघरों, मनोरंजन–गृहों, अतिथिशालाओं आदि से संपर्क रहता है। ग्राहकों के अनुरोध पर उन्हें बुला लिया जाता है। इनमें कई स्टेनोग्राफर, टाइपिस्ट, टेलीफोन ऑपरेटर, कम्प्यूटर प्रोग्रामर आदि के रूप में काम करती है तथा कई कॉलेजों की छात्राएँ और अस्पतालों की नर्से भी होती है।

2. छदवेशी वेश्याएँ – इस श्रेणी की वेश्याएँ दूसरे लुभानेवाले व्यवसायों में नियोजित तो रहती है, लेकिन उनमें कई वेश्यावृत्ति के जरिए भी बहुत कुछ अर्जित कर लेती है। विगत वर्षों में देश के कई नगरों में लड़कियाँ बार–हाउसेज में परिचारिका तथा नाचने–गाने के लिए पारिश्रमिक पर काम तो करती है, लेकिन उनमें कई वेश्यावृत्ति से भी धन अर्जित करती

है। इसी तरह, ब्यूटी–पार्लरों तथा मसाज–हाउसेज में काम करने वाली बड़ी संख्या में स्त्रियाँ तथा लड़कियाँ अपने सामान्य नियोजन की आय के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति से भी पूरक आमदनी प्राप्त करती है। इस श्रेणी की वेश्याओं की संख्या दिनोदिन बढ़ती गई है।

3. रखैल – कई धनी सम्पन्न व्यक्ति अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए रखैल भी रख लेते है। वे रखैल को जीवन निर्वाह के लिए रुपये–पैसे, धन–दौलत देते रहते हैं। रखैलों का बहुतों के साथ यौन–सम्बन्ध नहीं होता। उनका संबंध साधारणतः उनके परवरिश करने वालों से होता है, लेकिन चोरी–छिपे वे धन के लोभ में अन्य लोगों के साथ भी यौन–सम्बन्ध स्थापित करती रहती है।

4. धर्मर्पित वेश्याएँ – कई युवतियों को धर्म की आड़ में वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य किया जाता है। भारत में देवदासियाँ इसी प्रकार की वेश्याओं के उदाहरण है। उनका मुख्य काम अपने नृत्य और गान से मंदिरों की शोभा बढ़ाना था, लेकिन पुजारी उन्हें यौन–संबंध के लिए भी बाध्य करते रहे है। केरल, कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, तथा आंध्र प्रदेश में देवदासी–प्रथा सदियों से चली आ रही है। कई यूरोपीय देशों में गिरजाघर भी व्यभिचार के केन्द्र रहे है।

5. शोशण के शिकार – कई युवतियाँ बलात्कार, अपहरण, अनैतिक व्यापार तथा अन्य आपराधिक कृत्यों के शिकार हो जाती है। वे स्वेच्छा से या रुपये–पैसों के लिए पर–पुरूष से समागम नहीं करती, बल्कि उन्हें अवैध यौन–संबंधों के लिए जोर–जबरदस्ती से बाध्य किया जाता है। इनमें कुछ को तो प्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय चलाने के लिए कोठों पर जाना पड़ता है, तथा कई को अपने घर–मुहल्ले में ही यौन–अत्याचार सहने पड़ते हैं।

6. निर्धनता के शिकार – निर्धनता से ग्रस्त कई परिवारों की लड़कियों और स्त्रियों को केवल अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के

लिए सतीत्व बेचना पड़ता है। बाढ़, सूखा, अकाल तथा सर्वनाश की अन्य स्थितियों में उनकी विवशता और बढ़ जाती है। इन स्थितियों में उन्हें केवल जीवन की रक्षा तथा परिवार के भरण–पोषण के लिए पतन की ओर अग्रसर होना पड़ता है। अगर उनकी आर्थिक स्थिति ठीक रहती, तो संभवतः वे अनैतिकता से दूर रहती। इनमें कई तो चोरी–छिपे आवश्यकतानुसार यौन संबंध करती है, तथा कई को अंततः वेश्यावृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय के रूप में अपनाना पड़ता है।

7. वासनापीड़ित वेश्याएँ – कई युवतियों में कामवासना बड़ी प्रबल होती है। वे अनैतिकता का सहारा लेकर अपनी कामवासना की तृप्ति के लिए स्वयं पर–पुरूषों को आमंत्रित करती है। वे अपनी प्यास बुझाने के लिए पुरूषों पर खर्च करने के लिए भी तैयार रहती है। ऐसी अधिकांश वेश्याएँ पारिवारिक जीवनयापन करती है।

8. विलासप्रिय वेश्याएँ – कई स्त्रियाँ विलासलोलुप होती है। वे उचित अनुचित के विचार के बिना हर तरह से भौतिक सुख–साधनों से संपन्न जीवन व्यतीत करना चाहती है।

यहाँ यह दुहराना आवश्यक प्रतीत होता है कि वेश्याओं के उपर्युक्त वर्गीकरण में परस्पर–व्यापन भी है। कई वेश्याएँ एक से अधिक श्रेणियों में सम्मिलित की जा सकती है। वेश्याओं के प्रकार बताते समय वेश्यावृत्ति के उद्देश्यों, व्यवसाय के स्वरूप, उसके कारणों तथा संरक्षकों या ग्राहकों की प्रकृति को ध्यान में रखा गया है, जिससे वेश्यावृत्ति के नियंत्रण और वेश्याओं के पुनर्वासन को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जा सके।

2.1.3 वेश्यावृत्तियों के कारण

वेश्यावृत्ति के कारकों को दो मुख्य श्रेणियों में रखा जा सकता है– (क) वैयक्तिक या आंतरिक कारक तथा (ख) अवैयक्तिक या बाह्म कारक। इन दोनों मुख्य श्रेणियों में प्रत्येक के अंतर्गत कई विशिष्ट कारक होते हैं।

साधारणतः, इन सभी कारको को वेश्याओं की माँग और आपूर्ति दोनों से प्रत्यक्ष या परोक्ष संबंध होता है। इन कारको की विवेचना करने के पहले यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि ये एक–दूसरे से संबद्ध और एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं और उनका प्रभाव सम्मिलित रूप से पड़ता रहता है। वेश्यावृत्ति के संबंध में, फ्लेक्सनर के इस कथन में सत्य की मात्रा अधिक है– ''कोई भी एक परिस्थिति अकेले घातक नहीं होती। प्रभावों और संबंधों के जटिल लच्छे को पूरी तरह सुलझाया नहीं जा सकता।

1. **वेश्यावृत्ति के व्यक्तिगत या आंतरिक कारक** – वेश्यावृत्ति के व्यक्तिगत या आंतरिक कारकों में निम्नलिखित मुख्य है –

- **यौन अनुभव की इच्छा तथा असामान्य कामुकता** – यौन अनुभव की इच्छा तथा असामान्य कामुकता वेश्यावृत्ति की माँग और पूर्ति दोनों पक्षों को प्रभावित करती है। कई स्त्रियों मं यौन–अनुभव की तीव्र इच्छा होती है। समय पर विवाह नहीं होने, पति से दूर रहने, विधवा से जाने, तलाक कर दिए जाने तथा कई अन्य कारणों से उनकी यह इच्छा समाज द्वारा स्वीकृत तरीकें से पूरी नहीं हो पाती। अतः वे यौन–तृप्ति के लिए अनैतिकता का सहारा लेती है और उनमें कई वेश्यावृत्ति अपना लेती है।
- **मानसिक दुर्बलता एवं अज्ञानता** – कई लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपनी मानसिक दुर्बलता और अज्ञानता के कारण अच्छे–बुरे, उचित–अनुचित, पाप–पुण्य आदि के बीच अंतर को पहचानने में असमर्थ होती है। वे सहजता से असामाजिक तत्वों, जैस– गुंडों, बदमाशों, दलालों आदि के चंगुल में फँस जाती है। ये असामाजिक तत्व उनका तरह–तरह से शोषण करते हैं और कई को वेश्यालयों में पहुँचाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं।
- **विलासप्रियता** – कई लड़कियों और स्त्रियों में विलासिता से पूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रबल इच्छा होती है। वे नए फैशन, अच्छे

मकान, कार, कम्प्यूटर, इलेक्ट्रानिक सामान आदि आधुनिक सुख–साधनों की ओर भागती रहती है। इन सुख–साधनों के निरंतर विस्तार से इनके प्रति प्रलोभन के अवसर भी बढ़े है। कम आमदनीवाले परिवारों में उनके विलासपूर्ण जीवन की इच्छा पूरी नहीं हो पाती। विलासिता और आराम के जीवन व्यतीत करने के लोभ में कई लड़कियाँ और स्त्रियाँ अनुचित और अवैध यौन संबंधों के माध्यम से धन कमाने लगती है।

- **आलस्य एवं उपाय–कुशलता का अभाव** – आलस्य और उपाय–कुशलता का अभाव वेश्यावृत्ति में माँग और पूर्ति दोनों पक्षों को प्रभावित करते हैं। आलस्य के कारण कई पुरूषों और स्त्रियों का शारीरिक और मानसिक विकास समुचित रूप से नहीं हो पाता। ऐसे व्यक्तियों के लिए उपयोगी जीवन व्यतीत करना तथा आत्मनिर्भर होना बहुत कठिन होता है। अनेक आलसी पुरूष अपने मंद जीवन से राहत पाने के लिए वेश्याओं के पास जाते रहते हैं। दूसरी ओर, कई लड़कियाँ और स्त्रियाँ अपने आलस्य एवं नीरसता से पूर्ण जीवन में आनंद के लिए अनुचित यौन–संबंधों का सहारा लेती है और धीरे–धीरे पतन की ओर अग्रसर हो जाती है।

2. **वेश्यावृत्ति के अवैयक्तिक या बाह्य कारक** – वेश्यावृत्ति में अवैयक्तिक या बाह्य कारक अत्यंत ही महत्वपूर्ण होते है। वास्तव में, व्यक्तियों के आचरण पर इन कारकों का गहरा प्रभाव पड़ता रहता है। व्यापारिक वेश्यावृत्ति में तो ये कारक और भी शक्तिशाली होते हैं। इन बाह्य कारकों को भी वेश्यावृत्ति की माँग और पूर्ति दोनों पक्षों पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि वेश्यावृत्ति के नियंत्रण के लिए पर्यावरण में सुधार को भी अति आवश्यक बताया जाता है। वेश्यावृत्ति के कुछ महत्वपूर्ण अवैयक्तिक या बाह्य कारक निम्नलिखित है –

- **निर्धनता एवं आर्थिक परनिर्भरता** – कई अध्ययनों और सर्वेक्षणों दिखाया गया है िकवेश्यालयों में रहने वाले अधिकांश वेश्याएं निर्धन परिवारों से आई है।

  लौड्रेस – 'भूख' को वेश्यावृत्ति की आधारशिला मानते हैं। वेश्यावृत्ति का इतिहास बताता है कि अभावों ग्रस्त अनेक लड़कियों और स्त्रियों को केवल अपने और अपने बाल–बच्चों के पेट भरने के लिए ही अनैतिक पतन और अग्रसर होना पड़ा है। अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पिता द्वारा पुत्री को, पति द्वारा पत्नी तथा संबंधियों द्वारा संबंधी लड़कियों को वेश्यावृत्ति से धन कमाने के लिए बाध्य किए जाने के अनेक उदाहरण लेते है।

- **आर्थिक असमानता** – जहाँ आर्थिक विषमताएँ व्यापक से फैली होती है, वहाँ वेश्यावृत्ति की संभावना भी अधिक होती है। साधारणतः, ऐसा देखा जाता है कि जिन जनसमूहों या जनसंख्या के बड़े में निर्धनता व्याप्त रहती है, उनमें अपने ही सदस्यों के संरक्षण में वेश्यावृत्ति की समस्या नही ंके बराबर होती है। संपन्न व्यक्ति ही इन निर्धन लड़कियों और स्त्रियों की आर्थिक दयनीयता का लाभ उठाकर उन्हें वेश्यावृत्ति की ओर जाते हैं।

- **यौन–संबंधों के कठोर एवं दोहरे मानक** – प्रायः देखा जाता है कि जिन समाजों में यौन–सम्बन्धी मानक अधिक कठोर होते हैं, उनमें यौन–सम्बन्धों के नियमों के उल्लंघन करने वालों के साथ सख्ती का बरताव किया जाता है। साधारणतः, ऐसे नियम लड़कियों और स्त्रियों के लिए अधिक कठोर होते हैं। उनके उल्लंघन के लिए लड़कियों को घर से निकाल देने, शारीरिक ताड़नाएँ देने, बहिष्कृत करने आदि के अनेक उदाहरण मिलते हैं। समाज ऐसी लड़कियों और स्त्रियों को स्वीकार नहीं करता। उनके साथ विवाह और सामाजिक समायोजन की समस्या सदा बनी रहती है। इनमें कई लड़कियाँ असामाजिक तत्वों के

चंगुल में फँस जाती है जो उनका तरह–तरह से शोषण करने लगते हैं। अगर ऐसी लड़कियों की भूल पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता, तो इसमें कई वेश्यावृत्ति से बच जाती।

- **पारिवारिक दशाएँ** – परंपरा से ही यौन–संबंधी आचरण को विनियोजित एवं नियंत्रित करने में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। परिवार यह कार्य समुचित ढंग से तभी कर सकता है, ज बवह सुव्यवस्थित, समेकित और विघटनरहित हो। लेकिन, कई आर्थिक, सामाजिक, औद्योगिक तथा अन्य कारणों से अनेक परिवारों में विघटन के तत्व आ जाते हैं, ऐसे टूटे हुए परिवारों में तलाक, कलह, तनावपूर्ण संबंध, स्वेच्छाचारिता, नशीले पदार्थों का सेवन आदि आम बाते हो जाती है। अभिभावकों की सुरक्षा के अभाव में कई लड़कियाँ चरित्रहीन हो जाती है। अगर माँ वेश्या होती है, तो पुत्री भी वेश्यावृत्ति अपनाती है। माता–पिता और अभिभावकों की दुश्चरित्रता और ढिलाई के कारण भी लड़के और लड़कियां निरंकुश होकर अनैतिक यौन–संबंध स्थापित करने लगते हैं। तलाक और सौतेले माता–पिता के दुर्व्यवहार के कारण भी अनेक कन्याएं वेश्यावृत्ति की ओर अग्रसर हुई है।
- **अनैतिक पर्यावरण** – वेश्यावृत्ति और अनैतिक पर्यावरण में गहरा संबंध होता है। कई स्थानीय समुदायों, मुहल्लों, काम के स्थानों, अड़ोस–पड़ोस आदि में अनैतिक वातावरण छाया रहता है। इनमें गुड़े, बदमाश और अन्य असामाजिक तत्व अपने–अपने अवैध धंधों में लगे रहते हैं। कुछ स्थान शराब और अन्य नशीली वस्तुओं के व्यापक सेवन, तस्करी, सस्ते मनोरंजन आदि के लिए बदनाम रहते हैं। ऐसे वातावरण में लड़कियों को अपनी नैतिकता बनाए रखना कठिन होता है। अनैतिक वातावरण के प्रभाव में कई पुरूष भी आसानी से दुराचरण में लग जाते हैं। टी0वी0, सिनेमा या सी0डी0 द्वारा अश्लील प्रदर्शनों तथा संपर्क माध्यमों में आए क्रांतिकारी परिवर्तनों के चलते यौन–उत्तेजना,

यौन–अपराध, अनैतिक यौन–संबंध तथा वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता गया है।

- **प्रथाएँ एवं परंपराएँ** – कुछ धार्मिक और सामाजिक प्रथाओं एवं पंरपराओं से भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता रहा है। जैसा कि इस अध्याय में पहले कहा जा चुका है, दक्षिण भारत के मंदिरों में नृत्य और गान में कुशल लड़कियों को देवदासियों के रूप में धर्म को समर्पित किए जाने की प्रथा सदियों से चलती आ रही है। कई हिन्दू–धर्मग्रंथों में इसे एक धार्मिक कृत्य समझा गया है। भारत के कई भागों में संतान के इच्छुक माता–पिता यह मनौती मानते आए है कि अगर कन्या का जन्म हुआ, तो वे उसे देवता को समर्पित कर देगे। इन देवदासियों का नाम उन देवताओं के नाम पर रखा जाता था, जिन्हें उन्हें समर्पित किया जाता था। देवदासियों को देवताओं की विवाहिता समझा जाता था। देवदासियों का मुख्य कार्य नृत्य और गान के माध्यम से मंदिरों की शोभा बढ़ाना था। लेकिन, मंदिरों के पुजारी इन देवदासियों को यौन–संबंधों और वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य करने लगे। कालक्रम से देवदासी प्रथा और भी कलुषित होती गई। अनेक माता–पिता धन के लोभ में भी अपनी लड़कियों को मंदिरों में समर्पित करने लगे। देश के अलग–अलग भागों में देवदासियों को अलग–अलग नामों से पुकारा जाता रहा है, जैसे–केरल में 'कुदिकर', महाराष्ट्र में 'मुरली', आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु में 'वासवी', 'भाविन, 'देवाली' और 'नैकिन', कर्नाटक में 'जोगाथी' तथा राजस्थान में 'भगतिन'। सर्वेक्षणों में दिखाया गया है कि इनमें अधिकांश देवदासियाँ निर्धन हरिजन परिवारों की रही है।

लड़कियों को धर्म को समर्पित किए जाने की प्रथा केवल भारत में ही नहीं रही है। यूनान और रोम की पुरानी सभ्यताओं तथा मध्यकालीन युग में यूरोपीय देशों के गिरजाघरों में भी धर्म के नाम पर वेश्यावृत्ति को प्रचुर प्रोत्साहन मिला है। गिरजाघरों में साधुओं द्वारा साध्वियों के अनैतिक शोषण

के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कई पादरी सुंदरी कुमारियां को स्वर्ग के फाटक खोलने का साधन समझते थे। कई सर्वेक्षणों में दिखाया गया है कि वेश्यालयों में रहने वाली कई वेश्याएँ पहले गिरजाघरों में ही भ्रष्ट हो चुकी थी।

इन धार्मिक प्रथाओं के अतिरिक्त कुछ सामाजिक प्रथाओं के कारण भी वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता आया है। हिमालय क्षेत्र के कई भागों में 'रीत' प्रथा प्रचलित है। इसमें पति को अपनी पत्नी को बेचकर नई पत्नी खरीदने का जनसमूहों में वेश्यावृत्ति परंपरा से चलती आई है। कुछ सामान्य सामाजिक कुप्रथाओं, जैसे–दहेज, बहुविवाह, अन्य विवाह, परिवीक्षाविवाह आदि के कारण भी अनैतिक यौन–संबंध और वेश्यावृत्ति को प्रोत्साहन मिलता आ रहा है।

- **उद्योगीकरण और नगरीकरण** – उद्योगीकरण तथा नगरीकरण भी वेश्यावृत्ति के महत्वपूर्ण कारक रहे है। जैस–जैसे उद्योगों और नगरों का विकास होता गया है, वैसे–वैसे बड़ी संख्या में लोग रोजी–रोटी के लिए गाँवों से औद्योगिक केन्द्रों और नगरों में चले जाते हैं। उनके कई अपने परिवारों को गाँवों में ही ब्रेड़ देते हैं। शहरों और औद्योगिक केन्द्रों में आवासीय कठिनाइयों के कारण अनेक श्रमिक और कर्मचारी परिवारों से दूर अकेले जीवन व्यतीत करते हैं। कई छावनियों में सैनिक भी बड़ी संख्या में रहते हैं। वाणिज्य–व्यापार, कार्यालय, परिवहन के साधनों, सेवाओं आदि के विस्तार से भी नगरों और औद्योगिक केन्द्रों में पुरूष–कर्मचारियों या स्वनियोजित व्यक्तियों की संख्या में व्यापक वृद्धि हुई है। इन सबके फलस्वरूप नगरों और औद्योगिक केन्द्रों में लिंग–अनुपात में व्यापक विषमता आ जाती है तथा स्त्रियों की तुलना मं पुरूषों की संख्या बहुत अधिक हो जाती है। परिवारों से दूर आकर रहनेवाले अनेक व्यक्तियों को यौन–संतुष्टि के लिए वेश्याओं के पास जाना ही एकमात्र विकल्प रह जाता है।

इस प्रकार, नगरों और औद्योगिक केन्द्रों में वाणिज्यिक वेश्यावृत्ति व्यापक से चलती रहती है। श्रमिकों और कर्मचारियों के केन्द्रीकरण वाले क्षेत्रों में दूर–दूर, यहाँ तक कि विदेशों से वेश्याएँ आकर बस जाती है।

- **प्रवसन** – विगत वर्षों में कई देशों से लड़कियाँ और युवतियाँ रोजगार या धन–अर्जन के लोभ में विदेश जाने लगी है। भारत में प्रतिवर्ष बड़ी संख्या में लड़कियाँ रोजगार के लिए खाड़ी देशों, ग्रेट–ब्रिटेन तथा अन्य देशों में जाती है। उनमें कई को व्यभिचार, अनुचित यौन–संबंध तथा अंततः वेश्यावृत्ति के लिए बाध्य किया जाता रहा है। इसी तरह, कई देशों से पुरूषों के अंतराष्ट्रीय प्रवसन में भी व्यापक वृद्धि होती गई है। परिवार को स्वदेश में ही छोड़कर विदेशों में प्रवसन करने वाले पुरूषों से वेश्याओं की माँग को प्रोत्साहन मिलता रहा है। एक ही देश में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में पुरूष या स्त्री श्रपिकों के प्रवसन से भी वेश्यावृत्ति की माँग और पूर्ति दोनों प्रभावित होती रही है।
- **व्यापार के रूप में लाभदायक** – कई लोग वेश्यावृत्ति को लाभदायक व्यापार समझते हैं। कुछ देशों में इस व्यापार में अलग–अलग रूप में कई लोग होते हैं। वास्तव में, इस व्यवसाय का अधिकांश लाभ दलालों, वेश्यालयों के स्वामियों, कुटट्नियों, भडुओं, गुंडों और बदमाशों में बँट जाता है। वे विभिन्न तरीकों का सहारा लेकर वेश्यावृत्ति के लिए लड़कियों और स्त्रियों की आपूर्ति बनाए रखते हैं और ग्राहकों को लाते रहते हैं। कभी–कभी इस व्यवसाय में अच्छी खासी रकम लगी होती है, जिसके कारण इसमें पूँजी लगानेवाले तथा व्यापार पर निर्भर लोग इसकी उन्नति और निरंतरता बनाए रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। वेश्यावृत्ति में अंतराष्ट्रीय व्यापार भी होते रहते हैं।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पाठ्य सामग्री से कीजिए।

1. वेश्यावृत्ति की परिभाषा लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2. वेश्यावृत्ति के कारणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 1

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए। क) वेश्यावृत्ति के मुख्य तत्व ख) प्रत्यक्ष वेश्यायें ग) गुप्त वेश्यायें

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 2

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए। क) वेश्यावृत्ति के प्रकार ख) वेश्यावृत्ति के आंतरिक कारक ग) वेश्यावृत्ति के वाह्य कारक

.....

.....

.....

.....

.....

13.2 सार संक्षेप

वास्तव में वेश्यावृत्ति को विश्व का सबसे पुराना व्यवसाय माना जाता रहा है और यह प्रारम्भिक कार्य से ही समाज में किसी न किसी रूप में विघमान रही है। यह ऐसा व्यवसाय है जिसे समाज में हेय दृष्टि से देखा जाता है। प्रस्तुत इकाई में वेश्यावृत्ति की अवधारणा एवं परिभाषा के बारे में विस्तृत चर्चा की गई है जिसमें बताया गया है कि वेश्या वह स्त्री है जो बिना किसी पसन्द के पैसो के लिए अपने शरीर को निःसंकोच कई पुरूषों को समर्पित करती है। इसी इकाई में वेश्यावृत्ति के प्रमुख तत्वों के बारे में प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत इकाई में विभिन्न प्रकार के वेश्याओं का भी वर्णन किया गया है जिनमें प्रत्यक्ष वेश्यायें, वंशानुगत वेश्यायें, प्रथागत वेश्यायें एवं गुप्त वेश्यायें प्रमुख है। इसी इकाई के अन्त में वेश्यावृत्ति के व्यक्तिगत तथा वाह्य कारणों की भी चर्चा प्रस्तुत की गई है।

13.3 पारिभाषिक शब्दाबली

वेश्यावृत्ति– अनैतिक व्यापार अधिनियम 1956 के अनुसार ''वेश्यावृत्ति किसी स्त्री द्वारा अपने शरीर को नकद या प्रकार के भाड़े पर स्वच्छन्द यौन समागम के लिये अर्पित करने की क्रिया है।''

वेश्या – वेश्या वह स्त्री है जो किसी बिना पसन्द के पैसों के लिए अपने शरीर को निःसंकोच कई पुरूषों को समर्पित करती है।

अभ्यास प्रश्न –

लघु

1. वेश्यावृत्ति की परिभाषा लिखिए।
2. वेश्यावृत्ति के मुख्य तत्वों की विवेचना कीजिए।
3. प्रत्यक्ष वेश्याओं पर टिप्पणी लिखिए।
4. वन्शांनुगत वेश्यायें कौन होती है ?

विस्तृत

1. वेश्यावृत्ति की परिभाषा देते हुए इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. वेश्यावृत्ति का अर्थ लिखते हुए इसके आन्तरिक एवं वाह्य कारणों पर एक निबन्ध लिखिए।

13.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. तेज, संगीता, पाण्डेय तेजस्कर, समाज कार्य, जूविली फण्डामेन्टल, लखनऊ, वर्ष 2012, पेज बी0–137–बी0149.
2. सिंह, जीत कृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 163–171.

इकाई – 14

आत्म हत्या

Suicide

14.0 इकाई का उद्देश्य

14.1 परिचय

14.1.1 आत्म हत्या का अर्थ एवं विशेषतायें

14.1.2 आत्म हत्या के कारण

14.1.3 आत्म हत्या के प्रकार

14.2 सार संक्षेप

14.3 पारिभाषिक शब्दाबली

अभ्यास प्रश्न – लघु विस्तृत

14.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

14.0 इकाई का उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में आत्म हत्या से सम्बन्धित अवधारणा, अर्थ एवं विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें बताया गया है कि आत्म हत्या क्या है ? तथा इसकी विशेषतायें कौन–कौन सी है ? इसी इकाई में आत्म हत्या के कारणों पर भी विशेष चर्चा प्रस्तुत की गई है। जिसमें तीन प्रकार की आत्म हत्याओं जैसे – परार्थवादी आत्म हत्या, अहम वादी आत्म हत्या तथा आस्वाभाविक आत्म हत्या का वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप –

1. आत्म हत्या के बारे में ज्ञान प्राप्त कर सकेगें।
2. आत्म हत्या का अर्थ एवं विशेषताओं को जान सकेगें।
3. आत्म हत्या के कारणों के बारे में लिख सकेगें।

4. आत्म हत्या की मनोवैज्ञानिक दशाओं, जैविकीय दशाओं तथा भौगोलिक दशाओं पर टिप्पणी लिख सकेगें।
5. आत्म हत्या के प्रकारों पर गहन चिन्तन कर सकेगें।

14.1 परिचय

सन् 1897 में दुर्खीम की तीसरी महत्वपूर्ण पुस्तक 'आत्महत्या' फ्रैंच भाषा में *'Le Suicide'* के नाम से प्रकाशित हुई। अब्राहम तथा मॉर्गन के शब्दों में, ''यह पुस्तक सामूहिक चेतना से सम्बन्धित सामाजिक दबाव के एक ऐसे सिद्धान्त को प्रस्तुत करती है जिसमें अवधारणात्मक सिद्धान्त तथा आनुभाविक शोध के बीच एक विलक्षण समन्वय किया गया है।'' साधारणतया आत्महत्या को एक साधारण सी घटना समझा जाता है जो कुछ वैयक्तिक कठिनाइयों का परिणाम होती है। दुर्खीम ने इस सामान्य धारणा का खण्डन करते हुए आत्महत्या को एक वैयक्तिक घटना न मानकर इसे एक सामाजिक तथ्य के रूप में स्पष्ट किया। उन्होंने संसार के विभिन्न देशों से आत्महत्या सम्बन्धी व्यापक आँकड़ें एकत्रित करके यह बताया कि आत्महत्या की घटनाएँ भी एक तरह का सामाजिक प्रवाह है जो अधिक संवेदनशील लोगों को अपने साथ बहा ले जाता है। दूसरे शब्दों में, अन्य सामाजिक तथ्यों की तरह आत्महत्या भी सामूहिक चेतना तथा सामूहिक दबाव की ही उपज होती है। अपने इन विचारों के द्वारा एक ओर दुर्खीम मनोविज्ञान, जीव विज्ञान, वंशानुक्रम तथा भौगोलिक कारकों पर आधारित आत्महत्या सम्बन्धी विचारों का खण्डन करना चाहते थे तो दूसरी ओर, उनका उद्देश्य सांख्यिकीय प्रमाणों के आधार पर आत्महत्या के बारे में एक समाजशास्त्रीय विवेचना प्रस्तुत करना था। अपनी पैनी दृष्टि और विश्लेषण की क्षमता की सहायता से उन्होंने यह स्पष्ट किया कि समाज ही व्यक्ति के जीवन को सामाजिक और नैतिक आधार पर नियन्त्रित करने वाला सबसे प्रमुख आधार है। जब कभी भी व्यक्ति पर समाज का नियन्त्रण शिथिल पड़ने लगता है,

तब आत्महत्या की घटनाएँ भी बढ़ने लगती है। इस आधार पर भी आत्महत्या जैसे तथ्य को सामाजिक जीवन तथा सामाजिक घटनाओं से पृथक् करके नहीं समझा जा सकता। इस पुस्तक में दुर्खीम के विचारों का सार यह है कि विभिन्न समाजों में आत्महत्या की दर एक सामाजिक वास्तविकता है; आत्महत्या का सम्बन्ध सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना से है; जब तक समाज के अस्तित्व की दशाओं में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हो जाता, प्रत्येक समाज में आत्महत्या की घटनाएँ लगभग समान दर से घटित होती रहती है।

14.1.1 आत्म हत्या का अर्थ एवं विशेषतायें

'आत्महत्या' एक ऐसा सामान्य शब्द है जिसका अर्थ सभी लोग जानने का दावा कर सकते हैं। इस कारण साधारणतया इसे परिभाषित करने की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती। इसके विपरीत, दुर्खीम यह मानते हैं कि आत्महत्या ऐसी सामान्य अवधारणा नहीं है जैसी कि साधारणतया समझ ली जाती है। दूसरे, सामाजिक तथ्यों की तरह आत्महत्या भी एक ऐसी सामाजिक घटना है जिसमे ंबाह्मता और बाध्यता का गुण होता है। इस दशा में यह आवश्यक है कि आत्महत्या से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों को समझकर इसे भी समुचित रूप से परिभाषित किया जाये। वास्तविकता यह है कि 'सामान्य मृत्यु' तथा 'आत्महत्या' दो भिन्न दशाएँ है। इस दृष्टिकोण से यदि आत्महत्या से सम्बन्धित उन तत्वों को ज्ञात कर लिया जाये जिनका सामान्य मृत्यु में अभाव होता है तो आत्महत्या के अर्थ को भली–भाँति समझा जा सकता है। इसे स्पष्ट करते हुए दुर्खीम ने लिखा है, ''आत्महत्या शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसी मृत्यु के लिए किया जाता है जो मृत व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष परिणाम होती है।'' इस कथन में स्पष्ट होता है कि आत्महत्या प्रत्यक्ष अथवा

अप्रत्यक्ष रूप से मृतक द्वारा की गयी क्रिया का ही परिणाम होती है। दुर्खीम यह मानते हैं कि जब कोई व्यक्ति स्वयं अपने जीवन को समाप्त करता है तो इस क्रिया के कारण उस व्यक्ति के बाहर स्थित होते हैं। इस अर्थ में आत्महत्या कुछ बाहरी दशाओं के दबाव से उत्पन्न होने वाला एक ऐसा परिणाम है जिसे समझने के बाद भी व्यक्ति उससे बच नहीं पाता। इसके बाद भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि 'आत्महत्या' अपने जीवन को समाप्त करने के लिए मृतक द्वारा किये जाने वाले प्रयत्न का प्रत्यक्ष परिणाम है, अप्रत्यक्ष नहीं। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति किसी ऊँचे स्थान से जमीन पर यह समझकर नीचे कूद पड़े कि जमीन उससे केवल 10 फुट नीचे है लेकिन वास्तव में अधिक ऊँचाई पर होने के कारण कूदने से उसकी मृत्यु हो जाये तो यह उसकी क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होगा। इस दशा में इसे एक दुर्घटना कहा जायेगा, आत्महत्या नहीं।

वास्तव में, कुछ बाहरी दशाओं के प्रभाव से आत्महत्या मृतक द्वारा किया जाने वाला एक ऐसा विचारपूर्वक कार्य है जिसके परिणाम के प्रति व्यक्ति पहले से ही चेतन होता है। इस आधार पर दुर्खीम ने आत्महत्या को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'आत्महत्या, शब्द का प्रयोग मृत्यु की उन सभी घटनाओं के लिए किया जाता है। जो स्वयं मृतक के किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है तथा जिसके भावी परिणाम को वह स्वयं भी जानता है।' इस कथन के द्वारा दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि आत्महत्या सदैव किसी सकारात्मक क्रिया का ही परिणाम नहीं होती बल्कि किसी नकारात्मक क्रिया के द्वारा भी आत्महत्या की जा सकती है। उदाहरण के लिए जहर खाकर या स्वयं को गोली मारकर की जाने वाली आत्महत्या एक सकारात्मक क्रिया का परिणाम है, जबकि घातक बीमारी के बाद भी दवा लेने से इन्कार करना अथवा भोजन न करके जीवन का त्याग कर देना आत्महत्या के लिए की जाने वली नकारात्मक क्रिया है। आत्महत्या से सम्बन्धित किया जाने वाला कार्य चाहे

सकारात्मक हो या नकारात्मक, पारिभाषिक रूप से जब तक उसके घातक परिणाम के बारे में कर्ता निश्चित रूप से चेतन न हो, तब तक उसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। दुर्खीम के शब्दों में, ''आत्महत्या केवल उसी अवस्था में विद्यमान होती है जब व्यक्ति उस घातक कार्य को करने के दौरान उसके परिणाम को निश्चित रूप से जानता हो, यद्यपिइ स निश्चितता की मात्रा कुछ कम या अधिक हो सकती है।'' यदि किसी घातक क्रिया के परिणाम के बारे में व्यक्ति निश्चित रूप से नहीं जानता तो उससे व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर भी इसे आत्महत्या नहीं कहा जायेगा। उदाहरण के लिए सर्कस में मौत की छलाँग लगाने वाला या विषैले साँपों के करतब दिखाने वाला व्यक्ति अपनी इन क्रियाओं का परिणाम केवल लोगों का मनोरंजन करना समझता है। इसके विपरीत, यदि मौत की छलाँग लगाने का साँप के काट लेने से व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो इसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता।

आत्महत्या की अवधारणा से इसके कुछ प्रमुख तत्व अथवा विशेषताएं स्पष्ट होती है जिन्हें सरल शब्दों में निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

1. **वैयक्तिक क्रिया का परिणाम** – आत्महत्या का सबसे प्रमुख तत्व अथवा विशेषता यह है कि यह स्वयं आत्मघात करने वाले व्यक्ति की क्रिया का परिणाम होती है। दुर्खीम के अनुसार यह क्रिया सकारात्मक भी हो सकती है और नकारात्मक भी। उदाहरण के लिए अपने आपको गोली मारकर या किसी ऊँचे स्थान से कूदकर जान दे देना सकारात्मक क्रिया है, जबकि खाना खाने से इन्कार करके जीवन को समाप्त कर देना नकारात्मक क्रिया है।
2. **परिणाम के प्रति चेतना** – दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या मृतक द्वारा की जाने वाली क्रिया का प्रत्यक्ष परिणाम होती है। इस परिणाम के प्रति आत्मघात करने वाला व्यक्ति पूरी तरह चेतन होता है अर्थात् वह जानता है कि एक विशेष कार्य का परिणाम मृत्यु के रूप में

होगा। यदि किसी खतरनाक कार्य के फलस्वरूप आकस्मिक रूप से व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो ऐसे कार्य में परिणाम के प्रति चेतना का अभाव होने के कारण उसे आत्महत्या नहीं कहा जा सकता।

3. **स्वेच्छा का समावेश** – आत्महत्या एक ऐसी क्रिया है जिसे व्यक्ति अपनी इच्छा से करता है। यदि किसी व्यक्ति को अपना जीवन स्वयं समाप्त करने के लिए कुछ लोगों के द्वारा बाध्य किया जाये तथा व्यक्ति की मृत्यु उसी बाध्यता का परिणाम हो तो ऐसी मृत्यु को भी आत्महत्या की श्रेणी में नहीं रखा जायेगा। इसका अर्थ है कि आत्महत्या के लिए व्यक्ति में एक स्पष्ट इरादे का होना आवश्यक तत्व है। इसी के द्वारा दुर्खीम ने यह स्पष्ट किया कि आत्महत्या तथा मृत्यु में एक स्पष्ट अन्तर है क्योंकि मृत्यु एक ऐसी दशा है जिसमें स्वेच्छा का अभाव होता है।

4. **उद्देश्य का समावेश** – प्रत्येक आत्महत्या के पीछे मृतक का कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य होता है, चाहे यह उद्देश्य प्रत्यक्ष हो अथवा अप्रत्यक्ष। दुर्खीम का यह मानना है कि आत्महत्या का उद्देश्य सदैव स्पष्ट नहीं होता लेकिन आत्महत्या का एक ऐसा सामाजिक आधार अवश्य होता है जो किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने की प्रेरणा देता है। यह उद्देश्य व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। एक व्यक्ति यदि आत्महत्या के द्वारा परिवार को बदनामी या आर्थिक दिवालियेपन से बचाना चाहता है तो यह व्यक्तिगत उद्देश्य है, जबकि देश की रक्षा के लिए एक सैनिक द्वारा जान–बूझकर अपने प्राणों का बलिदान कर देना सामूहिक उद्देश्य का उदाहरण है। यदि कोई व्यक्ति बिना किसी उद्देश्य के एकाएक गहरी नदी में छलाँग लगाकर या रेलगाड़ी के आगे कूदकर अपनी जान दे दे तो इसे केवल एक मनोविकार ही कहा जायेगा।

5. **आत्महत्या का कारण व्यक्ति से बाह्य** – दुर्खीम ने इस बात पर विशेष बल दिया कि आत्महत्या का कारण व्यक्ति के अन्दर विद्यमान नहीं होता बल्कि कुछ बाहरी दशाएँ व्यक्ति को आत्महत्या करने की प्रेरणा देती है। आत्महत्या का कारण यदि व्यक्ति के अन्दर स्थिर होता तो विभिन्न अवधियों में आत्महत्या की दर में बहुत असमानता देखने को मिलती। इसके विपरीत, विभिन्न समाजों में थोड़े–बहुत अन्तर के साथ आत्महत्या की घटनाएँ एक निश्चित दर से घटित होती रहती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि सामाजिक संरचना सम्बन्धी कुछ विशेषताएँ ही आत्महत्या के लिए अनुकूल दशाएँ उत्पन्न करती है। जब तक इन दशाओं में अधिक परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक आत्महत्या की दर में भी कोई परिवर्तन नहीं होगा।

6. **एक सामाजिक तथ्य** – दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि आत्महत्या एक वैयक्तिक घटना नहीं बल्कि एक सामाजिक तथ्य है। दूसरे शब्दों में, आत्महत्या का कारण वैयक्तिक न होकर सामाजिक होता है। किसी वैयक्तिक घटना को व्यक्ति की जीव–रचना, मानसिक दशाओं अथवा अनुकरण आदि के आधार पर समझा जा सकता है। इसके विपरीत, सामाजिक घटना का कारण समाज की संरचना तथा समाज के नैतिक संगठन में निहित होता है। दुर्खीम ने यूरोप के विभिन्न देशों से आत्महत्या सम्बन्धी आँकड़े एकत्रित करके यह स्पष्ट किया कि विभिन्न समाजों की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक संरचना के अनुसार ही वहाँ आत्महत्या की दर में भिन्नता देखने को मिलती है तथा एक विशेष समाज में प्रत्येक वर्ष आत्महत्या की दर में अधिक भिन्नता नहीं पायी जाती। इसका तात्पर्य है कि सामाजिक दशाएँ ही आत्महत्या की दर को प्रभावित करती है। आत्महत्या इसलिए भी एक सामाजिक तथ्य है कि इसमें वाह्यता तथा बाध्यता की विशेषताएँ देखने को मिलती है।

आत्महत्या व्यक्ति से वाह्य है क्योंकि इसका कारण व्यक्ति के अन्दर स्थित नहीं होता। साथ ही, यह इस दृष्टिकोण से भी बाध्यताकारी है कि समाज का एक विशेष नैतिक संगठन अथवा सामाजिक मूल्य ही व्यक्ति को आत्महत्या की प्रेरणा देते हैं।

14.1.2 आत्म हत्या के कारण

आत्महत्या की विवेचना में दुर्खीम ने अनेक उन कारणों का उल्लेख किया जिनके आधार पर समय–समय पर आत्महत्या की विवेचना की जाती रही थी। दुर्खीम से पहले मनोवैज्ञानिकों, जीववादियों तथा भौगोलिकवादियों ने यह स्पष्ट किया था कि व्यक्ति कुछ मानसिक, जैविकीय तथा प्राकृतिक दशाओं के प्रभाव से आत्महत्या करते हैं। इसी आधार पर आत्महत्या के विभिन्न प्रकारों, जैसे– उन्मादपूर्ण आत्महत्या, संवेगात्मक आत्महत्या, निराशापूर्ण आत्महत्या तथा प्रेतबाधा आत्महत्या आदि का भी उल्लेख किया गया। दुर्खीम ने ऐसे सभी कारणों की निरर्थकता को स्पष्ट करते हुए आत्महत्या की सामाजिक कारणों के आधार पर व्याख्या की। इसलिए यह आवश्यक है कि आत्महत्या के मनोवैज्ञानिक, जैविकीय तथा भौगोलिक कारणों पर दुर्खीम के विचारों को समझने के साथ उन सामाजिक दशाओं का विस्तार से उल्लेख किया जाये तो दुर्खीम के अनुसार आत्महत्या का वास्तविक कारण है।

(1) मनोवैज्ञानिक दशाएँ *(Psychological Conditions)*

मनोवैज्ञानिक दशाओं में विभिन्न विद्वानों ने स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं, मानसिक बीमारियों, संवेगात्मक अस्थिरता, उन्माद तथा पातक की भावना आदि को आत्महत्या के प्रमुख कारणों के रूप में स्पष्ट किया था। दुर्खीम के अनुसार इनमें से किसी भी कारण के आधार पर आत्महत्या की विवेचना नहीं की जा सकती।

(अ) स्वभाव सम्बन्धी विशेषताएँ – मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ व्यक्तियों का स्वभाव आत्महत्या के लिए अधिक अनुकूल होता है। जो लोग जीवन में बहुत अधिक आराम की कामना करते हैं, अधिक भावुक होते हैं, अधिक मनोरंजन पसन्द करते हैं तथा स्वभाव से अन्तर्मुखी होते हैं, उनके शान्त जीवन में थोड़ा भी व्यवधान पैदा होने से वे विचलित हो जाते हैं। आत्महत्या इसी दशा का परिणाम है। दुर्खीम ने अपने अध्ययन में यह पाया कि व्यक्तिगत स्वभाव तथा आत्महत्या के बीच कोई सह–सम्बन्ध नहीं है। आत्महत्या करने वाले व्यक्तियों में अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी दोनों तरह के स्वभाव वाले लोग होते हैं। दूसरी ओर, संवेग और भावना स्त्रियों के जीवन में अधिक होती है, जबकि आत्महत्या करने वाले लोगों में स्त्रियों की अपेक्षा पुरूषों का प्रतिशत अधिक है।

(ब) मनोविकार – मनोविकार इस तरह की मानसिक बीमारी है जो विभिन्न रूपों में आत्महत्या के लिए उत्तरदायी होती है। उदाहरण के लिए, व्यर्थ की चिन्ता से घिरे रहना, प्रत्येक दशा में निराशा अनुभव करना, स्नायुदोष का होना, स्वयं कोई निर्णय न ले पाना, बहुत जल्दी दुःखी या प्रसन्न हो जाना आदि विभिन्न प्रकार के मनोविकार है। यह मनोविकार जब व्यक्ति के जीवन को बहुत असन्तुलित बना देते हैं तो वह अपने जीवन को बेकार समझकर आत्महत्या की ओर मुड़ जाता है। दुर्खीम ने यह सिद्ध कि या कि मनोविज्ञान स्वयं आत्महत्या का कारण नहीं होते बल्कि स्वयं मनोविकार भी कुछ विशेष सामाजिक दशाओं का परिणाम होते हैं। इसका अर्थ है कि मनोविकार आत्महत्या के लिए प्रेरणा तो दे सकते हैं लेकिन आत्महत्या के वास्तविक कारण सामाजिक दशाओं में ही खोजे जा सकते हैं।

(स) संवेगात्मक अस्थिरता – मनोवैज्ञानिक यह मानते हैं कि आत्महत्या करने वाले लोगों में से अधिकांश लोग वे होते हैं जो स्थिर विचारों के नहीं होते, तर्क के आधार पर कोई निर्णय नहीं ले पाते तथा जिनकी सोच नकारात्मक होती है। ऐसे व्यक्ति सभी दूसरे लोगों को अपना

विरोधी और आलोचक समझने लगते हैं। यही दशा उन्हें आत्महत्या करने की प्रेरणा देती है। दुर्खीम का कथन है कि मनोवैज्ञानिकों के अनुसार युवावस्था में संवेगात्मक अस्थिरता व्यक्ति में सबसे कम होती है लेकिन बच्चों और वृद्धों की तुलना में युवा वर्ग के लोग अधिक आत्महत्या करते हैं। इसका तात्पर्य है कि संवेगात्मक अस्थिरता आत्महत्या का प्रमुख कारण नहीं है।

(द) उन्माद – उन्माद एक ऐसा मानसिक विकार है जिसमें व्यक्ति अपनी किसी भी इच्छा के तनिक भी अपूर्ण रह जाने की दशा में एकाएक असामान्य व्यवहार करने लगता है। उसकी मानसिक स्थिति इतनी बिगड़ जाती है कि व्यक्ति असामान्य क्रियाएँ करने लगता है। अक्सर उन्माद की दशा में अकेला होने पर व्यक्ति आत्महत्या का शिकार हो जाता है। दुर्खीम के अनुसार उन्माद पूरी तरह एक वैयक्तिक और काल्पनिक विशेषता है जिसके आधार पर आत्महत्या की व्याख्या नहीं की जा सकती।

(य) पातक की भावना – यह एक ऐसी भावना है जो किसी कुकृत्य को करने के बाद व्यक्ति में स्वयं अपने प्रति घृणा की भावना उत्पन्न कर देती है। पातक की दशा में व्यक्ति हर समय अपने प्रति सशंकित रहने लगता है, वह अनिद्रा से घिर जाता है तथा उसमें इतनी अधिक हीनता पैदा हो जाती है कि धीरे–धीरे अकारण वह पूरे समूह को अपने विरुद्ध समझने लगता है। यही दशा उसे आत्महत्या की ओर ले जाती है। दुर्खीम पातक को एक मनोवैज्ञानिक दशा न मानकर एक सामाजिक दशा के रूप में देखते हैं क्योंकि पातक का कारण आन्तरिक नहीं बल्कि समाज की वाह्म दशाएँ होती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक मद्यपान को भी एक मनोवैज्ञानिक कारण मानते हुए इसके आधार पर आत्महत्या की विवेचना करते हैं लेकिन दुर्खीम ने यह सिद्ध किया कि स्पेन तथा फ्रांस जैसे देशों में जहाँ शराब का सबसे अधिक

सेवन किया जाता है, वहाँ यूरोप के अनेक दूसरे देशों की तुलना में आत्महत्या की दर कम है।

(2) जैविकीय दशाएँ *(Biological Conditions)*

दुर्खीम ने अनेक ऐसी मानसिक और जैविकीय दशाओं का भी उल्लेख किया जिन्हें अक्सर आत्महत्या का कारण मान लिया जाता है। जीववादी यह मानते हैं कि एक विशेष शारीरिक रचना तथा वंशानुक्रम से प्राप्त होने वाली विशेषताएं भी आत्महत्या की प्रेरणा देती है। इस दृष्टिकोण से दोषपूर्ण आनुवंशिक विशेषताएं, असामान्य शारीरिक रचना तथा प्रजातीय लक्षण वे प्रमुख जैविकीय कारक है जिनका आत्महत्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

(अ) दोशपूर्ण आनुवंशिक विशेषताएं – जीववादियों का विश्वास है कि माता–पिता के अच्छे और बुरे सभी गुणों का वाहकाणुओं के द्वारा उनकी सन्तानों में संरक्षण होने की सदैव सम्भावना रहती है। माता–पिता में यदि स्नायु दोष या विभिन्न प्रकार के मनोविकार होते हैं तो अक्सर यह दोष उनकी सन्तानों में भी आ जाते हैं। इससे बच्चों में भी आत्महत्या की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। दुर्खीम ने आनुवंशिकता अथवा पैतृकता के आधार पर आत्महत्या की प्रवृत्ति का खण्डन किया। उनके अनुसार आनुवंशिकता पूरी तरह एक जन्मजात और आन्तरिक विशेषता है जिसके आधार पर आत्महत्या जैसे वाह्य व्यवहार की विवेचना नहीं की जा सकती।

(ब) असामान्य शारीरिक रचना – जीववादी यह भी मानते हैं कि जिन व्यक्तियों की शारीरिक रचना असामान्य होती है, उनमें आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिलती है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति बहुत अधिक भद्दे, मोटे, नाटे, अपंग अथवा विकलांग होते हैं, अक्सर अपने जीवन के प्रति उनमें अधिक रूचि नहीं होती। शारीरिक विकृतियाँ उनके विचारों को भी असन्तुलित बना देती है जिसका परिणम बहुधा आत्महत्या के रूप में देखने को मिलता है। दुर्खीम ने इस आधार को भी अस्वीकार करते हुए कहा कि असामान्य शारीरिक रचना तब तक आत्महत्या का कारण नहीं हो सकती

जब तक व्यक्ति का जीवन शेष समाज से बिल्कुल अलग न हो जाये। इसका तात्पर्य है कि असामान्य शारीरिक रचना स्वयं आत्महत्या का कारण नहीं होती बल्कि सामाजिक दशाओं के सन्दर्भ में ही उनके प्रभाव को समझा जा सकता है।

(स) प्रजातीय लक्षण – अनेक विद्वानों ने प्रजातीय लक्षणों के आधार पर भी आत्महत्या की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। सामान्य निष्कर्ष यह दिया जाता है कि गोरी प्रजाति की तुलना में काली प्रजाति के लोगों में आत्महत्या की दर अधिक होती है। इससे प्रजातीय लक्षणों और आत्महत्या का सहसम्बन्ध स्पष्ट होती है। दुर्खीम ने इसकी आलोचना करते हुए कहा कि कुछ समय पहले तक जिन प्रजातीय समूहों में आत्महत्या की दर अधिक थी, उनकी सांस्कृतिक दशाओं में परिवर्तन हो जाने स`अब उनमें आत्महत्या की दर कम होती जा रही है। इससे भी यह स्पष्ट होता है कि आत्महत्या का कारण जैविकीय दशाओं में नहीं बल्कि सामाजिक दशाओं में ही ढूँढ़ा जा सकता है।

(3) भौगोलिक दशाएँ *(Geographical Conditions)*

भौागोलिकवादी यह मानते हैं कि आत्महत्या तथा भौगोलिक दशाओं के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। भौगोलिक दशाओं का सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की जलवायु, ऋतु–परिवर्तन तथा मौसमी तापमान में होने वाले उतार–चढ़ाव से है। डी0 गूरे, वैगनर, मॉण्टेस्क्यू, डेक्सटर तथा फेरी आदि वे प्रमुख भौगोलिकवादी हैं जो अनेक दूसरे मानव व्यवहारों की तरह आत्महत्या को भी भौगोलिक दशाओं का परिणाम मानते हैं। दुर्खीम के विचारों के सन्दर्भ में आत्महत्या तथा भौगोलिक कारकों के सम्बन्ध को जानने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि भौगोलिकवादियों के कथन को उपयुक्त नहीं कहा जा सकता।

(अ) जलवायु तथा आत्महत्या – कुछ भौगोलिकवादी यह मानते हैं कि जलवायु तथा आत्महत्या के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। यही कारण है

कि जलवायु में परिवर्तन होने के साथ आत्महत्या की दर में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। उनके अनुसार समशीतोष्ण जलवायु में आत्महत्याएँ अधिक होती हैं। इसके विपरीत, अधिक गर्म या अधिक ठण्डी जलवायु में आत्महत्या की घटनाएँ तुलनात्मक रूप से कम होती है। इस सम्बन्ध में दुर्खीम ने लिखा है, ''आत्महत्या की दर में पायी जाने वाली भिन्नता की खोज जलवायु के रहस्यात्मक प्रभाव में नहीं बल्कि विभिन्न देशों में पायी जाने वाली सभ्यता की प्रकृति में करना आवश्यक है।'' इसका तात्पर्य है कि भौगोलिकवादियों ने जिस समशीतोष्ण जलवायु को अधिक आत्महत्याओं का कारण मान लिया है, उसका कारण वास्तव में इस जलवायु में विकसित होने वाली कुछ विशेष प्रकार की सामाजिक–सांस्कृतिक दशाएं है। इटली का उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि यहाँ क विभिन्न भागों में समय–समय पर आत्महत्या की दर में काफी परिवर्तन होता रहा, जबकि वहाँ की जलवायु में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ। इससे यह प्रमाणित होता है कि आत्महत्या की घटनाओं की खोज सामाजिक और सांस्कृतिक दशाओं में ही की जा सकती है।

(ब) ऋतु–परिवर्तन–मॉण्टेस्क्यू ने ऋतु–परिवर्तन और आत्महत्या के सहसम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए लिखा कि यूरोप में गर्मी में आत्महत्या की दर सबसे अधिक होती है और इसमें भी मई व जून का समय सबसे अधिक घातक होता है। बसन्तु ऋतु में आत्महत्या की दर साधारण होती है तथा सर्दियों में इसमें बहुत कमी हो जाती है। इस प्रकार आत्महत्या की दर में होने वाला परिवर्तन ऋतु–परिवर्तन के साथ बहुत कुछ नियमित रूप में देखने को मिलता है। दुर्खीम ने ऐसे निष्कर्षों को अस्वीकार करते हुए यह तर्क दिया कि आत्महत्या की दर की भिन्नता ऋतु–परिवर्तन से सम्बन्धित नहीं है बल्कि व्यक्ति उस समय अपने जीवन को त्यागना अधिक पसन्द करते हें जब मौसम उनके जीवन को सबसे कम प्रतिकूल रूप से प्रभावित

कर रहा होता है। यह ऋतु–परिवर्तन का सामाजिक सन्दर्भ है तथा यही सन्दर्भ कुछ सीमा तक आत्महत्या की दर से सम्बन्धित है।

(स) तापमान – फेरी जैसे एक प्रमुख भौगोलिकवादी ने यह निष्कर्ष दिया कि तापमान तथा आत्महत्या के बीच एक प्रत्यक्ष सम्बन्ध है। उन्होंने अपने अध्ययन में यह पाया कि गर्मियों में जब तापमान अधिक होता है, तब आत्महत्या की घटनाओं में भी वृद्धि हो जाती है। दुर्खीम ने ऐसे निष्कर्षों की आलोचना करते हुए लिखा कि तापमान के थर्मामीटर का आत्महत्या में कोई सम्बन्ध नहीं है। यह सच है कि जब तापमान अधिक होता है तो आत्महत्याएँ अधिक होती है लेकिन इसका कारण यह है गर्मियों के मौसम में व्यक्ति स्वयं को अधिक अकेला महसूस करता है जिसके फलस्वरूप आत्महत्या की दर में वृद्धि हो जाती है।

इस प्रकार दुर्खीम ने मनोवैज्ञानिक, जैविकीय तथा भौगोलिक दशाओं के आधार पर आत्महत्या की विवेचना को भ्रामक बताते हुए सामाजिक दशाओं को ही आत्महत्या की घटनाओं के लिए उत्तरदायी माना।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणी : क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पाठ्य सामग्री से कीजिए।

1. आत्म हत्या की अवधारणा लिखिए।

.....

.....

.....

2. आत्म हत्याओं के कारणों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

अभ्यास 1

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए। क) आत्म हत्या की विशेषतायें ख) आत्म हत्या की मनोवैज्ञानिक दशायें

.....

.....

.....

.....

14.1.3 आत्म हत्या के प्रकार

दूर्खीम के अनुसार आत्म हत्या तीन प्रकार की होती है जो अग्रलिखित है –

1. **परार्थवादी आत्म हत्या** – इस प्रकार की आत्म हत्या तब होती है जबकि व्यक्ति पूर्णतया समूह द्वारा नियंत्रित होता है और व्यक्ति के व्यक्तित्व का कोई स्थान नहीं होता है। सच तो यह है कि यह उस स्थिति को व्यक्त करती है, जबकि व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध अत्यधिक घनिष्ठ होता है और समाज या समूह व्यक्ति के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से निगल जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति जो कुछ भी करता है समाज या समूह की दृष्टि से करता है। इतना ही नहीं, समूह का अत्यधिक नियंत्रण व घनिष्ठ बन्धन उसे आत्म बलिदान के लिये भी बाध्य कर सकता है। परार्थवादी आत्म हत्या को स्पष्ट करते हुए 'पारसन्स' महोदय लिखते हैं ''यह उस सामूहिक चेतना की अभिव्यक्ति है जो सामूहिक दबाव के अर्थ में व्यक्तित्व के दोषों को ठुकरा देती है।'' वास्तव में परार्थवादी आत्म हत्या समूह के अत्यधिक नियंत्रण व घनिष्ठता के कारण होती है और उस स्थिति में व्यक्ति सामूहिक हित के लिये अपने जीवन को बलिदान करने के लिये भी

तैयार हो जाता है। आदिम समाजों में इस प्रकार की आत्म हत्यायें देखने को मिलती है। भारत में पायी जाने वाली सती प्रथा और जापान की हारा–कीरी प्रथा इसी प्रकार के आत्म हत्या के उदाहरण कहे जा सकते हैं।

2. **अहम् वादी आत्म हत्या** – इस प्रकार की आत्म हत्या तब होती है जबकि व्यक्ति अपने आपको सामूहिक जीवन से अत्यधिक अलग अनुभव करने लगता है। यह परिस्थिति व्यक्तिगत विघटन के कारण होती है अथवा उस समय उत्पन्न होती है जबकि व्यक्ति के सम्बन्ध अपने समूह से पर्याप्त सीमा तक विघटित हो जाते हैं। इस स्थिति में व्यक्ति सामाजिक दृष्टि से गहरी निराशा का अनुभव करता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में व्यक्ति अपने–अपने स्वार्थों में अत्यधिक लिप्त हो जाता है और कोई किसी की परवाह नहीं करता है। ऐसे वातावरण में कुछ व्यक्तियों को अपने को एकाकी व उपेक्षित अनुभव करना स्वभाविक हो जाता है, क्योंकि यह सब कुछ सामाजिक जीवन से उत्पन्न गहरी निराशा के कारण होता है। सम्भवतया यही कारण है कि अविवाहित व परित्यक्त व्यक्ति पारिवारिक जीवन के मधुर सम्बन्धों का आनन्द नहीं ले पाते, अकेलेपन का अनुभव करते हैं और विवाहित व्यक्तियों की तुलना में कहीं अधिक संख्या में आत्म हत्या कर बैठते हैं। आधुनिक समाज में अधिकतर आत्म हत्या समाज द्वारा उत्पन्न अति अहमवाद या अति व्यक्तित्व वाद के कारण होती है।

3. **अस्वाभाविक या अप्राकृतिक आत्म हत्या** – इस प्रकार के आत्म हत्यायें सामाजिक परिस्थितियों में एकाएक या आकस्मिक परिवर्तन होने के कारण होती है। इन आकस्मिक परिस्थितियों में कुछ व्यक्ति गहरी निराशा या अत्यधिक प्रसन्नता का अनुभव करने लगते हैं। व्यापार में एकाएक मन्दी आना, दिवालिया हो जाना, लाटरी का जीतना, भीषण आर्थिक संकट आदि इसी प्रकार की आकस्मिक

परिस्थितियां है। सच तो यह है कि इन नवीन परिथतियों में अनेक व्यक्ति सामान्य जीवन की भांति अनुकूलन नहीं कर पाते हैं। इसी स्थिति को अस्वाभाविकता कहा जाता है। इसको स्पष्ट करते हुये 'कोजर' और 'रोजनवर्ग' लिखते हैं ''इसका अभिप्राय यही है कि अस्वाभाविक या अप्राकृतिक आत्म हत्यायें सामान्य सामूहिक जीवन में एकाएक परिवर्तन होने से उत्पन्न सामाजिक असन्तुलन होने के कारण होती है।'' औद्योगिक समाज व्यवस्था में इस प्रकार की आत्म हत्यायें होती रहती है।

14.2 सार संक्षेप

प्रस्तुत इकाई में आत्म हत्या की अर्थ एवं विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसमें बताया गया है कि आत्म हत्या क्या है ? तथा इनकी विशेषतायें कौन–कौन सी होती है ? दुर्खीम ने लिखा है कि आत्म हत्या शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसी मृत्यु के लिये किया जाता है जो मृत व्यक्ति द्वारा किये जाने वाले किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है। प्रस्तुत इकाई में ही आत्म हत्याओं के कारणों पर वृहद प्रकाश डाला गया है एवं मनोवैज्ञानिक दशायें, जैवकीय दशायें, तथा भौगोलिक दशाओं के बारे में विस्तृत ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। इकाई के अन्त में आत्म हत्या के प्रकारों का भी वर्णन किया गया है।

14.3 पारिभाषिक शब्दाबली

आत्म हत्या – आत्म हत्या शब्द का प्रयोग मृत्यु की उन सभी घटनाओं के लिए किया जाता है जो स्वयं मृतक के किसी सकारात्मक या नकारात्मक कार्य का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम होती है तथा जिसके भावी परिणाम को वह स्वयं भी जानता है।

मनोवैज्ञानिक दशायें – इसमें स्वभाव सम्बन्धी विशेषताओं, मानसिक बीमारियों संवेगात्मक और स्थिरता, उन्माद तथा पातक आदि की दशायें सम्मिलित है।

जैविकीय दशायें – जैवकीय दशाओं में वे दोषपूर्ण आनुवांशिक विशेषतायें, असामान्य शारीरिक रचना तथा प्रजातीय लक्षण सम्मिलित है जिनका आत्म हत्या से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

भौगोलिक दशायें – इसका सम्बन्ध एक विशेष प्रकार की जलवायु, ऋतु परिवर्तन तथा मौसमी तापमान में होने वाले उतार–चढ़ाव से है।

अभ्यास प्रश्न –

लघु

1. आत्म हत्या की अवधारणा लिखियें।
2. आत्म हत्या की विशेषतायें लिखियें।
3. आत्म हत्या के कारणों पर प्रकाश डालिये।
4. सम्वेगात्मक अस्थिरता पर टिप्पणी लिखिये।

विस्तृत

1. आत्म हत्या का अर्थ समझाते हुये आत्म हत्या के कारणों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
2. आत्म हत्या की अवधारणा को लिखते हुये आत्म हत्या की विशेषताओं को समझाइयें।

14.4 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, जीतकृष्णा, सामाजिक विघटन, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ, वर्ष 2006, पेज 205–211.